MAPA- 205

प्रशासनिक चिंतक

ADMINISTRATIVE THINKERS

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय-हल्द्वानी
फोन नं0 05946 – 261122, 261123
टॉल फ्री नं0 18001804025
ई – मेल info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन मंडल

प्रो0 गिरिजा प्रसाद पाण्डे निदेशक- समाज विज्ञान विद्या शाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रो0 अजय सिंह रावत उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
प्रो0 एम0 एम0 सेमवाल राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल, उत्तराखण्ड	प्रो0 मधुरेन्द्र कुमार (विशेष आमंत्रित सदस्य) राजनीति विज्ञान विभाग कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, उत्तराखण्ड
डॉ0 ए0 के0 रुस्तगी रीडर राजनीति विज्ञान विभाग जे0एस0पी0जी0 कॉलेज, अमरोहा, उत्तर प्रदेश	डॉ0 सूर्य भान सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर(राजनीति विज्ञान) उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ0 घनश्याम जोशी उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	

पाठ्यक्रम संयोजन एवं सम्पादन

डॉ0 घनश्याम जोशी (असिस्टेन्ट प्रोफेसर) लोक प्रशासन विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक	**इकाई संख्या**
डॉ0 जाकिर हुसैन(सेवानिवृत प्रोफेसर)	1, 3, 4, 5, 6, 12, 15, 18
डॉ0 जया पाण्डे, विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत	8, 10, 11, 13, 14
प्रो0 कमल कुमार लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	16, 17
डॉ0 जया नैथानी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रानीखेत	9
डॉ0 प्रो0 कमल कुमार श्रीवास्तव राजनीति विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	2, 7

प्रकाशन वर्ष- 2021

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2021, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।

प्रकाशन निदेशालय- अध्ययन एवं प्रकाशन, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय- 263139

अनुक्रम

खण्ड- 1 कौटिल्य, थामस वुडरो विल्सन		
1	कौटिल्य	1 – 12
2	थामस वुडरो विल्सन	13 – 21
खण्ड- 2 फेयोल, विन्सलो टेलर, मैक्स वेबर, कार्ल मार्क्स		
3	हैनरी फेयोल	22 – 32
4	फ्रेडरिक विन्सलो टेलर	33 – 42
5	मैक्स वेबर	43 – 56
6	कार्ल मार्क्स	57 – 69
खण्ड- 3 लूथर गुलिक, लिंडल एफ0 उर्विक, मैरी पार्कर फौलेट		
7	लूथर एच0 गुलिक	70 – 79
8	लिंडल एफ0 उर्विक	80 – 88
9	मैरी पार्कर फौलेट	89 – 98
खण्ड- 4 जार्ज ई0 मेयो, चेस्टर आई0 बनार्ड, हरबर्ट ए0 साइमन		
10	जार्ज ई0 मेयो	99 – 107
11	चेस्टर आई0 बर्नाड	108 – 116
12	हरबर्ट ए0 सा□न	117 – 129
खण्ड- 5 अब्राहम एच0 मैस्लो, डगलस मैक्ग्रेगर, क्रिस आर्गीरिस फ्रेडरिक हर्जबर्ग		
13	अब्राहम एच0 मैस्लो	130 – 137
14	डगलस मैक्ग्रेगर	138 – 145
15	क्रिस आर्गीरिस और फ्रेडरिक हर्जबर्ग	146 – 163
खण्ड- 6 रेन्सिस लिकर्ट, फ्रेड डब्लू0 रिग्स, आर0 के मर्टन		
16	रेन्सिस लिकर्ट	164 – 177
17	फ्रेड डब्लू0 रिग्स	178 – 192
18	आर0 के0 मर्टन	193 – 205

इकाई- 1 कौटिल्य

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 प्राचीन प्रशासकीय परम्परा
1.3 कौटिल्य- एक परिचय
1.4 कौटिल्य का अर्थशास्त्र
1.5 राज्य की प्रकृति
1.6 राजा और लोक प्रशासन
1.7 कौटिल्य का सप्तांग सिद्धान्त
1.8 अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन के सिद्धान्त
1.9 लोक प्रशासन के तत्व
1.10 शासन के अधिकारी और विभाग
1.11 वित्तीय प्रशासन
1.12 गृह विभाग और अर्थशास्त्र
1.13 भर्ती एवं प्रशिक्षण
1.14 सारांश
1.15 शब्दावली
1.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.19 निबन्धात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

कौटिल्य विश्व के महानतम विचारकों में गिना जाता हैं। उसने उस समय लिखना आरम्भ किया जब यूनान में प्लेटो, अरस्तु और सिसरो जैसे महान दार्शनिक राज्य पर अपने विचार प्रस्तुत कर चुके थे। अर्थशास्त्र का लेखक कौटिल्य एक यर्थाथवादी विचारक था। वह सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का सलाहकार और मंत्री था। वह चाहता था कि राजा शाक्तिशाली बना रहे और अपने राज्य का विस्तार साम, दाम, दण्ड, भेद की कूटनीति के माध्यम से करता रहे ताकि उसे धन प्राप्त हो जो राज्य की खुशहाली के लिये जरूरी है। उसने राज्य की सात प्रकृतियां या अंग बताये और कहा बिना इन सात अंगों के कोई राज्य पूर्ण नहीं है। उसने लोक प्रशासन को राज्य की शक्ति का अनिवार्य पहलू बताया। उसने प्रशासन के सिद्धान्त प्रतिपादित किये और समझाया कि प्रशासन कला भी है और विज्ञान भी, जिसमें स्वयं राजा को भी दक्ष होना चाहिए। प्रशासकों की योग्यता पर उसने बहुत जोर दिया। अर्थशास्त्र का अध्ययन करके आपकी समझ में आयेगा कि किस तरह अच्छे प्रशासन से लोगों की भलाई की जा सकती है।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- भारत की प्राचीन प्रशासकीय परम्पराओं को समझ पायेंगे।
- कौटिल्य के जीवन-वृत और उस उद्देश्य को जिसको प्राप्त करने के लिये कौटिल्य ने अर्शशास्त्र लिखा, के विषय में जान पायेंगे।
- किस तरह कौटिल्य ने सप्तांग सिद्धान्त का प्रतिपादन करके राज्य की प्रकृति को दर्शाया, के विषय में जान पायेंगे।
- किस तरह लोक प्रशासन राज्य के लक्ष्यों की पूर्ति में साधक है, इसको जान पायेंगे।
- वित्तीय प्रशासन, प्रतिरक्षा प्रशासन और जनकल्याण प्रशासन का राज्य में क्या महत्व है, के विषय में जान पायेंगे।

1.2 प्राचीन प्रशासकीय परम्परा

कौटिल्य के प्रशासकीय विचारों को जानने से पहले हमको भारत की प्राचीन प्रशासकीय परम्पराओं को जानना चाहिए। जैसा कि आप जानते हैं भारत का इतिहास वैदिक काल से आरम्भ होता है। स्पष्ट है प्रशासन का इतिहास भी वैदिक काल में ही खोजना चाहिए। एक बात और भी याद रखनी होगी कि वर्तमान भारतीय लोक प्रशासन की जड़ों को मजबूती प्रदान करने में वैदिक साहित्य, बौद्ध ग्रन्थ, जैन लेखन, धर्मशास्त्र, पुराण, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, शुक्रनीति इत्यादि का बड़ा योगदान रहा है।

1. **राजा और प्रशासन-** प्राचीन भारत में प्रशासकीय व्यवस्था राजा के इर्द-गिर्द घूमती नजर आती है। यद्यपि राजा ही राज्य की शक्तियों का केन्द्र होता था लेकिन वह अपनी सहायता के लिए अधिकारी रखता था। अधिकारियों से सम्बन्धित विभाग होते थे। इन विभागों का सम्बन्ध प्रजा के भौतिक और नैतिक विकास से होता था। अर्थात लोक प्रशासन के माध्यम से एक कल्याणकारी राज्य की कल्पना को साकार करना राजतंत्र का लक्ष्य होता था।
2. **प्रशासकीय विभाग-** चन्द्रगुप्त और अशोक के शासन काल में भारतीय प्रशासकीय पद्धतियों का विकास अपने चरम स्तर तक पहुँच चुका था। कार्यालयों की स्थापना होने लगी थी और प्रशासन का क्षेत्र केन्द्र से चलकर स्थानीय इकाइयों तक फैल गया था। यद्यपि 'केन्द्रीकरण' राजतंत्र की एक अनिवार्य प्रवृति थी, लेकिन प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण भी प्राचीन भारतीय शासन की एक अदभुत विशेषता बन चुकी थी। साम्राज्य प्रान्तों, जिलों, नगरों एवं ग्रामों में विभाजित थे। इन प्रशासकीय इकाइयों से सम्बन्धित विभाग एक निश्चित क्षेत्राधिकार से सम्पन्न थे। रामायण, महाभारत, शुक्रनीति, मनुस्मृति में भी विभागों से सम्बन्धित जानकारी मिलती है। इन विभागों में राजमहल विभाग, सेना विभाग, परराष्ट्र विभाग, माल विभाग, कोष विभाग, उद्योग विभाग, खान विभाग, वाणिज्य विभाग, धर्म विभाग आदि महत्वपूर्ण थे।
3. **प्रशासन में मानवीय दृष्टिकोण-**विभागों की एक संरचना होती है। इस सरचना का सम्बन्ध मानवीय रिश्तों से होता है। प्राचीन भारतीय प्रशासन में मानवीय मूल्यों को बहुत महत्व दिया जाता था। विभागों का अर्थ था- अधिकारियों, कर्मचारियों और क्रियाओं की एक श्रृंखला। इस श्रृंखला से जुड़े कुछ मुद्दे थे, जिनमें- पद, योग्यता, भर्ती, वेतन, अवकाश इत्यादि महत्वपूर्ण थे। उस समय योग्यता, उच्च कुल और कुशलता भर्ती के विशेष मापदण्ड थे। अधिकारी और कर्मचारी प्रायः तीन श्रेणियों में विभक्त थे- नगर

अधिकारी, ग्राम अधिकारी और सेना अधिकारी। मंत्री या परामर्शदाता जो राजा के समीप होते थे, इन अधिकारियों को निर्देशन और परामर्श देते थे।

अधिकारियों और कर्मचारियों की भर्ती एक महत्वपूर्ण विषय है। प्राचीन भारत में आज की तरह भर्ती के लिये सेवा आयोग नहीं रहे होंगे। अधिकारियों की भर्ती राजा अपने मंत्रियों की सलाह से करते थे। राजा, पुरोहित और प्रधानमंत्री की एक अन्तरंग परिषद होती थी जो सम्भवत: आज की तरह के लोक-सेवा आयोग का कार्य करती थी। अवकाश और पेन्शन के निश्चित नियम थे। पदोन्नति की भी परम्परा थी।

संक्षेप में प्राचीन भारत में केन्द्रीय कार्यालय का अस्तित्व भी था जो प्रान्तीय, प्रादेशिक और स्थानीय शासन का निरीक्षण करता था। प्रशासनिक व्यवस्था ऐसी थी जो प्रान्तीय, प्रादेशिक तथा जिला प्रशासन को मान्यता तथा महत्व देती थी। बड़े प्रान्तों को विभाजित करके नई प्रशासनिक इकाईयां बनाई जाती थी जिन्हें अक्सर मण्डल कहा जाता था। प्रशासन से सम्बन्धित ये सारे तथ्य वैदिक कालीन साहित्य में मिलते हैं। लेकिन एक योजनाबद्ध सिद्धान्तों के रूप में लोक प्रशासन पर एक स्पष्ट तस्वीर अर्थशास्त्र में ही देखने को मिलती है जिसके लेखक निःसन्देह कौटिल्य थे।

1.3 कौटिल्य- एक परिचय

कौटिल्य का मूल नाम था, विष्णुगुप्त। विष्णुगुप्त को चाणक्य भी कहा जाता है। अगर यह कहा जाये कि तुम चाणक्य हो तो इसका अर्थ होगा कि तुम कूटनीति, राजनीतिक दाव-पेंच और शासन कला में माहिर हो अर्थात तुम साम, दाम, दण्ड, भेद के माध्यम से सत्ता का उपयोग करते हो अथवा शक्ति प्राप्त करते हो और उसको बनाये रखते हो। कारण यह है कि कौटिल्य राजा को जो सीख देता है उसमें वह सब कुछ है जो सत्ता प्राप्ति के लिये, राज्य विस्तार के लिये और शासन करने के लिये जरूरी है। यहाँ नैतिकता और अनैतिकता में कोई अन्तर नहीं है।

आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि कौटिल्य जैसा एक चिन्तक इटली में भी हुआ उसका नाम था मैक्यावेली (1469-1527)। उसने अपने ग्रन्थ 'दि प्रिन्स' में जो कुछ लिखा है वो कौटिल्य के अर्थशास्त्र से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यद्यपि ऐसा कहीं भी सिद्ध नहीं होता कि मैक्यावेली कौटिल्य या चाणक्य से प्रभावित था। परन्तु मानव प्रकृति, राज्य, राजा और शासन के बारे में दोनों के विचार इतने मिलते-जुलते हैं कि मैक्यावेली को यूरोप का चाणक्य और कौटिल्य को भारत का मैक्यावेली कहा जाता है। अक्सर किसी चालाक राजनीतिज्ञ के सन्दर्भ में यह कहा जाता है कि उसकी राजनीति मैक्यावेलियन है अथवा वह आज की राजनीति का चाणक्य है। दोंनों का अर्थ एक ही है।

मौरियन साम्राज्य (मौर्य साम्राज्य) की सबसे बड़ी देन है 'अर्थशास्त्र' जो कौटिल्य की एक विशिष्ट कृति मानी जाती है। अर्थशास्त्र पर तो बहस बाद में होगी लेकिन पहले समझना होगा उसके लेखक को। कौटिल्य का जन्म कब हुआ था? यह सही ज्ञात नहीं है, लेकिन यह बात सच है कि लगभग 321 बी0सी0 चन्द्रगुप्त मौर्य राज सिंहासन पर बैठा और उसी समय कौटिल्य को, जो उस समय तक्षिला विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था, मौरियन साम्राज्य का प्रधानमंत्री बनाया गया। यह सम्भव है कि मैक्यावेली के समान कौटिल्य ने भी चन्द्रगुप्त मौर्य को शासन करने, साम्राज्य को मजबूती प्रदान करने तथा उसमें विस्तार करने के उद्देश्य से अर्थशास्त्र के माध्यम से पाठ पढ़ाने और प्रशिक्षित करने का प्रयास किया हो। कौटिल्य ना केवल स्वयं एक बुद्धिमान व्यक्ति था बल्कि वह प्रबुद्ध-वर्ग में पला-बढ़ा था। नालन्दा विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त करके वह तक्षशिला में राजनीति का प्रोफेसर बन गया और यहीं वह चन्द्रगुप्त के सम्पर्क में आया। उसका दृष्टिकोण धार्मिक या आध्यात्मिक कम और वैज्ञानिक अधिक था। वह आदर्शवादी या प्रत्यवादी (Idealist) कम था, लेकिन यर्थाथवादी (Realist) अधिक था। उसने अपने लेखन में ऐतिहासिक और अनुभववादी (Empirical) दोनों दृष्टिकोणों को अपनाया। इसलिये

आज ना केवल भारत बल्कि पूरे विश्व की राजनीति के सन्दर्भ में कौटिल्य बनाम चाणक्य की सार्थकता बनी हुई है। 'थामस बरो' कौटिल्य और चाणक्य को एक ही व्यक्ति नहीं मानते हैं। बरो के अनुसार यह दो अलग-अलग व्यक्तित्व थे।

1.4 कौटिल्य का अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र की रचना, अनेक विद्वानों के अनुसार 350-283 ईसा पूर्व हुई। अर्थात ठीक उस समय जब यूनानी दार्शनिक राज्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत कर रहे थे। लेकिन कौटिल्य का जन्म कब हुआ और अर्थशास्त्र की रचना कब हुई? इस पर अनेक विद्वानों की राय एक नहीं है।

अनेक ऐसे भी विद्वान हैं, जो अर्थशास्त्र के लेखक पर भी सहमत नहीं है। 'आर0 पी0 कांगले' उनमें से एक हैं। लेकिन 'शाम शास्त्री' कौटिल्य को ही अर्थशास्त्र का लेखक मानते हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि सन् 1904 तक अर्थशास्त्र से सम्बन्धित पाण्डुलिपियां समय की गर्द में छिपी रही। 1904 में अर्थशास्त्र का पूरा मूल पाठ ग्रन्थ लिपि में ताड़ के पत्तों पर शाम शास्त्री के हाथ लगा। सन् 1909 में उन्होंने इसे मूल रूप में और सन् 1915 में उन्होंने इसे अंग्रेजी में प्रकाशित किया। गणपति शास्त्री ने अर्थशास्त्र पर संस्कृत में टीका लिखी है। जर्मन, रूसी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अर्थशास्त्र का अनुवाद हो चुका है। आर0 पी0 कांगले ने अर्थशास्त्र पर तुलनात्मक ढंग से बहुत काम किया है।

अर्थशास्त्र पन्द्रह अधिकरणों अथवा ग्रन्थों में विभक्त है। इसकी संरचना सूत्रों के रूप में काव्य की भाषा में है, जिसमें 380 श्लोक हैं। कांगले की कृति में सूत्रों और श्लोकों की संख्या 5,348 है। यहाँ यह याद रखना होगा कि अर्थशास्त्र के केवल चार भाग- पहला, दूसरा, पाचवां और छटा लोक प्रशासन से सम्बन्धित हैं। अर्थशास्त्र का पचास प्रतिशत भाग विदेश-नीति और प्रति-रक्षा से सम्बन्धित है। दूसरे भाग का शीर्षक है 'सरकारी अधीक्षकों के कर्त्तव्या।' यह भाग विभागों से सम्बधित है। अर्थशास्त्र के प्रथम भाग में राजा का सम्बन्ध मंत्रियों, गुप्तचरों, राजदूतों, और राजकुमारों से दर्शाया गया है। यहाँ हर पहलू पर बहस की गई है।

अर्थशास्त्र में 'सेवीवर्ग' पर भी प्रकाश डाला गया है, क्योंकि कौटिल्य से पूर्व अथवा उसके समय में लिखित संविधान, कानून और नियम नहीं थे। इसलिये राजा, मंत्री और सेवीवर्ग गुणात्मक आधार को श्रेष्ठ मापदण्ड मानते थे। कौटिल्य ने सेवीवर्ग के गुणात्मक आचरण को बहुत महत्व दिया है और उसकी बहुत बारीकी से विवेचना की है। सार यह था कि यदि राजा और सेवीवर्ग का चरित्र अच्छा है तो शासन भी अच्छा होगा।

कुल मिलाकर अर्थशास्त्र राजनीति का एक वैज्ञानिक अध्ययन है। यहाँ हमें यह याद रखना होगा जैसा कि नाम से अभास होता है कि अर्थशास्त्र राज्य की अर्थव्यवस्था का अध्ययन नहीं है, यह राजनीति की श्रेष्ठतम कृति है। फिर कौटिल्य का उत्तर यह है कि प्रजा की भौतिक आश्यकताओं की पूर्ति करना अथवा इस पूर्ति के लिए अनिवार्य शर्तें या माहौल पैदा करना राजा का कर्त्तव्य है। इसलिए राजा को ऐसी रीतियां और कौशल अपनाना चाहिये जो राज्य के विस्तार के लिये जरूरी हों, क्योंकि विस्तृत राज्य, शक्ति और धन की गारन्टी है। इस तरह कौटिल्य की नजर में रोजी-रोटी को हासिल करना और उसके साधनों की रक्षा करना साध्य है। एक मजबूत और विस्तृत राज्य इस साध्य को प्राप्त करने का एक साधन है।

'अर्थ' का मतलब है, रोजी-जीविका से सम्बन्धित चीजें। ये चीजें भू-भाग का विस्तार करके और उसको बनाये रखकर हासिल की जा सकती है। अतः अर्थशास्त्र एक ऐसा ग्रन्थ है, जो राजा को राज्य के भू-भाग को विस्तृत करने की कला सिखाता है। कौटिल्य ने 'अर्थ' को व्यापक अर्थ में लिया है। इसमें सब कुछ सम्मिलित है- राज्य, अर्थशास्त्र, राजनीति, कूटनीति, कौशल, रणनीति और सबसे अधिक शासन और प्रशासन की कला। इस तरह अर्थशास्त्र एक विज्ञान भी है और कला भी। इसके दो उद्देश्य हैं: पहला- 'पालन' जिसका आशय है प्रशासन और

राज्य की सुरक्षा। दूसरा 'लाभ'- जिसका अर्थ है भू-भाग को जीतना और उस पर कब्जा बनाये रखना। 'अर्थ' में यह दोनों बातें शामिल है।

1.5 राज्य की प्रकृति

कौटिल्य ने एक अराजक राज्य की कल्पना की है। इसमें 'मत्स्य न्याय' (अर्थात बड़ी मछली का छोटी मछली को खा जाना) सर्वोपरि है। स्वाभाविक है कि सबल, दुर्बल को सतायेगा और राज्य में अराजकता फैलेगी। ऐसे में राजा का शक्तिशाली होना जरूरी है। यहाँ कौटिल्य मिथ का सहारा लेता है। अराजकता की स्थिति में प्रजा 'मनु' को राजा चुनती है। तय यह किया जाता है कि राजा को आनाज का 'एक-छटा' और बिक्री की वस्तुओं का 'एक-दसवां' हिस्सा मिलेगा। यह एक प्रकार का कर होगा। राजा इस आय से प्रजा के कल्याण और सुरक्षा की गारन्टी देगा। लेकिन इस कहानी से हमको यह नहीं समझना चाहिए कि कौटिल्य समझौते के सिद्धान्त को राज्य की उत्पत्ति का आधार मानता था।

क्योंकि मनु 'विवास्वत्' का पुत्र है और विवास्वत् सूर्य देवता हैं, इसलिये कौटिल्य राजा को ईश्वर का अवतरण या छाया मानता है। आप सवाल कर सकते हो कि क्या कौटिल्य राज्य की उत्पत्ति में देवी सिद्धान्त को मान्यता देता है? हाँ, कुछ हद तक। जब वह यह कहता है कि अगर लोग राजा का अपमान करेंगे तो उनको दैवीय दण्ड का सामना करना पड़ेगा। राजा का महत्व यह है कि वह इन्द्र के समान पुरस्कार देता है और यम् के समान दण्डित कर सकता है। यह सब कुछ तभी सम्भव है, जब राज्य का प्रशासन अच्छा हो। कौटिल्य अपेक्षा करता है कि राजा स्वयं एक अच्छा प्रशासक होगा। अधीनस्थ भी कर्मठ हों, निष्ठावान हों, चरित्रवान हों और योग्य हों। इसकी पहली शर्त है स्वयं राजा की योग्यता, निष्पक्षता और उसमें सद्-बुद्धि। प्रजा का कल्याण राजा का परम् धर्म होना चाहिए।

1.6 राजा और लोक प्रशासन

आपको अर्थशास्त्र की रचना का मुख्य लक्ष्य समझ में आ गया होगा। अब आप सवाल कर सकते हो कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने का मूल-मंत्र क्या था? आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि कौटिल्य की नजर में यह मूल-मंत्र था, राजा या राजकुमार का लोक प्रशासन में दक्ष होना। उसने लिखा, लोक प्रशासन एक कला भी है और विज्ञान भी। अर्थशास्त्र का उद्देश्य है राजा को लोक प्रशासन में माहिर करना। राजा को लोक प्रशासन के विज्ञान का पूरा ज्ञान होना चाहिए। इतना ही नहीं राजा के अतिरिक्त राजकुमार, पुजारी और मंत्रियों को भी लोक प्रशासन में माहिर होना चाहिये। अतः कौटिल्य राजा को सलाह देता है कि उसे लोक प्रशासन का गहन अध्ययन करके विशिष्ट प्राध्यापकों के निर्देशन में प्रशासकीय सिद्धान्तों पर अमल करना चाहिए। पुजारी का कर्तव्य मात्र धार्मिक कार्यों को ही करना नहीं होना चाहिए। कौटिल्य के अनुसार ऐसा राजा जो हठधर्मी और दम्भी हो और प्रशासन के वैज्ञानिक सिद्धान्तों के विरूद्ध शासन करने पर अड़ा रहे वह स्वयं का भी विनाश करता है और अपने राज्य का भी। कौटिल्य के अनुसार राजा को एक बात और याद रखनी होगी, उसे अपने मन से यह भ्रम निकालना होगा कि वह स्वयं में पूर्ण है। वह स्वयं में पूर्ण नहीं है, वह सहयोगियों पर निर्भर है। वह जितना शक्तिशाली होता है, उतनी ही उसकी जिम्मेदारियां बढ़ती जाती हैं। उसे अपने अधिकारियों का सहयोग लेना होता है। इसलिये उसके अधिकारी या अधीक्षक लोक प्रशासन के शास्त्र में निपुण हों यह जरूरी है। गाड़ी के एक पहिये से गाड़ी नहीं चलती।

अर्थशास्त्र में एक और तथ्य पर जोर दिया गया है कि वह है- जासूसी करवाना। जासूस राजा की आखें हैं। पूरे साम्राज्य में जासूसों का जाल बिछा हो ताकि राजा अधिकारियों के कृत्यों पर नजर रख सकें। अर्थात् जासूसी लोक प्रशासन का एक अंग होना चाहिये।

1.7 कौटिल्य का सप्तांग सिद्धान्त

भले ही कौटिल्य के समय में राज्य का कोई संविधान नहीं था, ना ही लिखित कानून या नियम थे। लेकिन कौटिल्य को विश्वास था कि बिना सिद्धान्तों के राज्य की गाड़ी अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच सकती। सफल राज्य के लिये कुछ तत्व अनिवार्य हैं। इसलिये उसने अर्थशास्त्र में बहुचर्चित सप्तांग सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

कौटिल्य ने राज्य की सात प्रकृतियां या अनिवार्य अंग बताए हैं। ये हैं- स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र। इन सात अंगों पर ही राज्य टिका हुआ है। संक्षेप में इन सात अंगों की व्याख्या इस प्रकार है:

1. **स्वामी अर्थात राजा-** राजा, राज्य की आत्मा है। वह शासक है और उसका रूप स्वामी जैसा है। उसके बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती। कौटिल्य ने राजा को असीम शक्तियां प्रदान की हैं और एक तरह उसे राजा में दैवी शक्ति के दर्शन होते हैं। राजा का कर्तव्य है, प्रजा के प्राणों और सम्पत्ति की रक्षा करना। राजा रक्षक और पालक है। यह रक्षण और पालन के सिद्धान्त के अन्तर्गत आता है। लक्ष्य (जनता का कल्याण) की प्राप्ति के लिये राजा को दण्ड का भी प्रयोग करना चाहिये और शान्तिमय उपायों का भी। आपने पहले भी पढ़ा है कि कौटिल्य और मैक्यावेली के विचारों में अनेक विषयों पर बहुत समानता है। इनमें एक है राज्य का निरन्तर विस्तार करते करना। इसका अर्थ है कि कौटिल्य साम्राज्यवादी नीतियों का सर्मथक था, क्योंकि हमारा इस समय विषय लोक प्रशासन है, इसलिये यह बता दें कि कौटिल्य लोक प्रशासन में राजा की दक्षता को राज्य के विस्तार की अनिवार्य शर्त मानता था। जो राजा राज्य की सीमाओं में निरन्तर विस्तार ना करें वह आयोग्य है और अयोग्य राजा को दण्डित करना चाहिए। वह मृत्यु दण्ड का भी पात्र है।

   राजा को युद्ध और न्याय प्रशासन में भाग लेते रहना चाहिए। प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति स्वयं उसे करनी चाहिये। उस नीतियों की विस्तृत रूपरेखा तैयार करनी चाहिये और समय-समय पर अध्यादेश जारी करते रहना चाहिए। अधिकारियों को राजधर्म का पाठ पढ़ाते रहना चाहिये। उसे अधिकारियों को बताना चाहिए कि उनका राजधर्म क्या है?

2. **अमात्य अर्थात मुख्य सचिव-** राज्य का दूसरा अंग है अमात्य। अमात्य की स्पष्ट व्याख्या कहीं नहीं मिलती। कुछ विद्वानों के अनुसार यह प्रधानमंत्री है, कुछ इसे विशेष मंत्री मानते हैं। लेकिन कुछ टीकाकारों के अनुसार यह आज के मंत्रीमण्डलीय सचिवालय के प्रमुख सचिव के समान अधिकारी है। यह प्रशासन के मामलों में दक्ष और कुशल है। इसकी बुद्धि कुशाग्र है और सटीक निर्णय लेने में इसका विवेक अद्वितीय है। वह सम्पूर्ण प्रशासन पर पैनी नजर रखता है।

   अनेक विद्वानों का यह भी मत है कि अमात्य मंत्रियों की एक परिषद है, जिसमें प्रधानमंत्री, अन्य मंत्री, उच्च पुजारी, सेनापति, वित्तमंत्री इत्यादि आते हैं। कुल मिलाकर अमात्य एक ऐसा अधिकारी या अधिकारियों का समूह है जो प्रशासन का मुख्य स्रोत है।

3. **जनपद अर्थात जनसंख्या-** कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में जनता या प्रजा का नाम नहीं लिया है। जनसंख्या के स्थान पर उसने जनपद शब्द का प्रयोग किया है। जनता आर्थिक दृष्टि से इतनी सक्षम हो कि कर (Tax) अदा कर सके। वे राजा के प्रति वफादार हों और उसकी आज्ञाओं का पालन करें। राजा को अपने राज्य की सीमाओं को मजबूत करना चाहिए और पड़ोसी राज्यों को कमजोर करना चाहिये। जनपद या प्रजा की खुशहाली के लिये राजा का विस्तारवादी होना अनिवार्य है। इस तरह हमको यह याद रखना होगा कि जनपद में जनसंख्या और राज्य का भू-भाग दोनों आते हैं। जनसंख्या का कर्मठ और निपुण होना तथा भू-भाग का साधनों से सम्पन्न होना और उपजाऊ होना अनिवार्य है।

4. **दुर्ग या किला-** दुर्ग राज्य का तीसरा अंग है। दुर्ग मात्र किला नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण राज्य की किलेबन्दी दुर्ग की परिभाषा में आती है। यह किलेबन्दी आक्रमण और प्रतिरक्षा दोनों में सक्षम हो। इसमें सेना के लिये सारी सुविधाएँ उपलब्ध करायी गयी हो। कौटिल्य के अनुसार चार प्रकार के दुर्ग होते हैं: आदिक- जो चारों ओर से जल से घिरा हुआ हो, पवर्त- जो पहाड़ियों के मध्य हो, धनवान- जो रेगिस्तान में हो और वन दुर्ग- जो जंगलों के बीच में हो। कौटिल्य के इस वर्गीकरण से मात्र किले का आभास होता है।
5. **कोष या खजाना-** कोष या खजाना राज्य के अस्तित्व का आधार है। कोष का प्रशासन, कौटिल्य की नजर में राज्य की अर्थव्यवस्था के लिये अनिवार्य है। कोष का अर्थ है, राज्य के राजस्व का एक स्थाई स्रोत। जनपद राज्य के राजस्व का सबसे बड़ा स्रोत है। हर हालत में राजा को उत्पादन का एक छठवां भाग मिलना चाहिये और कोष में पर्याप्त सोने का भण्डार होना चाहिए। धन के स्रोत नैतिक और न्याय-युक्त होने चाहिए और धन इतना होना चाहिये कि राज्य लम्बे समय तक अस्तित्व में बना रहे। कोष राजा का निजी खजाना नहीं है। राजा को जो उपहार दिया जाता है, वह भी राज्य के खजाने में जमा हो।
6. **दण्ड या सेना-** राजा के पास एक शक्तिशाली सेना हो। यह सेना सैन्य कला में माहिर हो। वह वफादार और देश भक्त हो। राजा को ध्यान रखना होगा कि सेना सन्तुष्ट रहे। राजा की सफलता के लिये यह जरूरी है। सेना क्षत्रियों पर निर्भर हो, क्योंकि सैनिक योग्यता उनके स्वाभाव में है। लेकिन संकट काल में शूद्रों और वैश्यों को भी सेना में लिया जा सकता है। प्रतिरक्षा विभाग का प्रमुख सेनापति होता है, वह सेना नायक (कमाण्डर) नहीं होता है। वह एक तरह से प्रतिरक्षा विभाग का मुख्य प्रशासक होता है।
7. **मित्र या सहयोगी-** राजा की कूटनीति का एक महत्वपूर्ण अंग सहयोगियों को बनाना है। सहयोगी ऐसे हों जो अन्ततः मित्र बन सके और जिनसे रिश्ते टूटने की सम्भावना कम से कम हो। सहयोगियों से यहाँ अभिप्राय दूसरे राज्य के राजाओं से है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दूसरे राज्य के राजा किसी राज्य के आन्तरिक संगठन का हिस्सा हैं। सहयोगी (Allies) बनाना मात्र एक कूटनीतिक दक्षता है। इसका सम्बन्ध विदेश-सम्बन्धों से है। अर्थशास्त्र में विदेश नीति और कूटनीति पर खुलकर बहस की गयी है।

1.8 अर्थशास्त्र और लोक प्रशासन के सिद्धान्त

कौटिल्य वह पहला भारतीय विचारक है, जिसने शासन को चलाने के लिये लोक प्रशासन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। यद्यपि उसने कहीं भी लोक प्रशासन शब्द का प्रयोग नहीं किया है। लेकिन प्रशासन से सम्बन्धित जो सिद्धान्त उसने प्रतिपादित किये हैं, वे लोक प्रशासन के अर्न्तगत ही आते हैं। यह सिद्धान्त दो वर्गों में विभक्त हैं: पहला- सत्ता, आज्ञापालन, अनुशासन, कर्तव्य और उत्तरदायित्व से सम्बन्धित सिद्धान्त और दूसरा- श्रम विभाजन, समन्वय, पृथ्क्कीकरण, दक्षता, पदसोपान इत्यादि से सम्बन्धित सिद्धान्त। पहले प्रकार के सिद्धान्त का सम्बन्ध राज्य की प्रभुसत्ता से है, लेकिन दूसरे प्रकार के सिद्धान्त लोक प्रशासनिक क्रियाओं से सम्बन्धित हैं। कौटिल्य ने दोनों प्रकार के सिद्धान्तों को अच्छे शासन के लिये अनिवार्य बताया है।

सत्ता, आज्ञापालन और अनुशासन राज्य का सार है। इन सिद्धान्तों का स्वरूप वैधानिक है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा कि, जब शासक दण्ड के प्रति उदासीन हो जाता है तो ऐसी अव्यवस्था फैलती है कि कमजोर शक्तिशाली का शिकार बन जाता है। लेकिन जब सुरक्षा का एहसास बढ़ता है तो कमजोर अन्याय का मुकाबला करता है। कौटिल्य के अनुसार जनता के चार वर्ग या जातियां अपने-अपने स्वाभाव के अनुरूप काम करें। यह राजा के दृढ़ निश्चय पर निर्भर करता है। अर्थशास्त्र में यह भी स्पष्ट किया गया है कि सत्ता, आज्ञापालन और अनुशासन उसी सीमा तक प्रभावशाली हैं, जहाँ दण्ड की व्यवस्था है। सुशासन के लिये कर्तव्य, हित और उत्तरदायित्व के सिद्धान्त भी अनिवार्य हैं। अच्छे उद्देश्य के लिये दण्डित करना चाहिए, बदला लेने के लिये नहीं।

1.9 लोक प्रशासन के तत्व

कौटिल्य ने प्रशासन के पांच तत्व बताए हैं। पहला- उपक्रमों या कार्यों को आरम्भ करने के उपाय, दूसरा- कार्यों में लगने वाले लोगों और सामग्री (material) की उत्कृष्टता (Excellence), तीसरा- स्थान और समय का चयन, चौथा- असफलता की स्थिति में अभिपूर्ति (provision) और पांचवां- कार्य को पूरा करना।

कौटिल्य का मानना है कि राजा को अपनी सुरक्षा पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए, क्योंकि सत्ता और अनुपालन तभी सम्भव है, जब राजा सुरक्षित है। जिस तरह वह दूसरों की सुरक्षा के लिये जासूसों का इस्तेमाल करता है, उसी तरह उसे बाहरी खतरों को देखते हुये अपनी सुरक्षा का ध्यान रखना चाहिए। इसलिये कौटिल्य ने गुप्तचर व्यवस्था पर बहुत जोर दिया है। सुरक्षा, वफादारी और स्थायित्व प्रशासन की अनिवार्यताएं हैं। सुदृढ़ गुप्तचर व्यवस्था आन्तरिक असंतोष, भ्रष्टाचार और बाहरी आक्रमण का सामना करने में सक्षम होती है।

एकता, स्थायित्व और आदेश की स्वतंत्रता शक्तिशाली राज्य की अनिवार्य शर्तें हैं। इन शर्तों की पूर्ति के लिये अर्थशास्त्र में अनेक सावधानियों पर बहस की गई है। इनमें राजा को सत्ता बनाये रखने के लिये आदेश की एकता (unity of command) और निर्देशन का बहुत महत्व है। सेवीवर्ग के सभी सदस्य राजा से सत्ता प्राप्त करते हैं। जनता के सामने वे राजा के प्रतिनिधि की हैसियत से खड़े होते हैं और अन्ततः वे राजा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

अनुपालन (obedience) प्रशासन का महत्वपूर्ण तत्व है। अनुपालन के पीछे भय, कर्तव्य, हित या स्वार्थ इत्यादि छिपे होते हैं। जो आज्ञाकारी है, वह राजा से बहुत भयभीत रहता है। स्थिति आग के समान है। आग तो केवल उसे जलाती जो उसमें कूदता है, लेकिन राजा अगर क्रोधित होता है, तो वह अपने सेवक के पूरे परिवार को जला सकता है। किस तरह प्रशासन के आदेशों का पालन किया जाये? इसके लिये लोगों का सहयोग जरूरी है। राजा को लोगों और सेवीवर्ग पर भरोसा भी करना चाहिए।

दण्ड राजा का प्रतीक है। इसके माध्यम से लोगों को भलाई की ओर अग्रसर किया जा सकता है। धन में वृद्धि की जा सकती है, खुशहाली आ सकती है। प्रोत्साहन भी दण्ड का भाग है। अभावग्रस्त या जरूरतमंदों की सहायता करके लोगों का सहयोग लिया जा सकता है। अधीनस्थों को प्रोन्नति के अवसर प्रदान करने चाहिए, उनके वेतन बढ़ाने चाहिये, उन्हें पुरस्कृत किया जाये तथा उनको उचित अवकाश दिया जाये। पेन्शन का प्रावधान होना चाहिये, सेवा में स्थायित्व की व्यवस्था होनी चाहिये। कौटिल्य ने सजा के लिये अनेक सुझाव दिये हैं, जो आज भी सार्थक हैं। अधिकारियों की गुणात्मक विशेषताओं का भी उल्लेख अर्थशास्त्र में देखने को मिलता है। अधिकारियों के चयन में इन विशेषताओं को ध्यान में रखने पर जोर दिया गया है। जहाँ तक उत्तरदायित्व का सवाल है, उससे ना केवल राजा बंधा हुआ है, बल्कि अधिकारी भी उत्तरदायित्व को प्रशासन का लक्ष्य समझे, ऐसा जरूरी है।

जहाँ तक लोक प्रशासन के दूसरे प्रकार के सिद्धान्तों का सवाल है, अर्थात् श्रम विभाजन, समन्वय, पृथक्कीकरण, दक्षता, पदसोपान इत्यादि का तो इन्हें कौटिल्य प्रशासन की मशीनरी मानता है। उसके अनुसार श्रम विभाजन शासन को चलाने के लिये एक प्रभावशाली कदम है। उसने लिखा- सम्प्रभुता सहयोग पर आधारित है, एक पहिये से गाड़ी नहीं चल सकती। राजा के मंत्री होने चाहिए। वे अपने-अपने क्षेत्र में काम करें और राजा को सलाह दें। मंत्रियों और राजा के मध्य, अधिकारियों और अधीक्षकों के मध्य समन्वय होना चाहिए। यह लोक प्रशासन की सफलता का मूल-मंत्र है। पदसोपानीय (Hierarchy) व्यवस्था अर्थात् प्रशासन में आदेश का प्रत्येक स्तर से गुजरते हुये चोटी से तल तक आना और अनुपालन तल से चोटी तक जाना, कौटिल्य की दृष्टि में समन्वय और क्रियान्वयन को प्रभावशाली बनाता है। सत्ता की सार्थकता भी पदसोपानीय व्यवस्था (सिद्धान्त) में छिपी है।

1.10 शासन के अधिकारी और विभाग

राजा प्रशासनिक इकाईयों और उनसे सम्बन्धित अधिकारियों पर अपने शासन के लिये निर्भर रहता है। कुछ अधिकारी जिनका वर्णन अर्थशास्त्र में है, सीधे राजा के अधीन हैं। जबकि अधिकांश अधिकारियों को वह परोक्ष रूप से उच्चतर अधिकारियों के माध्यम से नियंत्रित करता है। राजा वास्तव में देश का सर्वोच्च कार्यपालक है। उच्च अधिकारी राजा के प्रति उत्तरदायी है। मंत्री अपने निजी क्षेत्राधिकार के कामों को भी देखते हैं और उन सब कामों को भी, जिनका सम्बन्ध राजा और उसके शत्रु से है।

अर्थशास्त्र में अधिकांश ऐसे अधिकारी हैं, जिनको अधीक्षक कहा गया है। यह अधिकारियों से कम स्तर के होते हैं। यह विभाग प्रभारी नहीं होते हैं, बल्कि यह विभिन्न आर्थिक और सामाजिक अनुभागों के प्रमुख होते हैं। अधीक्षकों की सहायता के लिए (विशेष रूप से तकनीकी क्षेत्र में) विशेषज्ञ रहते हैं। विभागों का विभाजन सेवाओं के आधार पर होता है। सभी विभागों पर नियंत्रण कलेक्टर-जनरल और ट्रेजरार-जनरल का होता है।

राज्य का सबसे बड़ा अधिकारी समार्हत्र (कलेक्टर-जनरल) ही होता था। इस का मुख्य कार्य राजस्व को एकत्र करना होता था। इसके अर्न्तगत आयुक्त, जिलाधिकारी और जिले से लेकर ग्राम तक सभी क्षेत्राधिकारी आते थे। महत्वपूर्ण स्तर के लगभग 18 अधिकारी होते थे।

1.11 वित्तीय प्रशासन

अर्थशास्त्र की सबसे बड़ी विशेषता है कि राज्य से सम्बन्धित हर विषय पर उसमें बहस की गई है। जैसा कि आप जानते हैं अर्थ, धन या वित्त का पर्यायवाची है। राजा का उद्देश्य भी धन के लिये राज्य का विस्तार करते रहना है। इसलिये अनिवार्य है कि वित्तीय प्रशासन चुस्त-दुरूस्त हो। अर्थशास्त्र में एक वित्तीय विभाग का वर्णन है। इसमें 3 अधिकारी हैं। समाहर्त्र (कलैक्टर-जनरल), अर्थात वह अधिकारी जो राजस्व एकत्रित करने का प्रभार सभालता है; समनीघत्र (ट्रेजरार-जनरल), अर्थात वह अधिकारी जो राज्य के कोष का प्रमुख है तथा लेखा-जोखा अधीक्षक (सुपरिन्टेनडेन्ट-अकाउन्ट्स), जो आज के महालेखाकार के स्तर का था। यह तीनों विभाग एक-दूसरे पर निर्भर हैं। कलेक्टर जनरल और ट्रेजरार-जनरल (कौटिल्य ने इन नामों का प्रयोग नहीं किया है, बल्कि आधुनिक सन्दर्भ में इन नामों को चुना गया है।) तथा दूसरे का काम, आपूर्ति के व्यय को नियंत्रित करना है। दोनों अधिकारी अधीक्षकों पर सत्ता का प्रयोग करते हैं।

कौटिल्य आय और व्यय के ब्योरे के रख-रखाब को वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य मानता है। यहाँ तक कि वह लेखा अधीक्षक को भी कलेक्टर जनरल के अधीन रखता है जो लेखे-जोखे का परीक्षण करता है। इन लेखों(Accounts) में आमद (आमदनी) और खर्च दोनों होने चाहिए।

राजा को लेखों के आमद और खर्च पर बड़ी नजर रखनी होती है। इस सम्बध में वह हर विभाग के आमद और खर्च से अवगत रहता है। ऐसा वह मंत्रीमण्डल को मीटिंग बुलाकर करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि सभी विभागों में वित्तीय विभागों को अर्थशास्त्र में बहुत महत्व दिया गया है। व्यापार या वाणिज्य प्रबन्धों (जैसे- उत्पादन या निर्माण कार्य, खनिज खानों, सागरीय खानों, लवण खानों, नमक, वन उत्पादन, स्वर्ण, हाथ करघा इत्यादि) के अधीक्षक भी कलेक्टर जनरल के निरीक्षण में आते हैं।

कौटिल्य ने वित्तीय विभाग को बहुत व्यापक अर्थ में लिया है। उसमें अनेक वाणिज्य क्रियाकलाप भी शामिल हैं। यद्यपि इन क्रियाकलापों से सम्बन्धित विभाग हैं, लेकिन उनको वित्तीय विभाग का आर्थिक संरक्षण मिला हुआ है। अर्थशास्त्र में सामाजिक कल्याण पर भी जोर दिया गया है। यहाँ यह याद रखना होगा कि जिस समय अर्थशास्त्र की रचना हुई उस समय कल्याण की गतिविधियों का संचालन धार्मिक निगम, ग्राम और नगर पालिकाऐं,

दस्तकारी समूह और जातीय संगठनों के क्षेत्राधिकार में आता था। सरकार का यह कर्तव्य था कि वह सामाजिक कल्याण कार्यों में रूचि ले और वित्तीय प्रशासन की सहायता से जरूरतमन्दों की आर्थिक मदद करे। कौटिल्य ने इसे सामाजिक न्याय कहा है। कौटिल्य ऐसे प्रशासकीय विभागों की स्थापना पर जोर देता है जो बुजुर्गों, अनाथों, अपंगों और मजबूरों की आर्थिक मदद कर सकें।

1.12 गृह विभाग और अर्थशास्त्र

अब आपकी समझ में आने लगा होगा कि ब्रिटिश काल से लेकर आज तक जो प्रशासकीय व्यवस्था अस्तित्व में रही है, वैसा लगभग सब कुछ हमें अर्थशास्त्र में देखने को मिलता है। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है? लगभग 23 सौ साल पहले प्रशासन के क्षेत्र में कौटिल्य ने वह सब कुछ सोचा, जो आज हम करते हैं।

वित्तीय प्रशासन के बाद हम अर्थशास्त्र में वर्णित किये गये गृह विभाग के प्रशासन पर नजर डालेंगे। प्रधानमंत्री, द्वारिका अर्थात महल के कर्मचारियों का मुखिया, हरम (जहां राजघराने की महिलाऐं रहती हैं) का अधीक्षक, अन्तपाल (सीमाओं का मुख्य प्रभारी) पासपोर्ट का अधीक्षक, कलेक्टर जनरल या आज के सन्दर्भ में जिलाधीश, अतिवाहक अर्थात वनों का मुख्य प्रभारी, दुर्गपाल (किले का रक्षक) और दण्डपाल, ये ऐसे उच्च स्तरीय अधिकारी हैं जो गृह विभाग का अंग हैं। गृह विभाग के किसी गृहमंत्री या गृह सचिव का अर्थशास्त्र में वर्णन नहीं मिलता है। द्वारिका और हरम का अधीक्षक राजा की निजी सुरक्षा के लिए जिम्मेदार हैं।

जिले और सीमाओं के अधीक्षक प्रतिरक्षा सम्बन्धी बातों को देखते हैं। पासपोर्ट अधीक्षक का सम्बन्ध राज्य में आने और जाने वाले लोगों से होता है। विदेशियों की गतिविधियों पर भी यह नजर रखता है। चरागाहों का अधीक्षक वनों की रक्षा करता है, राहजनों को पकड़ता है, मार्गों की रक्षा करता है, गायों की देखभाल करता है और सड़कों की मरम्मत करवाता है। कानून और न्याय का भी विभाग है। इस तरह अर्थशास्त्र में उन सब बातों को गृह विभाग में रखा गया है जो राज्य हित, राजा के हित और जन हित में है।

न्याय से सम्बन्धित अदालतों का प्रशासन गृह विभाग के अन्तर्गत आता है या नहीं, इस पर अर्थशास्त्र खामोश है। लेकिन न्याय व्यवस्था पर खुलकर बहस की गयी है। यह स्पष्ट किया गया है कि प्रशासकीय अदालतें ऐसे 3 व्यक्तियों पर निर्भर होंगी, जो धर्मशास्त्र में दक्ष हों। ऐसे तीन अधिकारी भी होंगे, जो न्याय प्रशासन को लागू करें। अदालतों की पदसोपानीय व्यवस्था होगी। अर्थात दस गावों की एक अदालत से लेकर राजा की अदालत तक। एक सर्वोच्च न्यायालय भी होगा, परन्तु उसकी अध्यक्षता कौन करेगा? राजा या मुख्य न्यायाधीश, इस पर अर्थशास्त्र खामोश है। सामाजिक न्याय की देखरेख राजा करेगा। कानून की अदालतें श्रमिकों, दासों और समितियों के मामले देखेंगी। बूचरखानों, वेश्याओं, मदिरा और बुनकरों से सम्बन्धित विभाग होंगे, जो सामाजिक कल्याण कानून के अन्तर्गत आयेंगे।

1.13 भर्ती एवं प्रशिक्षण

आज के लोक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण विषय भर्ती और प्रशिक्षण है। आप सोचोगे यह आज के प्रशासन का विषय है। कौटिल्य ने भर्ती और प्रशिक्षण को लोक प्रशासन की दृष्टि से बहुत गम्भीरता से लिया है। अर्थशास्त्र में ऐसे अनेक प्रशिक्षणों का सुझाव दिया है, जो प्रशासक बनने से पहले अनिवार्य हैं। उदाहरण के लिये तकनीकी क्षमता, बुद्धिमत्ता (Intelligence), निरन्तर परिश्रम करने की आदत (मेहनतकशी), कर्मठता, वक्तृत्वशक्ति (eloquence) (धाराप्रवाह बोलने की शक्ति), साहस और निर्णय लेने की क्षमता, संकट के समय कष्टों को झेलने की क्षमता मजबूत चरित्र, निष्ठा और निष्पक्षता जैसे गुण एक प्रशासक में होने चाहिये। भर्ती से पहले प्रत्याशियों की योग्यताओं की समीक्षा करना तो अनिवार्य था, लेकिन सैनिकों को छोड़कर अन्य कर्मचारियों या अधिकारियों

के प्रशिक्षण की व्यवस्था क्या थी? यह स्पष्ट नहीं है। अर्थशास्त्र में मजदूरी और वेतन पर भी प्रकाश डाला गया है। कौटिल्य के अनुसार जिस अधिकारी की जिम्मेदारी अधिक हो, उन्हें अधिक वेतन दिया जाये और जिन अधिकारियों या कर्मचारियों ने अच्छा काम किया हो उनको प्रोन्नत किया जाये।

अभ्यास प्रश्न-

1. कौटिल्य को भारत का क्या कहा जाता है?
   क. मार्क्स ख. अरस्तु ग. मैक्यावैली घ. बोंदा
2. अर्थशास्त्र ग्रन्थ है?
   क. अर्थव्यवस्था पर ख. इतिहास पर ग. राजनीति पर घ. धर्म पर
3. कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त का सम्बन्ध है-
   क. समाज से ख. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से ग. राज्य की प्रकृति से घ. लोक प्रशासन से
4. लोक प्रशासन के कितने तत्व कौटिल्य ने बताए हैं?
5. राजस्व एकत्रित करने वाले अधिकारी को कहते हैं ?
   क. कलैक्टर-जनरल ख. ट्रेजरार-जनरल ग. लेखा-जोखा अधीक्षक घ. दण्डपाल
6. हरम में राजा के दास रहते थे। सत्य/असत्य
7. हरम में राजघराने की महिलाएँ रहती थीं। सत्य/असत्य
8. दुर्गपाल सेनापति होता था। सत्य/असत्य
9. अदालतें ऐसे तीन व्यक्तियों पर निर्भर होगीं, जो धर्मशास्त्र में दक्ष हों। सत्य/असत्य

1.14 सारांश

कौटिल्य का अर्थशास्त्र लोक प्रशासन और राजनीति शास्त्र पर एक गहन अध्ययन है। इन दोनों विषयों को उसमें व्यापक अर्थ में लिया है, इसमें राज्य चलाने के तरीकों से लेकर अर्थव्यवस्था और कूटनीति तक बहस की गई है। कौटिल्य, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य का सलाहकार और मंत्री था। यद्यपि अर्थशास्त्र की ऐतिहासिक सत्यता पर विद्वानों में मतभेद है, लेकिन उसमें राजनीति और प्रशासन के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त पढ़ने को मिलते हैं, वे आश्चर्य में डालते हैं।

1. कौटिल्य ने राज्य की सात प्रकृतियां या अंग बताए हैं। वह इन अंगों को सप्तांग कहता है और उन्हें राज्य के अस्तित्व के लिये अनिवार्य मानता है।
2. कौटिल्य ने प्रशासन के भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं, जिनके माध्यम से राज्य के विभिन्न अंगों को सूचारू रूप से अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है।
3. अर्थशास्त्र में कर्मचारियों, अधिकारियों या सेवीवर्ग के लिये अनेक मनोवैज्ञानिक तत्वों पर प्रकाश डाला गया है, जिनमें भय, कर्त्तव्य, और हित महत्वपूर्ण हैं। कर्मचारियों के आचरण को प्रभावित करके उनको उत्प्रेरित करना कौटिल्य का लक्ष्य है।
4. कौटिल्य ने शासन के विभागों की संरचना पर प्रकाश डाला है और सगंठन के आदेश की एकता, पद सोपान, समन्वय और उत्तरदायित्व के सिद्धातों की रचना भी की है।
5. कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में राजतंत्रीय शासन-व्यवस्था की बड़ी दार्शनिक विवेचना की है। वह कहता है कि प्रजा के सुख में राजा का सुख है। राज्य का सारा प्रशासन राजा के इर्द-गिर्द घूमता है। लेकिन अयोग्य राजा को वह मृत्यु दण्ड तक देने की सिफारिश करता है।

6. वित्त प्रशासन के सम्बन्ध में कौटिल्य तीन प्रकार के अधिकारियों का वर्णन करता है जो राजस्व, कोष और आय-व्यय के लेखे-जोखे को देखते हैं।
7. कौटिल्य की तुलना इटली के दार्शिनिक मैक्यावेली से की जाती है। दोनों का राजनीति में नैतिकता के बारे में मत एक है। दोनों साम, दाम, दण्ड, और भेद के सिद्धान्त को मानते हैं। दोनों ही राज्य विस्तार और कूटनीति के बारे में क्रूरता, उत्पीड़न और हिंसा के औचित्य को मान्यता देते हैं।

कौटिल्य की बड़ी गम्भीर आलोचनाएं भी की गयी हैं और जहाँ तक प्रशासन का प्रश्न है, उसकी प्रशंसा भी की जाती है।

1.15 शब्दावली

प्रत्यवादी- वह विचारक जो प्रत्यय आर्दश में विश्वास करे या उसकी यह धारणा हो कि आदर्श या त्रुटि मुक्त जीवन, स्थिति या राज्य अथवा समाज को पाया जा सकता है। ऐसा विचारक यथार्थ से दूर कल्पनावादी होता है।
साम्राज्यवाद- राजनीति की यह अवधारणा कि राज्य की सीमाओं का सदा विस्तार करते रहना चाहिये। युद्ध, क्रूर, रणनीति, छल-कपट की कूटनीति में राज्य विस्तार के लिये राजा निपुण होना चाहिए।
पदसोपान- सगठन की वह व्यवस्था जो त्रिकोणीय हो अर्थात चोटी पर मुख्य कार्यपालक का तल के अधीनस्थों को आदेश प्रत्येक पद या स्तर से गुजरता हुआ पहुँचे और तल से प्रत्येक स्तर से गुजरता हुआ अनुपालन चोटी तक जायें।
दक्ष होना- कुशल या निपुण होना, कृत्य- कार्य, कुशाग्र- तेज, आमद- आमदनी

1.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग, **2.** ग, **3.** ग, **4.** 5 तत्व, **5.** क, **6.** असत्य, **7.** सत्य, **8.** असत्य, **9.** सत्य

1.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 रविन्द्र प्रसाद, बी0 एस0 प्रसाद, पी0 सत्यनारायण: एडमिनिस्टेटिव थिंकर्स (ऐडिटेड 2013, नई दिल्ली, स्टलिंग)
2. रोजर, बोएशे: दि फर्स्ट ग्रेड पोलिटिकल रियालिस्ट: कौटिल्य एण्ड हिज अर्थशास्त्र, लनहेम, 2003,
3. शामशास्त्री: अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य, ओरियण्टल लिब, 1908,
4. अवस्थी एवं अवस्थी: लोक प्रशासन, 1998,

1.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 अशोक कुमार, प्रकाशक- लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
2. प्रशासनिक विचारक,आर0 पी0 जोशी एवं अंजु पारीक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
3. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

1.19 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन भारतीय व्यवस्था में मानवीय दृष्टिकोण क्या था?
2. कौटिल्य के सप्तांग सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
3. कौटिल्य के लोक प्रशासन के विषय में क्या विचार थे?

इकाई- 2 थामस वुडरो विल्सन

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 वुडरो विल्सन- जीवन परिचय
2.3 वुडरो विल्सन के प्रमुख विचार एवं योगदान
    2.3.1 लोक प्रशासन को परिभाषित करना
    2.3.2 लोक प्रशासन: प्रशासनिक विज्ञान
    2.3.3 राजनीति-प्रशासन द्वैतवाद
    2.3.4 प्रशासन एवं जनमत
    2.3.5 लोक सेवा
    2.3.6 तुलनात्मक लोक प्रशासन
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन सामाजिक विज्ञानों के समुदाय का एक नवीन सदस्य है। तथापि इसका क्षेत्र तथा महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और आज यह सामाजिक विज्ञानों की श्रेणी में काफी प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुका है। अध्ययन और अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन के विकास में संयुक्त राज्य अमेरिका की अहम् भूमिका रही है। भारत में यद्यपि लोक प्रशासन का अध्ययन-अध्यापन काफी विलम्ब से प्रारम्भ हुआ, तथापि आज यह प्रगति के पथ पर अग्रसर है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में अपना-अपना योगदान करने वाले प्रमुख विचारकों का अध्ययन किया जाए। प्रस्तुत लेख लोक प्रशासन के जनक 'वुडरो विल्सन' से सम्बन्धित है। अन्य शब्दों में वुडरो विल्सन को 'भीष्म पितामह' की संज्ञा से परिभाषित करना भी अतिश्योक्ति नहीं होगी। यही कारण कि वुडरो विल्सन लोक प्रशासन के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण सितारे बन गये हैं।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- वुडरो विल्सन के जीवनी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर पाओगे।
- लोक प्रशासन के क्षेत्र में वुडरो विल्सन के योगदान के सम्बन्ध में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर पाओगे।

2.2 वुडरो विल्सन- जीवन परिचय

वुडरो विल्सन का जन्म संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) के वर्जीनिया राज्य में 28 दिसम्बर सन् 1856 को हुआ था। विल्सन ने राजनीति, शासन तथा कानून की शिक्षा प्राप्त की। सन् 1879 में प्रिन्सटन विश्वविद्यालय से स्नातक उपाधि प्राप्त की। मात्र 30 वर्ष की आयु में विल्सन को डॉक्टर आफ फिलासफी (पी0एचडी0) की उपाधि प्राप्त हुई। तदोपरान्त शैक्षणिक जगत में प्रवेश किया और उसी वर्ष प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर बने। सन् 1902 तक इस पद को सुशोभित किया। तत्पश्चात सन् 1910 तक इसी विश्वविद्यालय के प्रेसीडेन्ट बने। सन् 1910 में ही विल्सन अमेरिका के न्यूजर्सी राज्य में गवर्नर के पद पर आसीन हुए। यह प्रमाणित करता है कि वे केवल अकादमिक क्षेत्र के महाबली नहीं थे वरन् राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रतिभा के धनी थे। तीन वर्ष तक गर्वनर के पद की शोभा बढ़ाते हुए राजनीतिक ऊँचाइयों को पार करते हुए संसार की प्रमुख महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) के राष्ट्रपति बने। वुडरो विल्सन ने आठ साल तक राष्ट्रपति के पद की गरिमा बनाये रखी, जो विश्व के सबसे शक्तिशाली सार्वजनिक पदों में से एक था। प्रथम विश्वयुद्ध के समय विल्सन का नेतृत्व अमेरिका के लिए काफी लाभदायक रहा। राष्ट्रपति के पद का दूसरा कार्यकाल भी बड़े सम्मानजनक ढंग से निर्वाहन किया। दुर्भाग्यवश दूसरा काल पूर्ण करने के तीन वर्ष पश्चात सन् 1924 को उनका देहान्त हो गया। इस महान विचारक और राजनीतिज्ञ के निधन के पश्चात लोक प्रशासन में एक रिक्तता सी आ गयी, क्योंकि अभी लोक प्रशासन नवोदित पौधे के रूप में विकसित हो रहा था। फिर भी विल्सन द्वारा प्रज्जवलित लोक प्रशासन की ज्वाला को आगे अनेक मनीषियों एवं विद्वानों ने धीमी नहीं पड़ने दिया वरन् लोक प्रशासन की यात्रा को विकास के रथ पर आरूढ़ कर निरन्तर प्रगति को ओर अग्रसारित किया।

वुडरो विल्सन राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर होने के साथ-साथ, एक प्रशासनिक चिन्तक, शिक्षा शास्त्री, इतिहासकार, सुधारक एवम् एक अच्छे नेता भी थे। इनकी कतिपय रचनाऐं निम्नलिखित हैं।

- कांग्रेसनल गवर्नमेन्ट (1885)
- दी स्टेट (1889)
- डिवीजन एण्ड रीयूनियन
- ए हिस्ट्री ऑफ अमेरिकन पीपुल (1902)
- कान्सटीट्यूशनल गवर्नमेन्ट इन द युनाइटेड स्टेटस (1908)
- मेयर लिटरेचर एण्ड अदर एसेज (1896)
- जार्ज वांशिगटन (1896)
- एन ओल्ड मास्टर एण्ड अदर पालीटिकल एसेज(1893)

उपरोक्त रचनाओं के साथ-साथ 1887 में 'पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली' में प्रकाशित उनका लेख 'प्रशासन का अध्ययन'(The Study of Administration) लोक प्रशासन के उदय की जड़ माना जा सकता है। यह स्मरण रहे कि यही एकमात्र शैक्षिक रचना है, जो विल्सन ने लोक प्रशासन पर लिखी थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि मात्रात्मक होना आवश्यक नहीं है। गुणात्मक होना जरूरी है।

2.3 वुडरो विल्सन के प्रमुख विचार एवं योगदान

विल्सन के प्रमुख विचारों तथा उनके योगदान को निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है। फलस्वरूप अध्ययन में काफी सहजता होगी।

2.3.1 लोक प्रशासन को परिभाषित करना

प्रशासन का अध्ययन 'The Study of Administration' नामक लेख 'पोलीटिकल साइन्स क्वार्टरली' के जून अंक में 1887 प्रकाशित हुआ था। यह लेख लोक प्रशासन के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। ड्वाइट वाल्डो एक प्रमुख लोक प्रशासन के चिंतक हैं, इनका भी जन्म अमेरिका में हुआ था, ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में व्यापक कार्य किए हैं। इनका मानना है कि उपरोक्त लेख स्व-जागरूक लोक प्रशासन के इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है तथा साथ ही अर्न्तहीन प्रेरणा एवम् विवाद का स्रोत भी है। वास्तविक रूप में 1885 में विल्सन ने 'दी आर्ट ऑफ गवर्निंग'(The Art of Governing) नामक शीर्षक से एक लेख लिखा था, परन्तु किन्हीं अपरिहार्य कारणों से छपाया नहीं था। जब कॉरनैल विश्वविद्यालय में उन्हें बोलने को आमंत्रित किया गया तो विल्सन ने आगे के विचारों को ध्यान में रखते हुए इस लेख का पुनर्रीक्षण किया तथा यही लेख फिर प्रशासन का अध्ययन (The Study of Administration) नाम शीर्षक से प्रकाशित हुआ। यही से अध्ययन अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन की यात्रा प्रारम्भ हुई। लोक प्रशासन सरकार का सबसे स्पष्ट भाग होते हुए काफी विलम्ब से अध्ययन के रूप में विकसित हुआ। इसके कारणों पर विल्सन ने गहनता से चिन्तन करते हुए तर्क देते हुए कहा कि राजनीति विज्ञानिकों ने अपना ध्यान केवल विशुद्ध अमूर्त राजनीतिक विषयों पर ही केन्द्रित किया। जैसे राज्य की प्रकृति, प्रभुसत्ता, लोक प्रिय सत्ता इत्यादि। विल्सन के अनुसार ''प्रशासन के अध्ययन का विकास समाज में बढ़ती हुई जटिलताओं, राज्य के कार्यों में बढ़ोत्तरी होने तथा लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों पर सरकारों की वृद्धि के परिणाम स्वरूप हुआ। कार्यों के इस प्रकार लगातार बढ़ते हुए क्रम ने यह प्रश्न उठाया कि 'कैसे' और 'किन' दशाओं में इन कार्यों को निष्पादित किया जा सकता है। इसके लिए विल्सन ने सुझाव दिया कि सरकार में सुधार की आवश्यकता है और ये सुधार प्रशासन के क्षेत्र में होने चाहिए।''

विल्सन के मतानुसार देश का संविधान निर्मित करना आसान है, परन्तु उसका अनुपालन सुनिश्चित करना बड़ा ही कठिन काम है। विल्सन ने संविधान बनाने से ज्यादा महत्व इसे लागू करने एवम् अनुपालन सुनिश्चित करने पर दिया है। यह कार्य सरकार और उसके कार्यात्मक अथवा प्रशासन का है।

विल्सन का कथन है कि ''लोक प्रशासन सार्वजनिक कानून का विस्तृत और व्यवस्थित क्रियान्वयन है। सामान्य कानून का प्रत्येक अनुप्रयोग प्रशासन का कार्य है।'' अगर प्रशासन का अध्ययन दार्शनिक दृष्टिकोण से किया जाए तो यह संवैधानिक सत्ता के सही वितरण के अध्ययन के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है।

2.3.2 लोक प्रशासन: प्रशासनिक विज्ञान

विल्सन प्रशासन के विज्ञान होने की वकालत करते हैं। प्रशासन का विज्ञान, राजनीति के विज्ञान के अध्ययन का सबसे ताजा फल है। प्रशासन का विज्ञान सरकार के कार्यों को सुगम, संगठन को सुदृढ़ एवं शुद्ध बनाता है। फलस्वरूप कर्तव्यों में कर्तव्य-भावना का संचार एवम् समावेश पैदा होता है। प्रशासन के विज्ञान के विकास की आवश्यकता संयुक्त राज्य अमेरिका में पड़ी। वुडरो विल्सन ने कहा है ''हमें इसका अमेरीकीकरण करना होगा। केवल औपचारिकता से नहीं, मात्र भाषा से नहीं बल्कि प्रगतिशील रूप में, विचारों में, सिद्धान्तों और लक्ष्यों में भी। इसे हमारे संविधान को कंठस्थ करना होगा, इसकी रक्तवाहिनियों से नौकरशाही के बुखार को बाहर करना होगा और स्वतंत्र अमरीकी वायु का श्वसन करना होगा।''

विल्सन का मत था कि राजतंत्र की तुलना में प्रजातंत्र में प्रशासन को संगठित करना अधिक कठिन कार्य होता है। यही कारण है कि अमेरिका में प्रशासन विज्ञान की प्रगति काफी धीमी रही। इनका मानना है कि प्रशासन को सही दिशा निर्गत करने के लिए संविधान के साथ ज्यादा छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए। सरकारें संविधान के छेड़छाड़ में व्यस्त रहने के कारण प्रशासन पर ज्यादा ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाती हैं। इसलिए संवैधानिक सिद्धान्तों पर अधिक बहस ना करके प्रशासन के विज्ञान का व्यवस्थित विश्लेषण कर इसे समझने की कोशिश की जानी चाहिए।

विल्सन कहते हैं कि वे सरकारें जिनके शासक निरंकुश तो थे, लेकिन जब राजनीतिक प्रकाश के आधुनिक दिन आये, जिनमें अन्धों के अतिरिक्त सबको स्पष्ट हो गया है कि शासक, वास्तव में शासितों के सेवक हैं, वे प्रशासनिक व्यवहार के आधुनिक विकासों से भिन्न एवं अग्रणी हो गए हैं। पुन: स्मरण हेतु, वुडरो विल्सन ने अपना लेख ''प्रशासन का अध्ययन'' अमरीकी इतिहास के उस युग में लिखा था, जब अध्ययन का मुख्य केन्द्र-बिन्दु राज्य की प्रकृति और सरकार का उद्देश्य हुआ करता था। लोक प्रशासन का अध्ययन उन दिशाओं में विकसित हुआ है, जिन्हें प्रथम बार सन् 1887 में विल्सन ने अपने प्रसिद्ध निबन्ध, जिसे वे नम्रता से प्रशासनिक अध्ययनों का अर्ध-जनप्रिय परिचय कहते हैं, में सुझाया था यह निबन्ध आज विल्सन द्वारा इसके मूल्यांकन से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। संक्षिप्त में और पूर्णरूप से विल्सन एक प्रजातंत्र में प्रशासन की समस्याओं और विशेषताओं को निश्चित करते हैं। इस प्रकार वह पैगम्बरीय विशेषताओं के दावेदार बन जाते हैं। अगर प्रजातंत्र में प्रशासन को प्रभावशाली भूमिका निभानी है तो इसके व्यवहार में, अपने देश की समस्याओं का अध्ययन कर सुधार किया जाना चाहिए। साथ ही साथ 'किस विधि से विदेशी सरकारें अपने सार्वजनिक कार्य सम्पन्न करती हैं' की सावधानी से जांच की जानी चाहिए। इस प्रकार विल्सन ने सौ वर्ष से पहले ही तुलनात्मक प्रशासन के अध्ययन पर बल दिया था।

जब 1887 में विल्सन ने यह लेख लिखा था तो इससे पहले ही संयुक्त राज्य अमरीका ने 'पेन्डलटन अधिनियम' (1883) पारित कर दिया था। यह संघ लोक सेवाओं में भर्ती की योग्यता व्यवस्था का उद्-घोष था। विल्सन लोक सेवाओं में सुधार के अधिवक्ता थे और उनका लोक सेवा के सम्बन्ध में यह सन्दर्भ कि ''सुसंस्कृत, सोच समझकर और उत्साह के साथ कार्य करने में आत्मनिर्भर फिर भी स्वेच्छाचारिता या वर्ग भावना से बिल्कुल पृथक्'' प्रजातंत्र में लोक सेवा का सही वर्णन है।

2.3.3 राजनीति- प्रशासन द्वैतभाव

वुडरो विल्सन ने राजनीति और प्रशासन के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों को काफी गहनता से अध्ययन किया। परीक्षणोपरान्त राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव के सिद्धान्त का समर्थन किया। विल्सन का अभीष्ट, प्रशासन को राजनीति से पृथक करना था। इसके लिए विल्सन राजनीति और प्रशासन को एक-दूसरे से प्रथक बताते हुए राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव (Politics Administration Dichotomy) की वकालत करते हैं। इसके मतानुसार ''प्रशासन का क्षेत्र व्यवसाय का क्षेत्र है। यह राजनीति की आपाधापी और हंगामे से अलग होता है। प्रशासन संवैधानिक विवादों के विचार-विमर्श से भी दूर-दूर रहता है। प्रशासन स्वयं राजनीति के दायरे से बाहर ही रहता है। प्रशासनिक प्रश्न राजनीतिक प्रश्न नहीं होते हैं। यद्यपि राजनीति प्रशासन के लिए पाठ तैयार करती है और बताती है कि प्रशासन को क्या-क्या करना है? परन्तु राजनीति को चाहिए कि वह प्रशासनिक कार्यालयों का दुरूपयोग ना करें। इस प्रकार इस वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि विल्सन प्रशासन और राजनीति को अलग-अलग करके देखते हैं।''

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि एक ओर विल्सन राजनीति और प्रशासन के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे राजनीति प्रशासन द्वैतभाव के प्रबल समर्थक भी थे।

विल्सन ने अपना निबन्ध ''राजनीतिक'' या नीति जैसा कि आज इसे कहा जाता है, को प्रशासन से पृथक मानकर प्रारम्भ किया है। यह विरोधाभास अमान्य है। लेकिन क्या एक नई व्याख्या से इसे नहीं बचाया जा सकता है? राजनीति अभ्यास कर्त्ताओं को चाहिए कि वे दिन-प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्यों में हस्तक्षेप से बचें। यह बुद्धिमतापूर्ण दृष्टिकोण है, जिसकी उपेक्षा का दुष्प्रभाव प्रशासन को स्पन्दनहीन बना सकती है, जो विशुद्ध रूप से प्रशासनिक प्रश्न है। उनमें राजनीतिक हस्तक्षेप प्रणाघातक पाप है, विशेषकर भारत जैसे विकाशशील प्रजातंत्र में। वुडरो विल्सन ने सही अवलोकन किया था कि लोक प्रशासन की चिन्ताऐं संविधान निर्माताओं की चिन्ताओं से भिन्न हैं। संविधान निर्माताओं ने तो एक बड़े समाज में गम्भीर विरोधाभासों को पैदा किया था। इन दोनों की चिन्ताएँ इतनी अधिक भिन्न हैं कि संविधान का परिचालन (प्रशासन करना) संविधान निर्माण से अधिक कठिन हो गया है। विल्सन यह चाहते थे कि एक देश का लोक प्रशासन उन सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए, जिनमें ''प्रजातांत्रिक नीति हृदय में सन्निहित हो।'' दूसरे शब्दों में, संविधान में निहित सिद्धान्त प्रशासनिक प्रक्रियाओं और कार्यों में जज्ब (विलीन) हो जाने चाहिए तथा इन्हीं के अनुरूप शासन भी होना चाहिए। इसके लिए संविधान, इसकी विचारधारा और सिद्धान्तों का प्रशासन के साथ सामान्जस्य आवश्यक है। प्रशासनिक प्रक्रियाऐं और व्यवहार प्रबन्धकीय दृष्टिकोणों सहित संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप होनी चाहिए। लेकिन प्रबन्धकीय दृष्टिकोण जो किसी प्रशासन का हृदय है, का संवैधानिक मूल्यों के साथ सामान्जस्य हमेशा आसान या सरल नहीं होता। ऐसी परिस्थितियों में लघु मार्गों की उपेक्षा की जानी चाहिए तथा संविधान का विरोध ना करते हुए संघषों का समाधान किया जाना चाहिए। समकालीन भारत के लिए वुडरो विल्सन का बहुत अधिक औचित्य है।

2.3.4 प्रशासन एवं जनमत

प्रशासन और जनमत के सम्बन्धों का भी परीक्षण विल्सन ने किया। इनके मध्य किस प्रकार से सामंजस्य स्थापित किया जाय, इस विचारधारा का भी विल्सन ने काफी गहनता से अध्ययन किया। विल्सन का मानना है कि प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए जनमत की आलोचना से बचना चाहिए। जनमत एक सत्तावादी आलोचक की तरह कार्य करता है। यद्यपि प्रशासन के कार्यों में जन आलोचना का विशेष महत्व नहीं होना चाहिए, परन्तु नीति निर्धारण में आलोचना काफी लाभदायक है, अपितु पूरी तरह से अनिवार्य भी है। अतः विल्सन का मत था कि प्रशासनिक अध्ययन को जन आलोचना नियंत्रण का सबसे अच्छा साधन खोजना चाहिए और साथ ही उसे प्रशासन में हस्तक्षेप से बचना चाहिए।

2.3.5 लोक सेवा

विल्सन तकनीकी रूप से शिक्षित सिविल सेवा की वकालत करते हैं। जीवन्त लोकतंत्र के लिए योग्यता आधारित सिविल सेवा अपरिहार्य है। यद्यपि विल्सन का विश्वास था कि प्रशासक सिद्धान्ततः राजनीतिक प्रक्रिया में सम्मलित नहीं होते हैं पर साथ ही वे ऐसे नौकरशाह अभिजन-वर्ग बनाने के विरूद्ध थे, जो लोकतांत्रिक नियंत्रण में ना हों।

विल्सन अमेरिका में लोक सेवाओं में सुधार लाने के समर्थकों में अग्रणी थे। उनका मत था कि सिविल सेवा पेशेवर रूप में समर्थ और राजनीतिक रूप से निष्पक्ष होनी चाहिए। वस्तुतः विल्सन पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने राजनीतिक रूप से तटस्थ लोक सेवा का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इन्होंने बड़ी बुद्धमत्ता से लोकतंत्र में लोक सेवकों के विकास के लिए सही मार्ग-दर्शन चित्रित किया। इस प्रकार विल्सन ने आधुनिक सेवीवर्गीय प्रशासन की आध्यात्मिक आधार शिला की नींव रखी। अमेरिका में लोक सेवकों के सुधार में जो प्रयास किये जा रहे थे वे सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार की शुरूआत थी। ये सुधार जो सेवा को पक्षपात विहीन बनाने का इरादा रखते थे, ने प्रशासन को व्यवसाय के समान चलाने का रास्ता दिखाया। नियुक्तियों में सुधार, कार्यपालिका के कार्यों

में सुधार व क्रियाओं पर भी लागू होना चाहिए। उपरोक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि वुडरो विल्सन सिविल सेवा सुधार के अग्रदूत थे। उन्होंने पेशे से योग्य और राजनीतिक रूप से तटस्थ सार्वजनिक कर्मचारियों जो सिविल सेवा का अधार बने, का विचार प्रदान किया। विल्सन में इस प्रकार आधुनिक कार्मिक प्रशासन का बौद्धिक आधार मिलता है। यह नीबूर थे, जिन्होंने बेधड़क कहा था, स्वतंत्रता अतुलनीय रूप से संविधान की अपेक्षा प्रशासन पर निर्भर करती है। यह एक महत्वपूर्ण अवलोकन है, जिसमें व्यापक सच्चाई निहित है। प्रशासन एक निरन्तर प्रक्रिया है और समाज में यह असंख्य बिन्दुओं में सक्रिय रहती है। एक व्यक्ति की स्वतंत्रता इसी प्रकार के प्रशासनिक बन्दोबस्त और क्रियाओं का परिणाम है। लोक प्रशासन सार्वजनिक कानून का विस्तृत एवं व्यवस्थित क्रियान्वयन है। सामान्य कानून का प्रत्येक क्रियान्वयन प्रशासन का एक कार्य है।

कर निर्धारण और संग्रह, अपराधी को फांसी, डाक भेजना और वितरण, थल और जल सेना में भर्ती और इनका शस्त्रीकरण इत्यादि, स्पष्ट रूप से प्रशासन के कार्य हैं। लेकिन सामान्य कानून जो इन समस्त कार्यों को सम्पन्न करने के निर्देश देते हैं, वे प्रशासन के बाहर और ऊपर हैं। सरकार के कार्यों की व्यापक योजनाएँ प्रशासनिक नहीं हैं। लेकिन इन योजनाओं का व्यापक क्रियान्वयन प्रशासनिक है, जैसा कि हमारा अनुभव दर्शाता है। स्वतंत्रता के वास्तविक प्रयोग की सुविधा मौलिक अधिकारों के माध्यम से संवैधानिक प्रत्याभूतियों (गारंटी) की अपेक्षा प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर अधिक निर्भर करती हैं। लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि एक समाज बिना प्रत्याभूतियों सहित प्रभावशाली संवैधानिक व्यवस्थाओं से स्वतंत्रता का आनन्द नहीं उठा सकता। वुडरो विल्सन के इस अवलोकन से यह प्रश्न बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि ''स्वतंत्रता संवैधानिक सिद्धान्त से पृथक् नहीं हो सकती और कोई भी प्रशासन कितना ही पूर्ण और अनुदारवादी क्यों ना हो, वह अगर सरकार के अनुदारवादी सिद्धान्तों पर आधारित है तो वह व्यक्तियों को घटिया और नकली स्वतंत्रता ही दे सकता है।''

समाज में प्रशासन के महत्व में वृद्धि को देखते हुए वुडरो विल्सन ने सुयोग्य प्रशासक को तैयार करने के लिए औपचारिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है। उन्होंने संस्तुति की कि ''प्रजातन्त्र को संगठित करने के लिए लोक सेवकों के लिए प्रतियोगितात्मक परीक्षाएँ (इन्हें लोक सेवा अधिनियम 1883, जिसे पैन्डलटन अधिनियम भी कहा जाता है, दिया गया है) होनी चाहिए, जिनकी परीक्षा उदार के साथ-साथ तकनीकी ज्ञान के लिए भी होगी।'' उन्होंने स्पष्ट कहा कि ''तकनीकी में प्रशिक्षित लोक सेवा अब पूर्णतः अपरिहार्य हो गयी है।'' प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में स्वयंसिद्ध प्रशासनिक सिद्धान्तों और तकनीकों के अध्ययन और क्रियान्वयन पर बल दिया जाना चाहिए। वहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि विल्सन उदार शिक्षा के समर्थक थे। जबकि संयुक्त राज्य अमरीका में सम्पन्न होने वाली प्रतियोगितात्मक परीक्षाएँ एक उम्मीदवार के तकनीकी (विषय विशेष सम्बन्धी) ज्ञान की परीक्षा करती थी। केवल वरिष्ठ कार्यपालिका सेवा की 'द्वितीय इवर समिति' द्वारा संस्तुति के पश्चात ही, अमेरिकी प्रशासन के उदार परीक्षण के आधार पर प्रतियोगितात्मक परीक्षाएँ प्रारम्भ हुई।

2.3.6 तुलनात्मक लोक प्रशासन

विल्सन तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रवर्तक के रूप में भी जाने जाते हैं। विल्सन ने दार्शनिक विधि को अस्वीकार करते हुए ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक विधि पर जोर डाला। वे चाहते थे कि विश्व के अन्य देशों से भी लोक प्रशासन के अच्छे सिद्धान्तों का अध्ययन करके अमेरिका में लागू किया जाए, फलस्वरूप अमेरिका का प्रशासन सबसे अच्छा हो सके।

विदेशी सरकारों के तुलनात्मक अध्ययन से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि इनमें संरचनात्मक समरूपता होती है। विल्सन ने कहा कि ''एक स्वतंत्र मानव में वे ही सब शारीरिक अंग होते हैं, वे ही कार्य करने वाले भाग होते हैं

जो एक दास में होते हैं। उसके इरादे, सेवाएँ और ऊर्जा भिन्न क्यों ना हो।'' राजतंत्र और प्रजातंत्र अन्य बातों में एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, लेकिन वास्तव में इनके कार्य करीब-करीब समान होते हैं।

इसका अभिप्राय बिना सोचे समझे प्रशासनिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं का प्रत्यारोपण नहीं है। एक देश की प्रशासनिक संस्थाएँ दूसरे देश में जबरदस्ती थोपी नहीं जा सकती हैं। विल्सन का मत था कि अमरीकी व्यवस्था में विदेशी व्यवस्थाओं का प्रत्यारोपण सफल नहीं हो सकता। लेकिन क्यों नहीं ऐसे विदेशी अविष्कारों के भागों को जिन्हें हम चाहते हैं और जो थोड़ा भी उपयोगी हो सकते हैं, अपना लें, हमें अपरिचित प्रयोग से खतरा नहीं है। हमने विदेशों से चावल आयात किया, लेकिन चावल चौपस्टिक से नहीं खाते। हमने समस्त राजनीतिक भाषा इग्लैण्ड से उधार ली है, लेकिन हमने इसमें से 'राजा' और 'लार्ड' जैसे शब्द पृथक कर दिए हैं। अगर हम इनकी विशेषताओं के आवश्यक अन्तर को समझ लेते हैं तो हम प्रशासन के विज्ञान को पूर्ण सुरक्षा और लाभ के साथ उधार ले सकते हैं। हमें इसे केवल अपने संविधान के माध्यम से छानना है। आलोचना की धीमी आंच के ऊपर रखना और इसे विदेशी गैसों से परिशोधित करना है।

विल्सन का विचार है कि तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग प्रशासन के क्षेत्र की अपेक्षा अन्यत्र कहीं भी लाभदायक नहीं हो सकता। उन्होंने कहा था ''अन्ततः सर्वोत्तम होगा कि हम अपने वातावरण से दूर हो जाऐं और ऐसी व्यवस्थाएँ, जैसे फ्रान्स और जर्मनी की व्यवस्थाओं का सावधानी से परीक्षण करें। ऐसे जनसम्पदा साधनों से अपनी संस्थाओं को देखने में हम स्वयं को वैसे ही देखते हैं, जैसे विदेशी हमें देखें। अगर वे हमें पूर्वाग्रहों के बिना देखना चाहें। स्वयं के बारे में अगर हम केवल अपने को ही जानते हैं, तो हम कुछ नहीं जानते।'' वुडरो विल्सन की धारणा थी कि ''एक चाकू को तेज करने की विधि एक हत्यारे से भी सीखी जा सकती हैं।'' उन्होंने चेतावनी दी कि ''हमारी राजनीति सभी सिद्धान्तों और व्यवस्थाओं की मुख्य कसौटी होनी चाहिए। ये केवल पूर्ण अनुभव द्वारा ही स्वीकृत नहीं, बल्कि अमरीकी स्वभाव के अनुकूल भी होनी चाहिए। इसके सैद्धान्तिक पूर्णता के लिए बिना हिचकिचाहट के अंगीकृत किया जाना चाहिए।

वुडरो विल्सन के मुख्य विचारों को संक्षेप में बताया जा सकता है-

- प्रशासन का महत्व समाज कल्याण की दिशा में निरन्तर बढ़ता जा रहा है।
- प्रशासन को 'विज्ञान' कहा जा सकता है।
- व्यक्तियों को प्रशासन के सिद्धान्त एवं तकनीकें सिखाई और पढ़ाई जा सकती हैं।
- प्रशासन के कार्य निष्पक्ष, व्यापक और प्रबन्धकीय (व्यवसाय सामान) होते हैं।
- प्रशासन की प्रक्रियाएँ और तकनीकें होती हैं, जो सार्वभौमिक रूप से लागू होती हैं। इसलिए सभी आधुनिक सरकारों के लिए समान होती हैं।
- प्रशासन ज्ञान का क्षेत्र है, जिसे महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में ग्रहण किया जा सकता है।
- प्रशासन राजनीति से पृथक है।
- प्रशासनिक अध्ययन में अन्य सरकारों के अनुभवों को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोक प्रशासन के जनक कौन थे? इनका जन्म कहाँ हुआ था?
2. वुडरो विल्सन की कतिपय रचनाएँ कौन-कौन सी हैं?
3. राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव से क्या तात्पर्य है?

4. तटस्थ सेवा सिद्धान्त क्या है।

2.4 सारांश

वुडरो विल्सन जिन्हें लोक प्रशासन का जनक माना जाता है, का लोक प्रशासन में बड़ा सम्मान किया जाता है। जून 1887 में 'पॉलिटिकल साइन्स क्वार्टरली' में छपे अपने लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' के पश्चात ही एक अध्ययन अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन की विकास यात्रा प्रारम्भ हुई। आठ साल तक अमेरिका के राष्ट्रपति तथा प्रिन्सटन विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के प्रोफेसर रहे विल्सन की ख्याति किसी से सानी नहीं है।

अपने लेख में विल्सन ने ''राजनीति-प्रशासन द्वैतभाव'' के विचार का समर्थन किया और इस बात की वकालत की कि राजीनतिक प्रश्न, प्रशासनिक प्रश्नों से भिन्न होते हैं। देश का संविधान बनाना उनके मत में आसान है, किन्तु उसे चलाना कठिन। उसे चलाने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। विल्सन लोक प्रशासन को विधि के विस्तृत और व्यवस्थित क्रियान्वयन के रूप में परिभाषित सकते हैं और प्रशासन के विज्ञान पर बल देते हैं।

राजनीति और प्रशासन के सम्बन्धों पर विल्सन के विचार उलझे हुए मालूम पड़ते हैं, क्योंकि कहीं-कहीं तो वे राजनीति और प्रशासन के बीच घनिष्ठ सम्बन्धों की चर्चा करते हैं, तो कहीं राजनीति और प्रशासन को अलग-अलग करके देखने की वकालत करते हैं।

विल्सन प्रशासन और जनमत के सम्बन्धों की भी चर्चा करते हैं और इस बात का परीक्षण करते हैं कि प्रशासन के संचालन में जनमत के किस भाग को लेना चाहिए। इसी प्रकार विल्सन तकनीकी रूप से शिक्षित सिविल सेवा की वकालत करते हैं। प्रशासन के अध्ययन की विधियों की चर्चा करते हुए विल्सन तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक पद्धतियों की उपादेयता स्पष्ट करते हैं तथा दार्शनिक पद्धति को अस्वीकार करते हैं। निःसन्देह विल्सन के पथ-प्रदर्शक योगदान के लिए लोक प्रशासन सदैव उनका ऋणी रहेगा।

2.5 शब्दावली

द्वैतभाव- दो तरह के भाव, जनमत- जनता का मत, लोकतंत्र- जनता के द्वारा चुने गये लोग, आरूढ़- बैठकर, अभिष्ठ- चाहना, सन्निहित- शामिल, जब्ब- विलीन होना या मिल जाना, उपादेयता- उपयोगिता

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लोक प्रशासन के जनक वुडरो विल्सन थे। इनका जन्म अमेरिका के वर्जीनिया राज्य में हुआ था।
2. रचनाओं वाले शीर्षक के अन्तर्गत अध्ययन करें।
3. योगदान वाले शीर्षक में उत्तर निहित है।
4. लोक सेवा नामक शीर्षक में उत्तर समाहित है।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रशासनिक विचारक- श्री राम माहेश्वरी।
2. द गैलेक्सी आफ एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स- पी0 बी0 राठौर।
3. प्रशासनिक एवं प्रबन्ध चिंतक- एस0 एल0 गोयल।
4. लोक प्रशासन- डॉ0 बी0एल0 फड़िया।
5. प्रमुख प्रशासनिक विचारक- नरेन्द्र कुमार थोरी।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रमुख प्रशासनिक विचारक- नरेन्द्र कुमार थोरी, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स।
2. प्रशासनिक विचारक, आर0 पी0 जोशी एवं अंजु पारीक, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर।

2.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विल्सन द्वारा लोक प्रशासन के क्षेत्र में योगदान की समीक्षा कीजिए।
2. विल्सन के मुख्य विचारों की विवेचना कीजिए।

इकाई- 3 हेनरी फेयोल

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 हेनरी फेयोल- एक परिचय
3.3 प्रबन्धन बनाम प्रशासन
3.4 हेनरी फेयोल: प्रबन्धन और औद्यौगिक उपक्रम
3.5 प्रबन्धन के तत्व
3.6 प्रशासन के सिद्धान्त
3.7 वैज्ञानिक प्रबन्धन और फेयोल
3.8 फेयोल और प्रकार्यात्मकावाद
3.9 फेयोल के सिद्धान्तों में सार्वभौमिकता
3.10 सारांश
3.11 शब्दावली
3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

प्रबन्धन विचारधारा पश्चिम की देन है। इसकी जड़ें यूनान तक फैली हुई हैं। प्लेटो और अरस्तु ने वैज्ञानिक पद्धति की नींव डाली। 19वीं सदी के दौरान यूरोप और अमेरिका में प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में क्रान्ति की एक बाढ़ आ गई। यह क्रान्ति थी प्रबन्धन या प्रशासन को वैज्ञानिकता प्रदान करने की और इस क्रान्ति के अगुआ थे फ्रेडरिक टेलर (1856-1915) और हेनरी फेयोल (1841-1925)। यहाँ हमारा विषय है- हेनरी फेयोल के प्रशासनिक सिद्धान्त।

आप पढेंगे कि किस तरह एक खनन कम्पनी के इन्जीनियर की हैसियत से फेयोल ने अपना कैरियर आरम्भ किया और अपनी प्रशासकीय दक्षता से एक जर्जर कम्पनी को सफलता की ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया। यह कमाल था, नये नजरिये का और गहरी सोच का। हेनरी फेयोल कम्पनी से एम0डी0 की हैसियत से रिटायर हुये। लेकिन जीवन के अन्त तक उसके निदेशक बने रहे। रिटायरमेंट के बाद अब आराम का समय था, लेकिन फेओल ने जो कुछ अनुभव लिया था, उस पर चिन्तन करना आरम्भ किया।

इस चिन्तन का नतीजा है उनका महान ग्रन्थ 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमैन्ट।' इस ग्रन्थ ने प्रबन्धन/प्रशासन को वैज्ञानिक बना दिया, उसको सार्वभौमिकता प्रदान की और ऐसे सिद्धान्त प्रतिपादित किये जिनसे छुटकारा पाना कठिन है।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- एक प्रबन्धक निदेशक (फेयोल) किस तरह एक प्रशासनिक चिन्तक बना, इसे जान पायेंगे।
- अनुभवात्मक पद्धति ने किस तरह प्रबन्धन की अवधारणा को वैज्ञानिकता प्रदान की, इसे समझ पायेंगे।
- प्रबन्धन और प्रशासन में अन्तर क्या है, इसे जान पायेंगे।
- प्रबन्धन /प्रशासन के तत्व क्या हैं और प्रशासन किन सिद्धान्तों पर टिका है, इसे समझ पायेंगे।

3.2 हेनरी फेयोल- एक परिचय

निजी उद्यमों पर सरकारी कार्यालयों को चलाने के लिए पश्चिमी जगत में प्रबधन (Management) पर बहुत कुछ लिखा गया है। फ्रेडरिक टेलर तथा हेनरी फेयोल ऐसे दो विचारक हैं, जिन्होंने प्रबन्धन के अनुभावात्मक अध्ययन के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर जोर दिया है। हेनरी फेयोल को प्रबन्धन प्रक्रिया विचारधारा (Management process school) का प्रतिपादक माना जाता है। इसलिये आपको यह समझना है कि प्रशासन के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रबन्धन एक क्रान्ति है और इस क्रान्ति का अगुआ फेयोल हैं।

हेनरी फेयोल ने तुर्की के प्रसिद्ध नगर कुसतुनतुनिया में सन् 1841 को जन्म लिया। लेकिन फेयोल तुर्कीस नहीं था, फ्रान्सीसी था। उसने खादानों के स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की। 19 वर्ष की आयु में वह एक खदान कम्पनी में इन्जीनियर हो गया। सन् 1888 में वह अपनी प्रतिभा के बल-बूते पदोन्नति पाकर इसी कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर बन गया। 30 वर्ष तक वह इस पद पर बना रहा। दिसम्बर 1925 में उसका देहान्त हुआ। कम्पनी में एम0डी0 की हैसियत से जिस तरह उसने काम किया वह फ्रान्स के उद्योग इतिहास में वह अमर हो गया। जिस बात के लिये उसे याद किया जाता रहेगा वह उसकी योग्यता, कर्मठता या दक्षता नहीं है बल्कि प्रबन्धन की वह व्यवस्था है, जिसको उसने विकसित किया और लागू किया।

सेवानिवृत्त होने के बाद उसने अपना सारा समय प्रबन्धन और प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलुओं के अध्ययन पर लगा दिया। उसने 'सेन्टर फॉर एडमिनिस्ट्रेटिव स्टडीज' की फ्रान्स में स्थापना की। इस संस्था का गहरा प्रभाव फ्रान्स के वाणिज्य, सेना और नेवी पर पड़ा। फ्रान्सीसी शासन द्वारा प्रशासन के सिद्धान्तों पर ध्यान देने के पीछे फेयोल का बड़ा हाथ था।

फेयोल तकनीकी, वैज्ञानिक और प्रबन्धकीय विषयों पर लिखने वाला बड़ा निर्णायक लेखक था। उसकी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक 'जनरल एण्ड इण्डिस्ट्रियल मेनेजमैन्ट' है जो सन् 1916 में प्रकाशित हुई। फेयोल का एक शोध-पत्र 'दि थ्योरी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि स्टेट' जो सन् 1923 में प्रशासनिक विज्ञान की दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस में फेयोल ने प्रस्तुत किया, उसे लोक प्रशासन के सिद्धान्त में एक बड़ा योगदान माना गया है।

3.3 प्रबन्धन बनाम प्रशासन

'प्रबन्धन' और 'प्रशासन' जैसी शब्दावली पर तब विवाद छिड़ गया, जब फेयोल ने अपनी पहली रचना के लिये 'प्रशासन' शब्द का प्रयोग किया, लेकिन जब इस ग्रन्थ (Administration Industrielle et Générale) का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया तो शब्द 'प्रबन्धन' का प्रयोग हुआ। ब्राडी के अनुसार 'प्रबन्धन' के स्थान पर 'प्रशासन' शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित है। लेकिन आपको एक बात याद रखना होगी कि फेयोल ने व्यापार प्रबन्धन और लोक प्रशासन में कहीं भी कोई अन्तर नहीं बताया है।

आमतौर पर अंग्रेजी भाषाई देशों में प्रबन्धन का सम्बन्ध औद्योगिक और वाणिज्य सम्बन्धी उद्यमों की गतिविधियों से जोड़ा जाता है। जबकि लोक प्रशासन का सम्बन्ध शासकीय क्रिया-कलापों से बताया जाता है। लेकिन फेयोल का तर्क है कि प्रबन्धन और लोक प्रशासन में भेद करना अनुचित है। उसने अपने शोध पत्र में लिखा, ''मैंने 'प्रशासन' शब्द को जो अर्थ दिया है, वह प्रशासनिक विज्ञान के क्षेत्र को विस्तृत करता है। इसमें लोक सेवाऐं भी शामिल हैं। सभी प्रकार के उपक्रमों को योजना, संगठन, आदेश, समन्वय और नियंत्रण की आवश्यकता होती है। प्रशासनिक विज्ञान के अनेक प्रकार नहीं हो सकते। केवल एक ही विज्ञान है जो निजी और लोक मामलों पर समान रूप से लागू होता है।

फेयोल का मानना था कि प्रबन्धन या प्रशासन के अध्ययन को उपभागों में विभाजित करना कठिन है। कुछ विद्वानों का मानना है कि फेयोल केवल औद्योगिक प्रबन्धन को अपना विश्लेषण क्षेत्र बनाना चाहता था। लेकिन प्रबन्धन के बारे में उसके विचारों में सार्वभौमिकता है। यह बात उसके इस कथन से सिद्ध होती है कि ''प्रबन्धन सरकारी उपक्रमों(Undertakings) में एक महत्वपूर्ण भाग अदा करता है, चाहे वे उपक्रम छोटे हों या बड़े, औद्योगिक हो या व्यापार सम्बन्धी, राजनीतिक हों या धार्मिक।''

3.4 हेनरी फेयोल: प्रबन्धन और औद्योगिक उपक्रम

अब तक हमने आपको यह समझाने का प्रयास किया है कि लोक प्रशासन के क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रबन्धन की अवधारणा ने वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था को बहुत प्रभावित किया है और इसका बहुत कुछ श्रेय फेयोल को जाता है। वह प्रबन्धन और प्रशासन को दो अलग-अलग शास्त्र नहीं मानता है। यहाँ यह भी याद रखना चाहिए कि क्योंकि फेयोल ने खनन से सम्बन्धित एक व्यवसायिक कम्पनी में इंजीनियर से लेकर महाप्रबन्धक(एम0डी0) की हैसियत से काम किया था, इसलिये वह औद्योगिक उपक्रमों से सम्बन्धित प्रबन्धन का माहिर था। उसके अनुसार एक औद्योगिक उपक्रम की सम्पूर्ण गतिविधियों को छ: भागों में बांटा जा सकता है, वे इस प्रकार से हैं-

1. **तकनीकी गतिविधियां-** इनमें उत्पादन और निर्माण कार्य इत्यादि आते हैं। प्रगति और विकास के लक्ष्य को पाने के लिये यह गतिविधियां बहुत महत्वपूर्ण हैं।
2. **वाणिज्य सम्बन्धी गतिविधियां-** क्रय, विक्रय और वस्तु विनिमय इनमें आती हैं। व्यापार क्रियाओं का ज्ञान बहुत अनिवार्य है। व्यापार से सम्बन्धित अध्ययन बाजार पर, माँग और पूर्ति पर, प्रतियोगिता और वित्त की स्थिति पर नजर रखता है।
3. **वित्तीय गतिविधियां-** यहाँ पूँजी महत्वपूर्ण विषय है। पूँजी जुटाना और उसका अधिकतम उपयोग करना वित्तीय गतिविधि का महत्वपूर्ण पहलू है। कर्मचारियों, मशीनों, कच्चे माल इत्यादि के लिये पूँजी अनिवार्य हैं। यह तभी सम्भव है, जब वित्तीय प्रबन्धन चुस्त-दुरूस्त हो।
4. **सुरक्षा गतिविधियां-** इसमें सम्पत्ति और व्यक्तियों की सुरक्षा आती है। चोरी, आग, बाढ़ और ऐसे समस्त सामाजिक परेशानियां, जैसे- दंगे, उत्पात और हड़तालें औद्योगिक उत्पादन को प्रभावित करते हैं। इनसे गतिविधियों को सुरक्षित रखना अनिवार्य है।
5. **लेखा-जोखा गतिविधियां-** एक प्रभावशाली लेखा-व्यवस्था(Accounting) जिससे संगठन की वित्तीय स्थिति का सही आंकलन किया जा सके। प्रबन्धनकीय उपकरण का एक महत्वपूर्ण अंग होता है।
6. **प्रबन्धकीय गतिविधियां-** फेयोल प्रबन्धन को एक कार्य या क्रिया मानता है। प्रबन्धन में लगे लोगों पर वह अधिक ध्यान नहीं देता है। उसका विषय केवल क्रियाएँ हैं। लेकिन वह स्वीकार करता है कि जो उच्चतर पदों पर काम करते हैं और पद-सोपानीय व्यवस्था में ऊपरी स्तर पर होते हैं, वे अपना समय

कार्यों में अधिक लगाते हैं। प्रबन्धकीय क्रियाएँ पांच प्रकार की होती हैं- योजना, संगठन, आदेश, समन्वय और नियंत्रण।

फेयोल का मानना है कि भले ही संगठन की प्रकृति कैसी भी हो चाहे बड़ा हो या छोटा, सरल हो या जटिल, औद्योगिक विहीन अथवा लाभ विहीन, औद्योगिक प्रबन्धन की छ: गतिविधियां सदा बनी रहेंगी। यह फेयोल का ही आग्रह है कि प्रबन्धन को शिक्षा संस्थाओं में अध्ययन का विषय होना चाहिए। वह इस बात से दु:खी था कि उसके समय तक प्रबन्धन का कोई सिद्धान्त नहीं था। इसीलिये उसने ''जनरल और इण्डस्ट्रियल मैनेजमैन्ट'' जैसे महान ग्रन्थ की रचना की।

3.5 प्रबन्धन के तत्व

हमने अभी आपको यह बताया कि फेयोल ने प्रबन्धकीय गतिविधियों को पांच तत्वों में विभक्त किया था। यहाँ आप 'प्रबन्धन' के स्थान पर 'प्रशासन' शब्द का भी प्रयोग कर सकते हैं, क्योंकि फेयोल दोनों में कोई अन्तर नहीं मानता है। इस कारण हम संक्षेप में इन पांच तत्वों- योजना, संगठन, आदेश, समन्वय और नियंत्रण का संक्षेप में वर्णन करेंगे-

1. **योजना-** योजना से फेयोल का अभिप्राय है कि पहले से किसी बात का ज्ञात होना, किसी बात को पहले से मान लेना, एक खाका तैयार करना। फेयोल की नजर में प्रशासन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है, आगे बढ़ना या काम की योजना तैयार करना। योजना एक स्पष्ट तस्वीर सामने लाती है। उसमें समीपीय और दूरगामी रास्ते निश्चित किये जाते हैं। अनुभव यर्थाथवादी योजना की पूँजी है। फेयोल के अनुसार एकता, निरन्तरता, लचीलापन और संक्षिप्तता अच्छी योजना की विशेषताऐं हैं।
2. **संगठन-** फेयोल की नजर में संगठन, प्रबन्धन या प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पहलू है। एक औद्योगिक संस्थान या सरकारी एजेन्सी को संगठित करने के लिए कच्चे माल, उपकरण, पूँजी, कर्मचारी इत्यादि सभी की आवश्यकता होती है। ऐसी गतिविधियां दो प्रकार की होती हैं- भौतिक संगठन तथा मानव संगठन। मानव संगठन में कर्मचारी, नेतृत्व और संगठन संरचना जैसे तत्व आते हैं। प्रत्येक संगठन में निम्न प्रबन्धकीय कार्य किये जाते हैं-
    - योजना की तर्कपूर्ण तैयारी और क्रियान्वयन;
    - मानवीय और भौतिक संगठन का स्रोतों, संसाधनों और लक्ष्यों के अनुरूप होना;
    - एक योग्य सत्ता की स्थापना;
    - क्रियाओं में समन्वय पैदा करना;
    - स्पष्ट, निश्चित और संक्षिप्त निर्णय;
    - योग्य, कर्मठ, निष्ठावान कर्मचारियों की भर्ती;
    - कत्तव्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना;
    - कर्मचारियों को उत्तरदायित्व निभाने के लिये प्रेरित और प्रोत्साहित करना;
    - सेवा के लिये कर्मचारियों को पुरस्कृत करना;
    - अनैतिक और अनुशासन आचरण के विरूद्ध प्रतिबंध लगाना;
    - अनुशासन के लिये माहौल तैयार करना;

- निश्चित करना कि व्यक्ति हित सामान्य हितों के अधीन है;
- आदेश की एकता पर ध्यान देना;
- मानव और भौतिक संगठन का निरीक्षण करना;
- नियंत्रण रखना तथा
- नियमों, लाल फीताशाही और कागजी कामों से बचना।

3. **देश-** हम पहले लिख चुके हैं कि किसी संगठन में आदेश ऊपर से नीचे की ओर आते हैं। आदेश देना एक कला है। फेयोल के अनुसार यह कला व्यक्तिगत गुणों और प्रबन्धन के सिद्धान्तों के ज्ञान पर निर्भर करती है। फेयोल के अनुसार एक प्रबन्धक जो आदेश देता है, उसमें निम्नलिखित विशेषताऐं होनी चाहिए-
   - सेवीवर्ग का उसे पूरा ज्ञान हो;
   - आयोग्य व्यक्तियों को वह हटाए;
   - प्रबन्धन के सिद्धान्तों का उसे पूरा ज्ञान हो;
   - स्वयं अच्छे उदाहरण प्रस्तुत करे;
   - संगठन का समय-समय पर आडिट करे;
   - अधीनस्थ अधिकारियों की बैठकें ले;
   - विस्तार का शिकार ना बने तथा
   - ऐसा प्रयास करे, जिससे कर्मचारियों में समर्पण की भावना पैदा हो।
4. **समन्वय-** संगठन में भौतिक संरचनाओं के साथ-साथ व्यक्तियों का बहुत महत्व होता है। व्यक्ति या कर्मचारी मशीन नहीं होते हैं। उनमें भावनाएँ और संवेदनशीलता होती हैं। मुख्य कार्यपालक का यह उत्तरदायित्व है कि वह इन मनोवैज्ञानिक तत्वों को समझ कर संगठन की गतिविधियों में समरसता लाये। प्रयास यह करे कि संगठन की एक इकाई दूसरी इकाई की पूरक हो और सब इस तरह काम करें कि संगठन का लक्ष्य पूरा हो जाये।
5. **नियंत्रण-** समन्वय तभी सम्भव है, जब मुख्य कार्यपालक का संगठन की समस्त गतिविधियों पर प्रभावशाली नियंत्रण हो। योजना के अनुसार कार्य होना चाहिए। प्रशासन के सिद्धान्तों को नजर में रखना चाहिए। निर्देशों तथा समादेशों के माध्यम से नियंत्रण प्रभावशाली हो सकता है। नियंत्रण का एक लक्ष्य अनुशासन और सदाचार को बनाये रखना है। मुख्य कार्यपालक की नजर पैनी होनी चाहिए। वह देखे, परखे, निरीक्षण करता रहे। जो सही करता है उसे प्रोत्साहित करे और जो गलत करता है उसे दण्डित करे। वह एहसास कराये कि वह जाग रहा है और सबको देख रहा है।

3.6 प्रशासन के सिद्धान्त

हम पहले आपको बता चुके है कि फेयोल की दृष्टि में प्रबन्धन और प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है। हाँ इतना जरूर है कि जब आप औद्योगिक उपक्रम की बात करें तो प्रबन्धन शब्द का प्रयोग कर सकते हैं और जब सरकारी विभागों की बात करें तो प्रशासन शब्द का प्रयोग करना उचित होगा। दोनों सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं है। वास्तव मे फेयोल प्रशासन शब्द का प्रयोग करना पसन्द करता है।

आप यहाँ पढेंगे कि जब प्रशासन या प्रबन्धन के सिद्धान्तों पर नजर डाली जाती है तो लौट-फेरकर हम वहीं आते हैं, जिनका वर्णन किसी ना किसी रूप में पहले किया जा चुका है। वास्तव में फेयोल यह समझाना चाहता है कि प्रशासन के सिद्धान्त कोई अन्तिम कानून नहीं है, उनमें लचीलापन है और वे समय और परिस्थितियों के अनुसार संगठन में लागू होते हैं। फेयोल ने प्रशासन के 14 सिद्धान्तों की ओर इशारा किया है। इनमें श्रम विभाजन या विशेषज्ञता, प्राधिकार या सत्ता, अनुशासन, आदेश की एकता, निर्देश की एकता, सामान्य हित को सर्वोच्चता, कर्मचारियों के मेहनताना की तार्किकता, केन्द्रीकरण, पदसोपानीय व्यवस्था, पद व्यवस्था, न्यायसगंत आचरण, स्थायित्व, पहल और एकता एवं समरसता आती है। संक्षेप में-

1. श्रम विभाजन का अर्थ है कि लोगों को उनकी योग्यता के अनुसार काम दिया जाये, ताकि कार्यों में तीव्रता और निपुणता आये।
2. प्राधिकार या सत्ता का अर्थ यह है कि संगठन में प्रत्येक स्तर पर अधिकारियों को निर्णय लेने और उन्हें लागू करने का अधिकार मिलना चाहिए। कार्य की तत्परता के लिये यह अनिवार्य है।
3. अनुशासन किसी संस्थान के लक्ष्यों की प्राप्ति की एक अनिवार्य शर्त है। यहाँ अनुशासन से अभिप्राय संगठन में लगे लोगों के मध्य मधुर और समरस रिश्तों से है।
4. आदेश की एकता प्रशासन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, जिसका अर्थ है कि अधीनस्थों का अपने क्षेत्र में एक ही साहब(मुख्य अधिकारी जो आदेश देता है) हो। अनेक साहब होने से असमंजस की स्थिति पैदा होती है।
5. निर्देशन की एकता भी अनिवार्य है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक योजना का एक अलग प्रमुख होना चाहिए। इससे कार्य की पूर्ति में उलझाव नहीं होता है।
6. सामान्य हित एक लक्ष्य है, यहाँ व्यक्तित्व हितों को त्यागना होगा।
7. मेहनताने में तार्किकता होनी चाहिए। कर्मचारियों को कम से कम इतना मेहनताना दिया जाये जिससे वे संतुष्ट हों।
8. केन्द्रीकरण भी अनिवार्य है। इसका अर्थ है कि निर्णय लेने या पहल करने का अधिकार संगठन के प्रमुख का होना चाहिए। प्रमुख अपनी इस शक्ति को परिस्थितियों के अनुसार हस्तान्तरित कर सकता है।
9. पद-सोपानीय व्यवस्था, प्रशासन का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसका अर्थ है कि संगठन में आदेश और अनुपालन ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर प्रत्येक स्तर (चैनल) से होकर गुजरे। इससे किसी स्तर पर मनोवैज्ञानिक तनाव नहीं पैदा होगा।
10. व्यवस्था का अर्थ है कि संगठन की संरचना के बाद व्यक्तियों को उनकी योग्यतानुसार उचित पद पर नियुक्ति मिले ताकि वे अपनी प्रतिभा के अनुसार संगठन को अपना अधिकतम योगदान दे सकें।
11. न्यायसंगत आचरण संगठन की सफलता के लिये बहुत अनिवार्य है। इसका अर्थ है कि कर्मचारियों या अधिकारियों को कार्यों के प्रति निष्ठावान बनाये रखने के लिये उनके साथ न्याय-संगत व्यवहार करना चाहिए। सहानुभूति, संवेदनशीलता और विनम्रता के द्वारा ऐसा किया जा सकता है।
12. स्थायित्व का अर्थ है कि कर्मचारियों की नौकरियां स्थायी हों। हर समय उन के सिर पर नौकरी की अनिश्चितता की तलवार ना लटकती रहे। सेवा की शर्तें तार्किक होनी चाहिए।
13. पहल का अर्थ है कि संगठन के बारे में नई-नई बातें सोची जायें। जो तर्क-संगत हो उस पर निर्णय लेने में देर ना की जाये। पहल (इनीशिएटिव) में प्रशासन की सफलता का रहस्य छिपा होता है।
14. सद्-भावना का प्रशासन में अर्थ यह है कि एक संगठन के कर्मचारियों/अधिकारियों के मध्य बहुत मधुर सम्बन्ध हों। रिश्तों की समरसता और एकता संगठन की सफलता की कुंजी है।

15. प्रबन्धन या प्रशासन के सिद्धान्तों के प्रतिपादन के बाद हैनरी फयोल सेवीवर्ग या कर्मचारियों को अपने-अपने क्षेत्र में दक्षता प्रदान करने के लिये प्रशिक्षण के महत्व पर बल देता है। उसका मानना है कि कर्मचारियों को सतत् और निरन्तर प्रशिक्षण की प्रक्रिया से गुजरते रहना चाहिए। वह शिक्षा संस्थाओं में प्रबन्धन की शिक्षा का हामी है। प्रत्येक स्तर पर पाठ्य-क्रम में प्रबन्धन को शामिल करना चाहिये। इसका एक कारण है कि व्यक्ति को हर कदम पर घर से लेकर व्यवसाय या नौकरी पेशे तक प्रशासन की आवश्यकता होती है। इसलिये प्रशासन या प्रबन्धन का ज्ञान होना और उसमें माहिर होना आज की जरूरत है। अतः प्रशिक्षण को भी प्रशासन का एक सिद्धान्त ही मानना चाहिये।

3.7 वैज्ञानिक प्रबन्धन और फेयोल

अगर आप यूनानी दार्शनिक अरस्तु को पढ़ें तो आपको पता चलेगा कि उसने यर्थाथ और अनुभव को अपने अध्ययन का माध्यम बनाया था। इसीलिये कहा जाता है कि अरस्तू का दृष्टिकोण या अध्ययन पद्धति वैज्ञानिक थी। वर्तमान में फ्रेडरिक टेलर और हैनरी फयोल ये दो ऐसे चिन्तक हैं, जिन्होंने प्रबन्धन के अध्ययन के लिये बहुत सुधरी हुई वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया। फेयोल ने वैज्ञानिकता के आधार पर प्रबन्धन की एक निश्चित अवधारणा का प्रतिपादन किया और इसीलिये उसे 'प्रबन्धन प्रक्रिया विचारधारा' (Management process school) का जनक माना जाता है। फ्रेडरिक टेलर एक अमेरीकी चिन्तक था और उसका नाम पहले ही वैज्ञानिक प्रबन्धन से जुड़ा हुआ था। लेकिन फेयोल की विशेषता यह है कि उसने प्रबन्धन की अवधारणा को पारम्परिक सीमा से निकाल कर एक नया आयाम दिया। अनेक विचारक यह मानते हैं कि वैज्ञानिक प्रबन्धन की पहल वास्तव में फेयोल ने ही की है। उसका ग्रन्थ 'जनरल एण्ड इन्डस्टियल मैनेजमेन्ट' उत्कृष्ट श्रेणी का एक महत्वपूर्ण अध्ययन और शास्त्रीय प्रबन्धन का एक प्रशंसनीय नमूना माना जाता है। यह पुस्तक प्रबन्धन के सिद्धान्तों को प्रस्तुत करती है।

फेयोल द्वारा प्रस्तुत की गई प्रकार्यात्मकतावाद (Functionalism) की अवधारणा पर एडम स्मिथ के 'श्रम विभाजन के सिद्धान्त' का गहरा प्रभाव पड़ा है, क्योंकि फेयोल स्वंय एक कार्यपालक था, इसलिये उसकी प्रबन्धन के बारे में विचारधारा उसके अनुभव का परिणाम थी। उसका दृष्टिकोण पूरी तरह वैज्ञानिक और तकनीकी था।

यहाँ एक बात और याद रखना है कि हेनरी फेयोल और फ्रडरिक टेलर दोनों की तुलना करना आसान है, क्योंकि दोनों ही वैज्ञानिक प्रबन्धन के अगुआ माने जा सकते हैं। दोनों का सम्बन्ध उद्योग क्षेत्र से था, इसलिये उनका अध्ययन और सिद्धान्त उनके अनुभव और व्यवहारिकता का परिणाम है। फेयोल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसके अध्ययन में सार्वभौमिकता है। प्रबन्धन से सम्बन्धित उसके सिद्धान्त किसी भी प्रकार के कार्यों और संगठन पर लागू किये जा सकते हैं। वह किसी भी कार्य की संरचना की बात करता है। यहाँ वह तीन बातों को महत्वपूर्ण मानता है- प्राक्रयाऐं, भौतिक संसाधन और व्यक्ति। इन तीन तत्वों में ताल-मेल बैठना प्रबन्धन के क्षेत्र में आता है। यह एक यांत्रिकी दृष्टिकोण है, लेकिन किसी भी प्रकार के संगठन या कार्यों पर लागू किया जा सकता है।

3.8 फेयोल और प्रकार्यात्मकतावाद

फेयोल ने प्रकार्यात्मकतावाद की ओर इशारा किया गया था। यहाँ हम आपको यह समझायेंगे कि प्रकार्यात्मकतावाद है क्या? और इस बारे में फेयोल की राय क्या थी?

संगठन के निर्माण के दो सिद्धान्त हो सकते हैं। पहला- पारम्परिक या प्रकार्यात्मक सिद्धान्त, यह सिद्धान्त समझाता है कि सगंठन की एक संरचना है जो कुछ सिद्धान्तों पर टिकी है। निरन्तर उन्हीं सिद्धान्तों का प्रयोग करके संगठन का निर्माण होता रहता है। दूसरा दृष्टिकोण यह है कि जिस प्रकार के कार्य हों, उसी प्रकार से संगठन का निर्माण

होता है। इस दूसरे दृष्टिकोण का प्रतिपादन फेयोल ने किया है। उसने प्रकार्यात्मक वर्गीकरण पर बहुत जोर दिया है। फेयोल का मानना है कि प्रत्येक संगठन के उसके लक्ष्य के अनुसार कार्य होते हैं। उसका कहना है कि एक संरचनात्मक पदसोपानीय व्यवस्था में जो लगभग स्थायी होती है प्रक्रियाओं, भौतिक संसाधनों और लोगों को इस तरह से तैयार करना या उनका प्रबन्ध करना कि लक्ष्य की अधिकतम पूर्ति हो सके, प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण है। यह एक यांत्रिकी (Mechanistic) दृष्टिकोण है। इसके माध्यम से संगठनों और उनके व्यवहारों (क्रियात्मकता) को समझना आसान हो जाता है। एक तरह से फेयोल के प्रकार्यात्मक सिद्धान्त को व्यवहारवादी विज्ञानों की श्रेणी में लाया जा सकता है।

फेयोल का प्रकार्यात्मकतावाद इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसे फेयोलवाद भी कहा जाने लगा और इसी के साथ फेयोलवाद की आलोचना भी शुरू हो गयी। एक ओर जहाँ उर्विक ने फेयोल के प्रकार्यात्मकवाद की प्रशंसा की, वहीं पीटर ड्रकर ने फेयोल के दृष्टिकोण पर कड़ा हमला किया। ड्रकर का कहना है कि फेयोल ने संरचनात्मक पहलू की अवहेलना करके और एक आदेश या 'सार्वभौम्य' यांत्रिकी मॉडल का विचार रखकर संगठन की अवधारणा को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है।

प्रकार्यात्मकता, जिस पर फेयोल ने जोर दिया है अनुभववाद पर आधारित है। अर्थात् संगठन की गतिविधियों का अध्ययन प्रयोग पर आधारित अनुभव के निष्कर्षों के अनुसार किया जा सकता है। फेयोल ने एक औद्योगिक कम्पनी में होने वाले कार्यों के आधार पर प्रकार्यात्मकतावाद का प्रतिपादन किया और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि जिस कम्पनी में वह काम कर रहा था, वहाँ से प्राप्त तथ्य और उन तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष की बुनियाद पर उसने जिन सामान्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वे सभी प्रकार के संगठनों की आवश्यकताओं को पूरा करेंगे और चुनौतियों का सामना कर सकेंगे।

अनेक ऐसे प्रशासनिक विचारक हैं जो फेयोल के प्रकार्यात्मकता सिद्धान्त में झोल (गड़बड़ी) देखते हैं। जैसा कि हम पहले लिख चुके है कि पीटर ड्रकर उनमें से एक है। वह कहता है कि प्रकार्यात्मकता सिद्धान्त को सार्वभौम्य बताना फेयोल की गलती है। फेयोल खनन की जिस कम्पनी में काम कर रहा था, वह उसके समय में बहुत महत्वपूर्ण और बड़ी हो सकती है, लेकिन आज के सन्दर्भ में नये औद्योगिक संगठन अपने आकार में बहुत बड़े और जटिल हैं। इसलिए ड्रकर का कहना है कि अधिक विषम, अधिक जटिल, अधिक गतिशील और अधिक उद्यमी संगठन या गतिविधियां ऐसे कार्यों की मांग करते हैं, जो संगठन को चलाने में अत्यधिक सक्षम हों। प्रकार्यात्मक सिद्धान्त की यह विशेषता नहीं है। ड्रकर के अनुसार प्रकार्यात्मक सिद्धान्त की एक सीमा है और इसलिये वह छोटे आकार के संगठनों पर लागू हो सकता है। वह मात्र एक सिद्धान्त है, सर्वोच्च सिद्धान्त नहीं है।

बनार्ड चेस्टर और हर्बट साइमन ऐसे प्रशासनिक चिंतक हैं, जो फेयोल के सिद्धान्तों में अन्तर- द्वन्द देखते हैं। उनके अनुसार एक औपचारिक संगठनात्मक संरचना के बारे में कोरे सिद्धान्त अर्थहीन हैं। इन सिद्धान्तों के माध्यम से संगठनात्मक संरचना को समझा नहीं जा सकता। उनका तर्क यह है कि एक कार्यपालक के द्वारा जिस व्यवहार की योजना तैयार की जाती है, वह उस व्यवहार से अलग होती है जो बाद में यर्थात् में सामने आता है। फेयोल ने वास्तव में मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक बातों को जिनसे कर्मचारियों का व्यवहार प्रभावित होता है, अधिक महत्व नहीं दिया है।

3.9 फेयोल के सिद्धान्तों मे सार्वभौमिकता

लोक प्रशासन को विज्ञान का रूप देने के लिये फेयोल दो दिशाओं की ओर जाने का प्रयास करता है- सामान्य वक्तव्यों (Generalization) की ओर तथा अनुभववाद की ओर। इन दोनों विशेषताओं को मिलाकर वह प्रबन्धन

का एक सिद्धान्त तैयार करता है। निःसन्देह उसने प्रबन्धन का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है जो वाणिज्य, उद्योग, राजनीति, धर्म, युद्ध या समाज सेवा सब पर एक समान लागू होता है।

फेयोल ने लोक प्रशासन की समस्याओं पर खूब लिखा है। उसने टेलर की अनुभववादी पद्धति को स्वीकार करते हुये यह बताने का प्रयास किया है कि किसी उद्यम की सफलता सरल क्रमबद्धता (Method) के तार्किक ढंग से प्रस्तुत करने और लागू करने पर टिकी होती है। फेयोल ने प्रबन्धन की प्रक्रिया का एक क्रमबद्ध विश्लेषण किया और इस बात पर जोर दिया कि प्रशासन या प्रबन्धन को शिक्षा संस्थाओं या प्रतिष्ठानों में अध्ययन का विषय बनाना चाहिए।

फेयोल की एक और विशेषता यह है कि उसने संगठन की एक तार्किक पद्धति तैयार करने का प्रयास किया, ताकि उद्यम का मौलिक उद्देश्य पूरा हो सके। उसके अनुसार एक उद्यम अपने अस्तित्व के औचित्य को तभी सिद्ध कर सकता है, जब वह उपभोक्ताओं को उनकी अपेक्षाओं के अनुसार वस्तुऐं (माल) या सेवाऐं प्रदान कर सके। यदि यह लक्ष्य प्राप्त हो जाता है तो प्रबन्धकों और कर्मचारियों को उचित पुरस्कार देना चाहिए।

हम जैसा पहले आपको बता चुके है कि फेयोल प्रबन्धन को क्रियाओं (Functions) द्वारा निर्मित घटक मानता है, वह इन अवधारणों का अगुआ है। उसने प्रबन्धन की एक विस्तृत रूपरेखा तैयार की और एक ऐसा ढाँचा विकसित किया, जिससे लोक प्रशासन और प्रबन्धन के सिद्धान्तों को सार्वभौमिकता हासिल हो गयी। उसकी अवधारणा की एक और विशेषता यह है कि वह यह दावा करता है कि उच्च स्तर पर तकनीकी ज्ञान लुप्त हो जाता है, लेकिन प्रशासकीय दक्षता और ज्ञान का महत्व बना रहता है।

फेयोल के सिद्धान्तों की सार्थकता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि संगठन की संरचना करते समय एक प्रबन्धक योजनाओं में उसके सिद्धान्तों का सहारा लिये बिना नहीं रह सकता। विशेष रूप से निर्देशन की एकता का सिद्धान्त (प्रत्येक क्रिया के लिये एक प्रमुख और एक योजना) तथा आदेश की एकता का सिद्धान्त (एक व्यक्ति का एक साहब) हो। एक और सिद्धान्त जिसको आज लागू किया जाता है वह है- उत्तरादायित्व और सत्ता में समानता हो। इसका अर्थ है कि संगठन में लगे प्रत्येक व्यक्ति को उत्तरदायित्व के साथ सत्ता भी मिलनी चाहिए। अनेक विद्वान फेयोल के प्रकार्यात्मक संगठन को सर्वोत्तम मानते हैं। इसी तरह उसका पदसोपान का सिद्धान्त, जिसमें सत्ता के विभिन्न स्तर(चैनल) हैं, एक सर्वमान्य सिद्धान्त है।

कुछ आलोचकों का यह मानना है कि फेयोल अपने लेखों में मानवीय पहलू से बेखबर था। लेकिन ऐसा नहीं है। अल्बर्स के अनुसार फेयोल मानव पहलू के महत्व से अनभिज्ञ नहीं था। स्वयं फेयोल ने लिखा कि प्रत्येक ऐसा प्रशासनिक सिद्धान्त जो संगठन के मानवीय पहलू को मजबूती देता है, सिद्धान्त की श्रेणी में आता है।

संक्षेप में सिद्धान्तों की सार्वभौमिकता के सम्बन्ध में आप जिन निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं वे इस प्रकार हैं -

1. सामान्यीकरण अर्थात प्रशासन या प्रबन्धन के बारे में सामान्य वक्तव्य देना।
2. अनुभववादी पद्धति का प्रयोग करना अर्थात अनुभव या व्यवहारिक ज्ञान के आधार पर सिद्धान्त प्रतिपादित करना। अंग्रेजी में इसे 'Empirical study' कहा जाता है।
3. सरल क्रमबद्धता (Method) का प्रयोग संगठन की सफलता की गारन्टी है। अतः क्रमबद्ध विश्लेषण जरूरी है।
4. संगठन की एक तार्किक पद्धति हो, ताकि लक्ष्य प्राप्त किया जा सके।
5. प्रबन्धन का सम्बन्ध क्रियाओं (Functions) से है, जो उसका निर्माण करती है।
6. उच्च स्तर पर तकनीकी ज्ञान लुप्त हो जाता है, लेकिन प्रशासकीय दक्षता और ज्ञान जीवित रहता है।
7. निर्देशन की एकता (Unity of direction) और समादेश की एकता (Unity of command) ऐसे दो सिद्धान्त हैं, जिनकी सार्वभौमिकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

8. पद-सोपान का सिद्धान्त अद्वितीय है। इसकी सार्थकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है।
9. संगठन में मानवीय पहलू का बहुत महत्व है।

अभ्यास प्रश्न-

1. हेनरी फेयोल की सबसे प्रसिद्ध पुस्तक का नाम क्या है?
   क. मेनेजमैन्ट थ्रू आउट हिस्ट्री ख. प्रिन्सपिल्स ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट
   ग. जनरल एण्ड इस्डसट्रियल मैनेजमैन्ट घ. दि मेकिंग ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट
2. प्रशासन या प्रबन्धन के सम्बन्ध में फेयोल का दृष्टिकोण क्या था?
   क. मनोवैज्ञानिक ख. काल्पनिक ग. तकनीकी घ. वैज्ञानिक
3. फेयोलवाद का कटु आलोचक कौन है?
   क. फ्रेडरिक टेलर ख. उर्विक ग. पीटर ड्रकर घ. जॉन ब्रीज
4. फेयोल ने प्रबन्ध का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। सत्य/असत्य
5. फेयोल क्रमबद्ध विश्लेषण में विश्वास नहीं करता था। सत्य/असत्य
6. प्रबन्धन का सम्बन्ध क्रियाओं से है। सत्य/असत्य
7. 'निर्देशन की एकता' के सिद्धान्त का प्रतिपादन टेलर ने किया। सत्य/असत्य

3.10 सारांश

आपने हेनरी फेयोल के प्रशासनिक विचारों का अध्ययन कर लिया होगा। इस अध्ययन के बाद आप जिस नतीजे पर पहुँचेंगे, वे निश्चित रूप से इस प्रकार हैं-

1. हेनरी फेयोल एक खनन कम्पनी का एक सफल कार्यपालक था और इस हैसियत से उसने प्रबन्धन की अवधारणा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया।
2. फेयोल को 'प्रबन्धन प्रक्रिया विचारधारा' का जनक माना जाता है।
3. उसने प्रबन्धन को एक विज्ञान माना जो अध्ययन का विषय बन सकता है और जिसे निजी और लोक प्रशासन पर समान रूप से लागू किया जा सकता है।
4. उसने प्रबन्धन की प्रक्रियाओं की सार्वभौमिकता को दर्शाया है।
5. यद्यपि अक्सर उसने प्रबन्धन और प्रशासन में अन्तर नहीं किया है, लेकिन कहीं-कहीं वह इस अन्तर में स्वंय को उलझा लेता है।
6. संगठन के वह पांच तत्व बताता है- योजना, संगठन, समादेश, समन्वय और नियंत्रण।
7. उसने प्रशासन के 14 सिद्धान्त बताऐ हैं जो किसी उद्यम, संस्थान या संगठन पर लागू होते हैं।
8. फेयोल ने औपचारिक संगठन पर जोर दिया है, लेकिन पदसोपानीय व्यवस्था में वह औपचारिकताओं की सीमाओं को स्वीकार करके 'गैंगप्लेक' की योजना रखता है।
9. फेयोल के प्रकार्यात्मकतवाद की आलोचना की गई है। उस पर आरोप है कि उसने यांत्रिकी उपागम को अपनाकर संकीर्णता का परिचय दिया है। उसने मानव आचरण की अवहेलना की है। ड्रकर उसका सबसे बड़ा आलोचक है।
10. लेकिन जिस तरह उसने प्रशासनिक प्रक्रियाओं का क्रमबद्ध विश्लेषण किया है, उससे अनेक चिन्तक प्रभावित हुये हैं। प्रशासन सम्बन्धी उसके सिद्धान्तों को आधुनिक संगठनों के क्रियान्वन के लिये एक वरदान माना गया है।

3.11 शब्दावली

अनुभववाद- अनुभववाद को प्रयोगवाद भी कहा जाता है अंग्रेजी में इसे 'Empiricion' कहते हैं। अनुभव या प्रयोग से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह अनुभववाद है। अरस्तू अनुभववाद पर बहुत बल देता था। आधुनिक राजनीतिशास्त्री अनुभववाद पर जोर देते हैं। यह एक वैज्ञानिक पद्धति है और कल्पनावाद के विपरीत है।

सामान्यनीकरण- अंग्रेजी में इसे 'Generalisation' कहा जाता है। इसका अर्थ है, सीमित सूचना के आधार पर राय बनाना या व्यक्तव्य देना। सिद्धान्तकार ज्ञान के आधार पर एक ऐसा सिद्धान्त प्रतिपादित करता है जो सामान्य रूप से सब पर लागू होता है। प्रबन्धन के क्षेत्र में यह निजी प्रशासन या लोक प्रशासन के किसी संगठन पर लागू होता है।

पदसोपनीय व्यवस्था- अंग्रेजी में इसे 'Hierarchy' कहा जाता है। यह एक त्रिकोणीय व्यवस्था है।

3.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग, **2.** घ, **3.** ग, **4.** सत्य, **5.** असत्य, **6.** सत्य, **7 .** असत्य

3.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सी0 वी0 राघावल, बी0 पी0 सी0 बोसः हेनरी फेयोल, सम्पादन ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स द्वारा डॉ0 रविन्द्र प्रसाद, स्टरलिग।
2. पीटर ऑफ ड्रकरः मैनेजमेन्ट फॉर दि फ्यूचर, ट्रमैन ट्रैली बुक्स, न्यूयार्क।
3. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण, आगरा।
4. जार्ज जूसीएस, दि हिस्ट्री ऑफ मैनेजमेन्ट, प्रिनटिक हाल, न्यू दिल्ली।

3.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 अशोक कुमार, प्रकाशन- लक्ष्मी नारायण अग्रवाल।
2. प्रशासनिक विचारक, आर0 पी0 जोशी और अंजु पारीक, रावत पब्लिकेशन, जयपुर।
3. प्रमुख प्रशासनिक विचारक, नरेन्द्र कुमार थोरी, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स।

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्या प्रबन्धन और प्रशासन में कोई अन्तर है? फेयोल के इस सम्बन्ध में क्या विचार थे?
2. वैज्ञानिक प्रबन्धन पर फेयोल के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
3. प्रबन्धन के तत्वों पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 4 फ्रेडरिक विन्सलो टेलर

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 फ्रेडरिक टेलर- एक परिचय
4.3 सोलजरिंग
4.4 वैज्ञानिक प्रबन्धन का विकास
4.5 फ्रेडरिक टेलर का लक्ष्य
4.6 वैज्ञानिक प्रबन्धन के सिद्धान्त
4.7 प्रकार्यात्मक फोरमैनशिप
4.8 टेलरवाद का विरोध
4.9 मूल्यांकन
4.10 सारांश
4.11शब्दावली
4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.15 निबन्धात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

प्रबन्धन अथवा प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में हैनरी फेयोल का समकालीन फ्रेडरिक विन्सलो टेलर (1856-1915) है। उसने तत्कालीन अमरीकी औद्योगिक प्रबन्धन पर गहन शोधों के माध्यम में जो निष्कर्ष सामने रखे, उनके कारण वह वैज्ञानिक प्रबन्धन का अगुआ बन गया। उसने कहा कि 'सर्वोत्तम प्रबन्ध' ही वास्तविक विज्ञान है। उसने प्रबन्धन के नये उपागम और नई तकनीकें खोजी और दावा किया कि उसके सिद्धान्त सभी प्रकार की गतिविधियों पर लागू होते हैं। यह सब कुछ उसने अपने विश्व विख्यात ग्रन्थ ''दि प्रन्सीपिल्स ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट'' में लिखा।

उसने समझाने का प्रयास किया है कि श्रमिक जान बूझकर काम करने से कतराते हैं, ताकि कम उत्पादन हो और वे सेवा में बने रहें। इसे टेलर ने 'सोलजरिंग' कहा। इस मानसिकता से लड़ने के लिए उसने प्रबन्धन के एक विज्ञान की वकालत की। कार्यक्षमता और निपुणता, उत्पादन बढाने के लिए जरूरी है। यह तभी सम्भव है, जब यह स्वीकार कर लिया जाये कि मालिक और श्रमिक दोनों की अधिकतम खुशहाली अन्तिम ध्येय होना चाहिए। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दोनों के अपने-अपने उत्तरदायित्व हैं। इस ध्येय को पाने के लिए टेलर ने वैज्ञानिक अध्ययन के सिद्धान्त प्रतिपादित किये और 'प्रकार्यात्मक फोरमैनशिप' का विचार रखा। उसने दावा किया। वैज्ञानिक प्रबन्धन ने मालिकों और श्रमिकों की एक-दूसरे के प्रति और काम के प्रति सोच में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन किया है। वह इस परिवर्तन को मानसिक क्रान्ति कहता है।

टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्धन की अवधारणा की जहाँ जबरदस्त प्रशंसा हुई है, वहीं उसकी आलोचना भी की गई है। उसके विचारों के विरोध में ट्रेड यूनियनें और प्रबन्धन बहुत आगे हैं। आरोप यह है कि टेलरवाद ने यांत्रिकी दृष्टिकोण को महत्व देकर मानवीय पहलू की अवहेलना की है।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- समझ सकेंगे कि किस तरह फ्रेडरिक टेलर ने प्रबन्धन के पारम्परिक विषय को विज्ञान बनाया और वह स्वंय वैज्ञानिक प्रबन्धन का अगुआ बन गया।
- श्रमिकों की उदासीन मानसिकता को उसने सोलजरिंग या कामचोरी क्यों कहा, इसे समझ पाओगे।
- वैज्ञानिक प्रबन्धन का विकास कैसे हुआ और टेलर ने अपने ग्रन्थ '' दि प्रन्सीपिल्स ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट'' में प्रबन्धन को विज्ञान बनाने में क्या तर्क दिये, इसे जान पाओगे।
- प्रबन्धन को वैज्ञानिकता प्रदान करने में टेलर का ध्येय क्या था, इसे समझ पाओगे।
- उसने वैज्ञानिक प्रबन्धन के कौन से सिद्धान्त प्रतिपादित किये, इसे जान पाओगे।
- टेलर ने वैज्ञानिक प्रबन्धन को मानसिक क्रान्ति क्यों कहा, इस बारे में जान पाओगे।
- टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन के सिद्धान्तों की आलोचना किन लोगों ने की और क्यों की तथा वर्तमान समय में टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन की सार्थकता और सामयिकता क्यों बनी हुई है और क्यों उसकी अवधारणा को शिक्षा संस्थाओं ने अपने पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में चुना है? इस सम्बन्ध में विस्तार से जान पाओगे।

4.2 फ्रेडरिक टेलर- एक परिचय

20वीं सदी के आते-आते संयुक्त राज्य अमेरिका के औद्योगिक जगत में उथल-पुथल आरम्भ हो गयी थी। उद्योग अव्यवस्थित हो गये थे। उत्पादन गिरने लगा था। पूँजीवादी व्यवस्था डगमगाने लगी थी। समाजवादी हमले तेज होने लगे थे। ऐसे में एक ऐसे मसीहा की आवश्यकता थी जो इस अव्यवस्था का कारण बता सके और उसका समाधान भी खोज सके। फ्रेडरिक टेलर ने ऐसे मसीहा की भूमिका को बहुत खूबसूरती से निभाया।

टेलर ने समझाया कि औद्योगिक अव्यवस्था का कारण था, कुप्रबन्धन या प्रबन्धन से अनभिज्ञ होना या फिर प्रशासन का सिद्धान्त विहीन होना। वह पहला व्यक्ति था जिसने अमरीका के उद्योग प्रबन्धन के बारे में गम्भीरता से शोधों पर जोर दिया। इस तरह वह पहला प्रभावशाली व्यक्ति बन गया जिसने प्रबन्धन विज्ञान और चिन्तन पर गहरी छाप छोड़ी।

पेशे से टेलर एक इन्जीनियर था। उसका उद्देश्य था, उद्योगों की निपुणता को बढ़ाना। उसको वैज्ञानिक प्रबन्धन का जनक माना जाता है। निपुणता आन्दोलन उसकी देन है। उसकी अवधारणा बहुत तार्किक और सामयिक है। उसको आधुनिक प्रबन्धन उपागम और तकनीकों का अगुआ भी माना जाता है। उसका कहना था कि सर्वोत्तम प्रबन्धन वास्तविक विज्ञान है। फेयोल के समान टेलर का भी यह मानना था कि प्रशासन सम्बन्धी उसके सिद्धान्त समस्त सामाजिक गतिविधियों पर एक समान लागू को सकते हैं। यह सच है कि आज तक टेलर के विचारों की सामयिकता बनी हुई है।

अब आप फ्रेडरिक टेलर के जीवन-वृत्त को समझिए। वह जर्मनी में 20 मार्च 1856 को पैदा हुआ। हावर्ड लॉ स्कूल से उसने इण्टर पास किया, लेकिन आर्थिक कमजोरी जिसके कारण वह मिट्टी के तेल की रोशनी में पढ़ा करता था, जिस कारण उसकी नजरें इतनी कमजोर हो गयी थी कि उसे पढाई बन्द करनी पड़ी। 18 वर्ष की आयु में वह एक कम्पनी में अवैतनिक 'ऐपरेनटिस' बन गया। चार साल तक कम्पनी में रहा। सन् 1878 में एक स्टील कम्पनी में वह मजदूर बन गया। कुछ साल बाद वह गैंग-बास, फिर फोरमैन फिर शोध निदेशक। अन्तः मजदूर से चला सफर चीफ इन्जीनियर तक पहुँच गया, लेकिन उसका सफर अभी समाप्त नहीं हुआ था। वह दिन में काम करता और रात को पढ़ता। नतीजा यह निकला कि उसने पत्राचार के माध्यम से मैकेनिकल इन्जीनियरिंग में मास्टर डिग्री हासिल कर ली। सन् 1906 में 'ऑनरेरी डाक्ट्रेट' की डिग्री प्रदान की गई। फिर वह जनरल मैनेजर की सीढ़ी पार करके प्रोफेसर बन गया। उसने यह सारा काम फिलाडेलफिया में किया।

यह सब कुछ लिखने का उद्देश्य यह है कि अगर इच्छा-शक्ति हो तो एक मजदूर भी बौद्धिक जगत का सरताज बन सकता है। तकनीक जगत में उसके कौन से अविष्कार थे, यह किसी सन्दर्भ पुस्तक से पाठकों को पढना चाहिए। यहाँ हमारा विषय प्रशासन और प्रबन्धन है और हम यह कह सकते हैं कि वह प्रबन्धन के क्षेत्र का एक महान शोधकर्ता था। वह निपुणता (efficiency) का मतवाला था। उसमें काम करने की क्षमता असीमित थी। वह कर्मठ था, ईमानदार और श्रमशील था। टेलर के महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं- 'शाप मैनेजमैन्ट' और 'दि प्रिंसिपल्स ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट' (वर्ष 1911)।

4.3 सोलजरिंग

फ्रेडरिक टेलर ने कामचोरों के लिये 'सोलजरिंग' या 'स्काईविंग' जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। जिनका हिन्दी में सटीक पयार्यवाची या समानार्थक शब्द तलाशना कठिन है। हमने बात समझाने के लिये 'कामचोर' या 'कामचोरी' शब्द को अधिक उपर्युक्त समझा है। टेलर का मानना था कि एक कर्मचारी जानबूझ कर अपनी क्षमता से कम काम करना चाहता है। ऐसा हर क्षेत्र में होता है। उसका विश्वास था कि उसके समय का औद्योगिक प्रबन्धन अनाड़ीपन के दौर से गुजर रहा था, प्रबन्धक नौसिखिये थे। उसके अनुसार सोलजरिंग के तीन कारण थे-

पहला- श्रमिक कम से कम कार्य इसलिये करते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि यदि वह अधिक उत्पादन करेंगे तो उनमें से कुछ आवश्यकता से अधिक हो जायेंगे और उन्हें निकाल दिया जायेगा। दूसरा- प्रोत्साहन विहिन मजदूरी व्यवस्था कम उत्पादकता का कारण है। कर्मचारी महसूस करते हैं कि अधिक उत्पादन होने पर भी उन्हें अधिक मजदूरी नहीं मिलेगी। तब अधिक काम क्यों किया जाये, तथा तीसरा- औपचारिक (लकीर का फकीर) और गैर-वैज्ञानिक पद्धतियों पर भरोसा करके श्रमिक अपना समय बर्बाद करते हैं।

टेलर क्रिया के सर्वोत्तम प्रतिमान की बात करता है। ऐसा प्रतिमान तय करना होगा जो निपुणता को सुधार सके। यह निर्धारित करना होगा कि मजदूर को एक घण्टे में कितना काम करना चाहिए। (काम की मात्रा तय की जाये) यदि श्रमिक मानक के अनुसार काम करता है तो यह कार्य कुशलता का सर्वोत्तम स्तर होगा। इस मानक के अनुसार 500 कर्मचारी जितना काम करते हैं, वो 140 कर सकते हैं। ऐसा प्रयोग करके उसने लोगों को हैरत में डाल दिया। पैसा भी बचा और उत्पादन भी नहीं घटा। 'सोलजरिंग' से मुकाबला करने का यह सर्वोत्तम तरीका था।

4.4 वैज्ञानिक प्रबन्धन का विकास

हुआ यह कि सन् 1910 में एक कम्पनी के मुकदमे में लुइस ब्रेन्डीज (वकील) ने बहस के दौरान अदालत में कहा कि वैज्ञानिक प्रबन्धन पद्धति का प्रयोग करके रेलवे एक दिन में एक मिलियन डालर बचा सकती थी। टेलर यह वक्तव्य सुनकर हैरत में पड़ गया। वैज्ञानिक पद्धति और प्रबन्धन! कैसे? यह तो बहुत ही शैक्षिक बात थी। यह

विषय तो विद्वानों का था। लेकिन बाद में उसे विश्वास हो गया कि ब्रेन्डीज का तर्क सही था। इसलिये उसने अपनी पुस्तक का नाम 'दि प्रिसिंपल्स ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट' रखा। इस तरह आपको याद रखना है कि शब्द- 'वैज्ञानिक प्रबन्धन' का सबसे पहले प्रयोग लुइस ब्रेन्डीज ने किया, जो बाद में सर्वोच्च न्यायालय का जज बना। लेकिन ब्रेन्डीज को विद्वान भूल गये और वैज्ञानिक प्रबन्धन का नाम फ्रेडरिक टेलर से जुड़ गया।

टेलर के विचारों पर सबसे अधिक प्रभाव 'हेनरी टोने' का पड़ा था। उसने अमेरिका की औद्योगिक उथल-पुथल का गहनता से जायजा लिया था और अपने एक शोध-पत्र में सुझाव दिया कि किसी उद्यम में प्रबन्धन की एक सयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए। टेलर इस बात से प्रभावित हुआ और उसने उद्यम के तमाम तथ्यों और पहलुओं को जानने का प्रयास किया और उनके आधार पर वैज्ञानिक प्रबन्धन का विकास किया।

टेलर ने दो शोध-पत्र प्रस्तुत किये 'ए पीस रेट सिस्टम' और 'शाप मैनेजमेंट'। इन शोध पत्रों में उसने प्रबन्धन के दर्शन को दर्शाया है। औद्योगिक कौशलता उसका लक्ष्य था। यह कैसे प्राप्त हो उसने बताया कि-

- प्रबन्धकीय समस्याओं के समाधान के लिये वैज्ञानिक पद्धतियों (शोध में) और अनुभव का प्रयोग किया जाये।
- कार्य स्थिति स्तरीय हो और कर्मचारियों की भर्ती वैज्ञानिक मानकों के अनुसार हो।
- कर्मचारियों को औपचारिक प्रशिक्षण दिया जाये ताकि वे निर्धारित कार्यों को दक्षता से पूरा कर सकें।
- आश्वस्त किया जाये कि कर्मचारियों और प्रबन्धन में सहयोग बना रहे।
- प्रबन्धकों को पारम्परिक निरंकुश आचरण छोड़कर उदारवादी रवय्या(आचरण) अपनाना चाहिए। उनमें योजना बनाने, संगठित करने और नियंत्रित करने की क्षमता होनी चाहिए।

4.5 फ्रेडरिक टेलर का लक्ष्य

पहले लिखा जा चुका है कि टेलर का वास्तविक लक्ष्य था, क्षमता को प्राप्त करना। अच्छा प्रबन्धन लक्ष्य की प्राप्ति का एक सटीक माध्यम था। उसने तत्कालीन प्रबन्धन व्यवस्था का गहन अध्ययन किया और निम्न कमियां देखी-

1. कार्य प्रबन्धन, उत्तरदायित्व से और प्रबन्धन से अनभिज्ञ था;
2. कार्य स्तरीय नहीं था;
3. उत्पादन सीमित था;
4. श्रमिकों के लिये कोई प्रोत्साहन नहीं था;
5. निर्णय अवैज्ञानिक थे;
6. कार्यशैली के उचित अध्ययन की कमी थी तथा कर्मचारियों की भर्ती का आधार योग्यता के अनुरूप और दिलचस्प नहीं था।

टेलर का दूसरा लक्ष्य यह भी था कि वह कार्य का एक विज्ञान खोजे। इसके लिये उसने औद्योगिक क्षेत्र में 20 वर्षों में 30 हजार से लेकर 50 हजार तक प्रयोग किये जो उसने अपने शोध पत्र 'दि आर्ट ऑफ कटिंग मेटल्स' में प्रस्तुत किये। उद्देश्य था इस सवाल का उत्तर देना कि कौन से उपकरणों का प्रयोग किया जाये ताकि कम व्यय पर अधिकतम उत्पादन हो सके।

प्रबन्धन की वैज्ञानिकता प्रदान करने में उसका उद्देश्य इस बात की भी खोज करना था कि कैसे एक निर्धारित काम को पूरा करने में एक व्यक्ति या मशीन निश्चित समय सीमा का लक्ष्य पूरा करेगी। इस बात को खोजने के लिये सन् 1903 में एक शोध पत्र 'शाप मैनेजमैन्ट' प्रस्तुत किया। यहाँ उसने अनुभववादी पद्धति का प्रयोग किया। उसने लिखा उचित काम के लिये उचित लोग रखे जायें। इनका चयन वैज्ञानिक पद्धति द्वारा होना चाहिए। कर्मचारी को

उसकी योग्यता के अनुसार तैनात किया जाये, उस पर प्रभावशाली नियंत्रण हो। उसका और उसके काम का निरीक्षण होता रहे। तैनाती की शर्तें तय की जायें।

टेलर ने प्रबन्धन का उद्देश्य भी समझाने का प्रयास किया। सम्पन्नता अन्तिम ध्येय है। अधिकतम सम्पन्नता नियोजक की और अधिकतम सम्पन्नता कर्मचारी की, प्रबन्धन का यह उद्देश्य होना चाहिए। वैज्ञानिक प्रबन्धन की अवधारणा यह है कि नियोजक और कर्मचारी हितों में कोई टकराव ना हो। उपभोक्ता के हितों का भी ध्यान रखा जाये। प्रबन्धक स्वामी नहीं है और कर्मचारी दास नहीं है कि एक मात्र आदेश दे और दूसरा उसका पालन करे। नियोजन, संगठन, नियंत्रण, निरीक्षण और प्रोत्साहन का उत्तरदायित्व नियोजक का होगा और क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व कर्मचारी का होगा। यही वैज्ञानिक प्रबन्धन है।

4.6 वैज्ञानिक प्रबन्धन के सिद्धान्त

अब आपकी समझ में यह तो आ गया होगा कि फ्रेडरिक टेलर वैज्ञानिक प्रबन्धन का अगुआ क्यों था? अब आप यह समझिये कि वैज्ञानिक प्रबन्धन के टेलर की नजर में सिद्धान्त हैं क्या?

टेलर सामाजिक खुशहाली का हामी था। इसके लिये पहले जरूरी था, कर्मचारियों और प्रबन्धन के मध्य सहयोग और सहमति का होना। वैज्ञानिक पद्धति के क्रियान्वयन के लिये यह जरूरी था। वैज्ञानिकता का दूसरा नाम सिद्धान्त है। टेलर ने ऐसे चार सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं-

1. एक वास्तविक विज्ञान का विकास,
2. कर्मचारियों का वैज्ञानिक चयन,
3. कर्मचारियों को वैज्ञानिक शिक्षा देना, तथा
4. कर्मचारियों और प्रबन्धन के मध्य मित्रतापूर्ण सम्बन्ध।

जहाँ तक वास्तविक विज्ञान का प्रश्न है, टेलर का मानना था कि यदि संगठित ज्ञान का सहारा लिया जाये तो कम से कम समय में अधिकतम काम हो सकता है। यह तभी हो सकता है जब वैज्ञानिक खोज के द्वारा परिणाम खोजे जायें। इस तरीके से संगठन उत्पादन अधिक करता है, कर्मचारियों को वेतन अधिक मिलता है और कम्पनी को लाभ अधिक मिलता है।

अब सवाल उठता है कर्मचारियों के वैज्ञानिक चयन का। कर्मचारियों में शारीरिक और बौद्धिक क्षमता होनी चाहिए। इस क्षमता का मापदण्ड वैज्ञानिक होना चाहिए। इस तरह चयनित व्यक्ति वैज्ञानिक विधि द्वारा विकसित कार्य को करने में सक्षम होंगे। टेलर के अनुसार कर्मचारियों का व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षण होना चाहिए। प्रबन्धन की यह जिम्मेदारी है कि वह कर्मचारियों में क्षमता विकास के लिये अवसर प्रदान करें।

कर्मचारियों या श्रमिकों का विकास तब सम्भव है, जब वैज्ञानिक क्रिया को वैज्ञानिक आधार पर चयनित लोगों के साथ जोड़ दिया जाये। प्रबन्धन सदा उनको प्रोत्साहन देता रहे। टेलर ने कहा कि कर्मचारी सदा प्रबन्धन के साथ सहयोग करना चाहते हैं, लेकिन प्रबन्धन की ओर से उन्हें विरोध तो मिलता है, प्रोत्साहन नहीं मिलता। सहयोग के लिये अनिवार्य है, मानसिक शिक्षा।

पारम्परिक प्रबन्धन सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धन बॉस(स्वामी) है, जिसके पास अधिकतम सत्ता और निम्नतम उत्तरदायित्व है। जबकि कर्मचारी नौकर है और सारे काम के लिये वे जिम्मेदार हैं। लेकिन टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्धन यह सलाह देता है कि प्रबन्धन और कर्मचारियों की जिम्मेदारियां समान हैं। उनके मध्य श्रम-विभाजन है, जो यह सिखाता है कि दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। दोनों में तालमेल है। इस विश्वास से टकराव समाप्त होगा और हड़तालें नहीं होंगी।

वैज्ञानिक प्रबन्धन का कोई भी सिद्धान्त अपने में वैज्ञानिक नहीं है। चारों सिद्धान्त सयुंक्त रूप से वैज्ञानिक सिद्धान्त की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं। सार यह है कि-

- विज्ञानिकता हो, ना कि लकीर का फकीर सिद्धान्त;
- समरसता हो ना कि वैमन्स्य;
- सहयोग हो ना कि व्यक्तिवाद;
- अधिकतम उत्पादन हो; तथा
- प्रत्येक का उसकी क्षमता के अनुसार विकास हो।

4.7 प्रकार्यात्मक फोरमैनशिप

यहाँ आपको यह समझाना है कि संगठन की अनेक व्यवस्थाऐं प्रचलित हैं। उनमें से एक सैनिक या रेखीय व्यवस्था है। इसमें प्रत्येक सैनिक या श्रमिक एक साहब (बॉस) का अधीनस्थ होता है। टेलर ने संगठन की एक नई व्यवस्था की वकालत की, जिसमें एक कर्मचारी आठ विशिष्ठ निरीक्षकों से आदेश प्राप्त करते हैं। इस व्यवस्था को टेलर ने प्रकार्यात्मक संगठनात्मकता (फंकशनल फोरमैनशीप) कहा। इस तरह उसने कार्य को कर्मचारियों के मध्य भी बांटा और निरीक्षकों के मध्य भी। आठ प्रकार्यात्मक प्रमुखों में से चार को प्रयोजन का उत्तरदायित्व सौंपा अन्य चार को क्रियान्वयन का। यहाँ यह याद रखिये कि जिसे हमने साहब, बॉस, या प्रमुख कहा टेलर उसे फोरमैन (कर्मचारियों के समूह का प्रमुख) कहता है। इस तरह टेलर ने कार्यों को प्रयोजन(योजना) और क्रियान्वयन में विभाजित कर दिया। उसके अनुसार एक फोरमैन में निम्न विशेषताऐं होनी चाहिये- शिक्षा, तकनीकी ज्ञान, शारीरिक क्षमता, कौशल, मेहनती प्रकृति, निष्ठा, साहस और निर्णय लेने की क्षमता।

इस तरह टेलर प्रबन्धन को वैज्ञानिकता प्रदान करने में हर उस यांत्रिकी को अपनाने पर बल देता है, जो सम्भव है। यहाँ यह याद रखना कि वह जो कुछ लिखना चाहता है उसका सम्बन्ध किसी कम्पनी या उद्यम से है ना कि किसी सेवा सम्बन्धी कार्यालय से। हाँ, इतना अवश्य है कि उसके सिद्धान्त लोक प्रशासन पर भी लागू हो सकते हैं।

4.8 टेलरवाद का विरोध

टेलर के प्रबन्धन और प्रशासन से सम्बन्धित सिद्धान्तों ने उसके विचारों को टेलरवाद बना दिया। टेलरवाद एक ऐसा आन्दोलन बन गया जिसने उद्योगों, मजदूरों और प्रबन्धकों में आशा की एक किरण जगा दी। लेकिन ज्यों ही टेलरवाद ने अपने पांव पसारे और पूरे उद्योग-तंत्र को प्रभावित करना आरम्भ किया, निहित हितों में एक खलवली मच गई। इसका खुलकर विरोध भी आरम्भ हो गया। जिन लोगों या संस्थाओं ने इसका विरोध किया उनमें निम्न सगंठन या विचारक थे:

1. **ट्रेड यूनियनें-** ट्रेड यूनियनों ने अनेक आधारों पर टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन का विरोध करना आरम्भ किया। किस्त लाभ व्यवस्था (प्रीमियम बोनस सिस्टम) का विरोध इसलिये किया कि प्रबन्धन का उद्देश्य उत्पादन बढ़ाना है, ना कि मजदूर की मजदूरी। ट्रेड यूनियनवाद के लिये टेलरवाद घातक है। वह संयुक्त सौदेबाजी के सिद्धान्त के भी विरूद्ध है।
2. **अधिक यांत्रिकी-** एक आरोप यह लगा कि टेलरवाद यांत्रिकी (मेकेनिकल) अधिक है और पूर्ण कार्य स्थिति की उसे कोई परवाह नहीं है।
3. **नीरसता-** वैज्ञानिक प्रबन्धन के सिद्धान्त पूरे औद्योगिक पर्यावरण को नीरस बना देते हैं और कौशलता के लिये दरवाजे बन्द कर देते हैं।

4. **सहृदयताविहीन दृष्टिकोण-** विरोध इस बात पर भी हुआ कि टेलर के दृष्टिकोण में मानव का कोई मूल्य नहीं था, जबकि सब कुछ मानवों के लिये ही होता है। आरोप यह लगा कि टेलर की नजर में मशीन का महत्व अधिक था, मनुष्य का कम।
5. **प्रबन्धन विरोधी-** प्रबन्धकों का मानना था कि टेलर का सिद्धान्त उनकी प्रोन्नति में आड़े आता है। टेलर चाहता था कि योग्य और प्रशिक्षित प्रबन्धकों की प्रोन्नति हो। लेकिन प्रबन्धक चाहते थे कि मात्र वरीयता प्रोन्नति का आधार बने।
6. **प्रशासनिक चिन्तकों द्वारा विरोध-** ऐसे चिन्तकों में मैरी पार्कर फालेट, एल्टन मयो, ओलिवर शैल्डन, पीटर ड्रकर आदि हैं। इनका आरोप भी यही है कि टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन का सिद्धान्त व्यक्ति विहीन है। उसने मानव पहलू को महत्व नहीं दिया है। मयो का कहना है कि उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिये संरचनात्मक प्रक्रियाओं का उतना महत्व नहीं है, जितना कि कर्मचारियों के भावनात्मक रूख का। यदि उनका यह रूख (एटीट्यूड) अपने काम और अपने साथियों के प्रति अच्छा है तो उत्पादन क्षमता बढ़ेगी।
7. **व्यवहारवादियों का तर्क-** व्यवहारवादियों या व्यवहारपरकतावादियों का तर्क यह है कि टेलर के सिद्धान्त अथवा पद्धतियाँ श्रमिकों में पहल करने की शक्ति को कम कर देती है। उनकी व्यक्तिक आजादी छीन लेती है। वे अधिक बुद्धि का प्रयोग करने में अक्षम हो जाते हैं। वे उत्तररदायित्व से बचते हैं।

संक्षेप में टेलरवाद पर जो आरोप लगे, उनका सार एक पंक्ति में यह है कि पूरी औद्योगिक व्यवस्था एक मशीन है और मनुष्य उसका एक पुर्जा।

4.9 मूल्यांकन

यह सही है कि फ्रेडरिक टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्धन का सिद्धान्त सीमाओं से घिरा हुआ है। वह पूरी तरह मानव मनोवृत्ति को समझने में अपर्याप्त है। कार्य की समाजशास्त्रीयता (Sociology) और बनावट को समझने में उसकी सीमाएँ हैं। लेकिन फिर भी उसका महत्व कम नहीं है। सच तो यह है कि उसने मानवों का, जब वे काम पर होते हैं अध्ययन किया है। इस अध्ययन का वह अगुआ है।

उसने औद्योगिक प्रबन्धन के अध्ययन के लिये परिमाणात्मक तकनीकों का प्रयोग किया। उसके वैज्ञानिक प्रबन्धन में जो बातें शामिल हैं उनमें क्रियात्मक शोध, उपागम अध्ययन और प्रबन्धन महत्वपूर्ण है। उसकी प्रकार्यात्मक अवधारणा ने उद्योगों के स्वरूप और स्वभाव को परिवर्तित कर दिया।

टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्धन एक आन्दोलन बन गया। उसने अनुभवात्मक उपागम का प्रयोग करके जो सिद्धान्त तैयार किये हैं, उन्होंने औद्योगिक वृद्धि के लिये एक जमीन तैयार कर दी है। यह आन्दोलन अमरीका की सीमाओं से निकलकर पूरे यूरोप और सेन्ट्रल ऐशिया तक पहुँच चुका है। टेलर के विचारों को विश्वविद्यालयों और अन्य शिक्षा संस्थाओं में अध्ययन का विषय बनाया गया है।

संक्षेप में टेलर ने अपने सिद्धान्तों के माध्यम से सिद्धान्त और व्यवहार को, विचार और अनुभव को और क्रिया तथा शिक्षा को एक सूत्र में बांध दिया है। उसके वैज्ञानिक प्रबन्धन की अवधारणा ने लोक प्रशासन के विकास में बड़ा योगदान किया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. फ्रेडरिक टेलर की पुस्तक का नाम क्या है?

   क. दि प्रिस्पिल्स आफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट ख. दि हिस्ट्री आफ मैनेजमैन्ट थॉट

   ग. दि मेकिंग ऑफ साइन्टीफिक मैनेजमैन्ट घ. इनमें से कोई नहीं

2. वैज्ञानिक प्रबन्धन के कितने सिद्धान्त हैं?
क. 7 ख. 5 ग. 4 घ. 8

3. वैज्ञानिक प्रबन्धन नाम किसने दिया?
क. फ्रेडरिक टेलर ख. हेनरी फेयोल ग. लुइस ब्रेन्डीज घ. वुडरो विल्सन

4.10 सारांश

औद्योगिक प्रबन्धन से चलकर टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन का सिद्धान्त लोक प्रशासन तक और फिर सैनिक प्रशासन तक आता है। वह प्रत्येक उस घटक को प्रभावित करता है, जो उसके दायरे में आता है- लेखा, शिक्षा, स्वास्थ्य, कम्प्यूटर विज्ञान, बैकिंग इत्यादि। फ्रेडरिक टेलर के प्रबन्धन और लोक प्रशासन के क्षेत्रों में योगदान को संक्षेप में निम्न बिन्दुओं में समेटा जा सकता है।

1. फ्रेडरिक विन्सलो टेलर को ''वैज्ञानिक प्रबन्धन विज्ञान का जनक'' माना जाता है।

2. यद्यपि वह पेशे से एक मैकेनिकल इन्जीनियर था, लेकिन उसने काम में लगे लोगों के अध्ययन को अपना लक्ष्य चुना।

3. टेलर ने औद्योगिक कार्य स्थिति का गहनता से अध्ययन किया और औद्योगिक प्रबन्धन में उपस्थित खामियों को तलाशा।

4. अपनी खोजों के आधार पर उसने प्रबन्धन का जो दर्शन सामने रखा उसका मुख्य विषय था, औद्योगिक क्षमता।

5. औद्योगिक क्षमता के लिये पहली बार लुइस ब्रेन्डीज ने ''वैज्ञानिक प्रबन्धन'' शब्द का प्रयोग किया जो अन्ततः टेलर का विषय बन गया।

6. टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्धन का दार्शनिक आधार यह है कि मालिकों, कर्मचारियों और उपभोक्ताओं के हित समान हैं, उनमें कोई टकराव नहीं है।

7. समान हितों की मान्यता के आधार पर उसने वैज्ञानिक प्रबन्धन के चार सिद्धान्त प्रतिपादित किये, पहला- कार्य का एक वास्तविक विज्ञान विकसित करना; दूसरा- कर्मचारियों का वैज्ञानिक आधार पर चयन; तीसरा- कर्मचारियों या श्रमिकों को वैज्ञानिक शिक्षा या प्रशिक्षण देना; तथा चौथा- प्रबन्धन और कर्मचारियों के मध्य मधुर और मित्रतापूर्ण सम्बन्ध।

8. टेलर ने प्रबन्धन की बहुत सी तकनीकों का विकास किया, जिनमें प्रकार्यात्मक नेतृत्व (फोरमैनशिप) बहुत महत्वपूर्ण है। उसने उपकरणों को वृद्धि और निपुणता का एक बड़ा माध्यम बताया और स्वयं नवीन उपकरणों का अविष्कार किया।

9. मानसिक आन्दोलन को टेलर वैज्ञानिक प्रबन्धन का सार मानता है।

10. मानसिक आन्दोलन का अर्थ है, प्रबन्धन का कर्मचारियों के प्रति और कर्मचारियों का अपने काम के प्रति परिवर्तित रूख, अर्थात यह स्वीकार करना कि दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं और यह कि यदि क्षमता का अभाव होगा तो उत्पादन गिरेगा और सब के हित प्रभावित होंगे।

11. टेलरवाद मात्र एक विज्ञान नहीं है। यह एक दर्शन है और एक अवधारणा है। इस दर्शन का सार यह है कि प्रबन्धक को वैज्ञानिक होना चाहिए ना कि लकीर का फकीर बनना। समरसता होनी चाहिये ना कि वैमनस्य। सामूहिकता होनी चाहिए ना कि व्यक्तिवाद। अधिक उत्पादन के साथ-साथ सबका अधिकतम विकास भी हो।

12. ट्रेड यूनियनें वैज्ञानिक प्रबन्धन की विरोधी बन गयी। वह इसे श्रम विरोधी और ट्रेड यूनियन विरोधी समझने लगी।

13. आरोप यह भी लगा कि वैज्ञानिक प्रबन्धन यांत्रिकी अधिक है और मानवीय पहलुओं की अनदेखी करता है।

14. प्रबन्धकों ने भी टेलरवाद की आलोचना इस आधार पर की कि यह सिद्धान्त प्रबन्धकों की शिक्षा, प्रशिक्षण और निपुणता पर बहुत अधिक जोर देता है, जो प्रोन्नति में रूकावट है।

15. टेलरवाद संरचनात्मक प्रक्रियाओं पर अधिक बल देता है और श्रमिकों की भावनात्मक प्रकृति पर कम।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि टेलर की वैज्ञानिक प्रबन्धन की अवधारणा अपनी कमियों के बाद भी वर्तमान में विकसित आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था में सामयिक बनी हुई है।

4.11 शब्दावली

सोलजरिंग- हिन्दी में इसका कोई पयार्यवाची शब्द नहीं है। जब श्रमिक जान बूझकर अपनी क्षमता से कम काम करते हैं तो इस स्थिति को टेलर ने 'सोलजरिंग' या 'स्काइविंग' कहा है। हिन्दी में ऐसे व्यक्तियों को कामचोर कहा जा सकता है। यह स्थिति तब पैदा होती है जब श्रमिक को यह विश्वास बन जाता है कि यदि मैं अधिक काम करूंगा तो अतिरिक्त उत्पादन होगा और वह निकाल बाहर कर दिया जायेगा।

प्रकार्यात्मक फोरमैनशिप- हमने यहाँ फोरमैनशिप को अंग्रेजी में प्रयोग करना अधिक उचित समझा है। प्रकार्यात्मक (फंकशनल) अर्थात् कार्य सम्बन्धी, जो किसी संगठन की पहली शर्त है। संगठन का स्वरूप संरचनात्मक भी है और प्रकार्यातमक भी। टेलर प्रकार्यात्मकता को अधिक महत्व देता है। फोरमैनशिप, फोरमैन से बना है अर्थात किसी कारखाने का वह प्रमुख जिसके अर्न्तगत श्रमिकों का एक समूह हो। यहाँ टेलर का सिद्धान्त यह है कि एक श्रमिक को आठ दक्ष निरीक्षकों से आदेश प्राप्त करना चाहिए।

मानसिक क्रान्ति- वैज्ञानिक प्रबन्धन एक ऐसी क्रान्तिकारी स्थिति पैदा करता है, जिससे श्रमिकों और प्रबन्धकों का अपने कर्तव्यों के प्रति, अपने काम के प्रति, अपने सहयोगियों के प्रति और अपने पर्यावरण के प्रति रूख में एक ऐसा बदलाव आता है, जिसे टेलर मानसिक क्रान्ति कहता है। सब महसूस करने लगते हैं कि वे सब पर निर्भर हैं। इस परिवर्तन से पारस्परिक सहयोग बढ़ता है, विश्वास का माहौल पैदा होता है और कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, **2.** ग, **3.** ग

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

2. फ्रेडरिक टेलर, प्रिन्सिपल्स आफ□साइटीफिक मैनेजमैन्ट, हार्पर ब्रदर्स, न्यूयार्क, 1947

3. वी0 भास्कर रावः फ्रेडरिक टेलर, लेखः ऐडमिनिस्ट्रेटिव थींक्स, सम्पादन, डी0 रविन्द्र प्रसाद, वी0 प्रसाद, स्टलिंग, न्यू दिल्ली।

4.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 अशोक कुमार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।

2. प्रशासनिक विचारक, आर0 पी0 जोशी एवं अंजु पारीक, रावत पब्लिकेशन।

3. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस।

4.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वैज्ञानिक प्रबन्धन का विकास कैसे हुआ?
2. वैज्ञानिक प्रबन्धन के सिद्धान्तों को समझाइये।
3. टेलरवाद का किस आधार पर विरोध हुआ?

इकाई- 5 मैक्स वेबर

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 मैक्स वेबर- एक सिद्धान्तकार
5.3 सत्ता और वैधता
5.4 सत्ता का वर्गीकरण
    5.4.1 परम्परागत सत्ता
    5.4.2 करिश्माई सत्ता
    5.4.3 विधिक सत्ता
5.5 नौकरशाही: स्वरूप-चरित्र
5.6 मैक्स वेबर और नौकरशाही
5.7 मैक्स वेबर और नौकरशाही का प्रतिमान
5.8 मैक्स वेबर और आर्दश प्रकार की नौकरशाही
    5.8.1 वैयक्तिक विहीन व्यवस्था
    5.8.2 नियम
    5.8.3 पदसोपानीय व्यवस्था
    5.8.4 वैयक्तिक एवं लोक ध्येय
    5.8.5 लिखित दस्तावेज
    5.8.6 योग्य व्यक्तियों का चयन
5.9 वेबरवाद की आलोचना
5.10 समालोचना
5.11 सारांश
5.12 शब्दावली
5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.16 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

प्रशासनिक विचारकों में मैक्स वेबर को एक अद्वितीय विद्वान के रूप में जाना जाता है। वह पहला विचारक है जिसको नौकरशाही का पर्यायवाची माना गया है। उसने जर्मनी की परिस्थितियों से प्रभावित होकर नौकरशाही की रूपरेखा तैयार की। उसने सत्ता का विश्लेषण किया तथा सत्ता और वैधता का तार्किक सम्बन्ध स्थापित किया। इसी आधार पर वेबर ने सत्ता का वर्गीकरण किया, जिसके अनुसार पारम्परिक, करिश्माई और विधिक सत्ताऐं मुख्य हैं। वह विधिक सत्ता को मान्यता देता है और उसे तर्कसंगत-विधिक सत्ता का नाम देता है। विधिक-तर्कसंगत

के आधार पर वह नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार करता है और उसे 'आदर्श प्रकार' की नौकरशाही कहता है। आलोचनाओं के बावजूद वेबरवाद की आज भी सार्थकता बनी हुई है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- मैक्स वेबर को प्रशासन के एक सिद्धान्तकार के रूप में समझ पायेंगे।
- क्यों मैक्स वेबर और नौकरशाही एक-दूसरे के पर्यायवाची बन गये, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- नौकरशाही का अर्थ और वेबर द्वारा नौकरशाही की अवधारणा को समझ पायेंगे।
- वेबर द्वारा तैयार किये गये नौकरशाही के प्रतिमान के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- विधिक-तर्कसंगत सत्ता का विचार और सत्ता के विभिन्न स्वरूप के बारे में जान पायेंगे।
- वेबर द्वारा प्रस्तुत 'आर्दश प्रकार' की नौकरशाही की अवधारणा को समझ पायेंगे।
- क्यों वेबरवाद आज भी प्रांसागिक है और आधुनिक प्रशासकीय व्यवस्था में वेबरवादी नौकरशाही को अपरिहार्य माना जाता है, इस सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- वेबरवाद में क्या कमियाँ हैं, इसे जान पायेंगे।

5.2 मैक्स वेबर- एक सिद्धान्तकार

पिछले पन्नों में आपने पढ़ा कि हेनरी फेयोल को प्रबन्धन प्रक्रिया विचारधारा का जनक माना गया है। उसने वास्तव में शास्त्रीय प्रबन्धन सिद्धान्त की नींव डाली। फेयोल के बाद फ्रेडरिक टेलर 'वैज्ञानिक प्रबन्धन' का दृष्टिकोण लेकर सामने आया। उसने तो प्रबन्धन और प्रशासन के क्षेत्र में वैज्ञानिकता लाकर एक क्रान्ति को जन्म दिया। इस तरह इन दोनों चिन्तकों ने अपने सिद्धान्तों के माध्यम से भावी चिन्तकों के लिये जमीन तैयार कर दी। अब इसी क्रम में आप पढ़ेगें एक ऐसे विचारक या सिद्धान्तकार को जिसने अनुमानों के संसार से निकलकर यथार्थ के मैदान में पदार्पण किया। वह ना केवल प्रशासन बल्कि राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, विधिशास्त्र और इतिहास जैसे क्षेत्रों में भी एक बहुआयामी व्यक्तित्व बन गया।

एक सिद्धान्तकार था मैक्स वेबर(1864-1920), जो दूसरे शब्दों में नौकरशाही (Bureaucracy) का पर्यायवाची बन गया। वेबर सही अर्थ में एक समाजशास्त्री था। उसने पहली बार नौकरशाही की अवधारणा को स्पष्ट करने का प्रयास किया। उसके लेखों से पहले नौकरशाही मात्र एक क्रिया समझी जाती थी। लेकिन वेबर ने नौकरशाही को अवधारणात्मकता प्रदान करके अध्ययन का एक विषय बना दिया। इसी के साथ वेबर ने वैधता और आधिपत्य (Legitmacy and Demination) के बारे में भी सिद्धान्त प्रतिपादित किये।

वेबर ने कानून, इतिहास और अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया था। राजनीतिक-अर्थशास्त्र वेबर का प्रिय विषय था। इसी विषय में उसने अध्यापन से अपना जीवन आरम्भ किया, लेकिन हताशा और निराशा ने उसका रूख समाजशास्त्र की ओर मोड़ दिया। आज वह समाजशास्त्र का महान लेखक माना जाता है।

लेकिन यहाँ प्रश्न यह है कि मैक्स वेबर का प्रबन्धन या प्रशासन से क्या सम्बन्ध था? यहाँ हम यह बता दें कि वेबर का रूझान 18 वर्ष की आयु से विश्लेषण और क्रमबद्ध अध्ययन की ओर अधिक था। वह पुस्तकालय में बैठकर पुस्तकों के पन्नों से निष्कर्ष नहीं निकालता था, वह वास्तविकताओं का अध्ययन करके अनुभव के आधार पर अपने सिद्धान्तों का समर्थक था। इस तरह वह अनुभववादी भी था और यथार्थवादी भी था। वह जर्मनी की

सामाजिक परिस्थितियों से अधिक प्रभावित था। उसको सबसे बड़ा डर यह था कि समाज का नौकरशाहीकरण व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व के लिये एक चुनौती बन सकता है। इसलिये उसने जिन विषयों पर लिखना आरम्भ किया उनमें सत्ता, संगठन, वैधता और नौकरशाही महत्वपूर्ण है। यहाँ यह बात स्पष्ट कर दें कि वेबर ने जो कुछ भी लिखा उसका लक्ष्य एक सर्वोत्तम प्रशासन की नींव डालना था। उसके सिद्धान्त शासन के इर्द-गिर्द ही घूमते नजर आते हैं।

5.3 सत्ता और वैधता

सत्ता, शक्ति, प्रभाव और नियत्रंण जैसे शब्द लगभग एक-दूसरे के पर्यायवाची है। यह सम्बन्धात्मक शब्द है। अर्थात् एक ओर वो एक ऐसा व्यक्ति या समूह है, जिसके पास सत्ता या शक्ति है और दूसरी ओर ऐसा व्यक्ति या समूह है, जिस पर सत्ता या शक्ति का प्रयोग होना है। सत्ता या शक्ति के प्रयोग का लक्ष्य है, दूसरे के आचरण को अपनी इच्छानुसार प्रभावित या नियंत्रित करना।

दूसरी ओर वैधता है। वैधता (Legitineacy)का अर्थ है, किसी कृत (कार्य) के औचित्य को स्वीकार कर लेना। वैधता, कृत का कानूनी स्वरूप है। जनता ने एक सरकार चुनी उस सरकार को वैद्यता मिल गयी। अब उस सरकार को उसके कार्यकाल से पहले चुनौती नहीं दी जा सकती।

सम्भवत: आप सत्ता (Authority) और वैधता का अर्थ समझ गये होंगे। अब हमें यह समझाना है कि सत्ता और वैधता को मैक्स वेबर ने क्या नये आयाम दिये और किस तरह उसने इन दोनों अवधारणाओं का सम्बन्ध प्रशासन और नौकरशाही से जोड़ा?

मैक्स वेबर ने आधिपत्य (Domination), नेतृत्व (Leadership) और वैधता (Legitineacy) पर सर्वप्रथम अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं। नेतृत्व उसका यहाँ मुख्य विषय है। धर्म और समाज, नेतृत्व के स्वरूप को ढालते हैं। इस सन्दर्भ में उसने सत्ता, शक्ति और नियंत्रण को एक-दूसरे से पृथक करने का प्रयास किया है। उसने धर्म और समाज के प्रभावों को भी समझने का प्रयास किया है।

शक्ति सम्पन्न व्यक्ति कौन है? मैक्स वेबर का उत्तर है, वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्ति या समूह पर अपनी इच्छा थोप सकने में सक्षम है और जिस पर वह इच्छा थोपी गयी है, उसमें विरोध की शक्ति नहीं है। जो शक्ति सम्पन्न है वह प्रभावशाली है और सामाजिक सम्बन्धों में जो प्रभावशाली है, उसके नियंत्रण में पूरा समाज है। जब इस नियंत्रण को वैधता मिल जाती है तो वह सत्ता कहलाती है। सत्ता में ही लोगों का अस्तित्व बना रहता है। सत्ताधारी आदेश देता है और लोग उस आदेश का पालन करते हैं। अर्थात् शासक और शासित की अवधारणा यहीं से आरम्भ होती है। वेबर के अनुसार आदेश की एकाधिकारवादी शक्ति, सत्ता है। उसके अनुसार सत्ता के पांच तत्व या विशेषताऐं हैं-

1. एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह जो शासन करते हैं।
2. एक व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह जो शासित होते हैं।
3. शासकों की वह इच्छा जो शासितों के आचरण को प्रभावित करें और जिसमें आदेश की शक्ति छिपी हो।
4. शासकों के प्रभाव सर्वविदित हों।
5. शासितों द्वारा आदेश का पालन या प्रभाव की स्वीकृति सर्वविदित हो। उसके सर्वविदित साक्ष्य हों।

सत्ता और वैधता का गहरा सम्बन्ध है। शक्ति या प्रभाव के लिये वैधता अनिवार्य नहीं है। लेकिन सत्ता का अस्तित्व वैधता पर टिका होता है। वैधता शासितों की ओर से स्वीकृत होती है। सत्ताधारी तब तक शासन करता है, जब तक उसे वैधता प्राप्त होती रहती है। प्रशासन या संगठन के पीछे भी वैधता छिपी होती है। वेबर के अनुसार संगठन का का अर्थ है ''अधिपत्य'' जो सत्ता से प्राप्त होता है। इस तरह सत्ता, वैधता, आधिपत्य, नियंत्रण, प्रभाव, संगठन,

शासक, शासित इत्यादि इन सबका चोली-दामन का साथ है। शासित अपने स्वभाव से आज्ञाकारी होते हैं, ऐसे चार प्रकार के शासित होते हैं-

1. जो आदेशों का पालन करने के आदी होते हैं।
2. जो तत्कालीन अधिपत्य को अपने हित में जारी रखना चाहते हैं।
3. वे स्वयं अधिपत्य का एक हिस्सा बने रहना चाहते हैं।
4. सत्ताधारी संगठन द्वारा दिये गये कार्यों को बड़ी तत्परता से स्वीकार करते हैं।

यहाँ हम यह बता दें कि सत्ता इन्हीं चार प्रकार के व्यक्तियों पर टिकी होती हैं। ये 4 प्रकार के व्यक्ति सत्ता या अधिपत्य के प्राण कहे जा सकते हैं। इन व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह का अपना अस्तित्व केवल इसलिये होता है कि वे शासक के अस्तित्व को बनाये रखें, क्योंकि मैक्स वेबर एक प्रशासनिक चिन्तक है, इसलिये उसने अधिपत्य का दूसरा नाम प्रशासन रखा है। उसकी दृष्टि में शासक और प्रशासक में या शासन और प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों का लक्ष्य अधिपत्य है।

5.4 सत्ता का वर्गीकरण

अब आप समझ गये होंगे कि सत्ता, वैधता और अधिपत्य का अर्थ क्या है? यह सम्बन्धात्मक क्यों है? और प्रशासन से इसका सम्बन्ध क्या है? वेबर के अनुसार प्रशासन एक अधिपत्य है या फिर प्रशासन सत्ता का क्रियान्वयन है। कुछ चिन्तक प्रशासन को एक सेवा मानते हैं, लेकिन वेबर ऐसा नहीं मानता है। वह प्रशासन के पीछे आदेश देखता है। आदेश की वैधता और आज्ञापालन महत्वपूर्ण घटक है। उसने सत्ता को तीन वर्गों में विभाजित किया है जो इस प्रकार हैं-

5.4.1 परम्परागत सत्ता

अब यह तय है कि सत्ता और वैधता का गहरा सम्बन्ध है। परम्परागत सत्ता की जड़ें अतीत में फैली होती हैं। अतीत को लेकर जो वर्तमान में चलता रहता है, उन्हें परम्परा कहते हैं। वेबर की दृष्टि में जब यही परम्पराऐं सत्ता के लिये वैधता का स्रोत बन जाती हैं तो ऐसी सत्ता परम्परागत सत्ता कही जाती है। राजतंत्र और कुलीनतंत्र परम्परागत सत्ता के उदाहरण हैं। यहाँ सत्ता नितान्त वैयक्तिक होती है। यह व्यक्ति को विरासत में मिली होती है। शासक की प्रकृति में शासन होता है। वह स्वाभाविक रूप से शासन करने का आदि होता है।

अब आप प्रश्न करेंगे कि ऐसे शासक की सत्ता को वैधता कैसे मिलती है? उत्तर सरल है- होता यह है कि शासित सदियों से चली आ रही वंशानुगत सत्ता के आदेशों के पालन करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। उन्हें ऐसे अनुपालन में बड़ा आनन्द आता है। अर्थात् वे परम्परावादी बन जाते हैं। उनका यही स्वभाव तत्कालीन सत्ता को वैधता प्रदान करता है। मैक्स वेबर के अनुसार शासक 'स्वामी' कहलाऐ जाते हैं और शासित 'अनुयायी'। सत्ताधारी में परम्परा के आधार पर इतनी क्षमता होती है कि वह आदेश देता है और अनुयायियों या प्रजा में इतनी विनम्रता होती है कि वे स्वाभाविक रूप से आदेश का पालन करते हैं। वे सत्ताधारी के वफादार होते हैं और वफादारी को वे अपना धर्म समझते हैं।

परम्परावादी सत्ता की एक और विशेषता यह है कि वे लोग जो सत्ताधारी के आदेशों को पालन करवाते हैं वे सत्ताधारी के सगे-सम्बन्धी होते हैं या फिर वे स्वामी के पसंदीदा लोग होते हैं। वे स्वामी के वफादार सहयोगी होते हैं। जहाँ सत्ता का यह चरित्र होता है, वहाँ प्रशासन एक बकवास बन जाता है, क्योंकि जिनके हाथ में प्रशासन होता है वे प्रायः अक्षम और अयोग्य होते हैं। वे केवल राजा या स्वामी की सनक और कल्पनाओं के अनुसार काम करते

हैं। यहाँ यह बात याद रखनी होगी कि सत्ताधारी का प्रत्येक कृत परम्पराओं के द्वारा वैध बन जाता है। यहाँ तक कि शासक की निरंकुशता और एकाधिकार भी रूढ़ियों के बल पर वैधता प्राप्त कर लेते हैं।

5.4.2 करिश्माई सत्ता

मैक्स वेबर के अनुसार जब कोई सत्ताधारी या शासक अपने असाधारण कृत्यों के माध्यम से कोई करिश्मा या चमत्कार कर दिखाता है, तो उसके अनुयायी अथवा प्रजा उसके मुरीद हो जाते हैं। वे भावनात्मक तौर से करिश्माई नेता से जुड़ जाते हैं। इस तरह चमत्कार या करिश्मा, वैधता का आधार बन जाता है। वेबर के अनुसार चमत्कारी व्यक्ति साधारण व्यक्ति से पृथक हो जाता है। लोग उसमें दैवी शक्ति के दर्शन करने लगते हैं। वे उसे महाशक्ति, पराप्रकृति और परामानव मानते हैं।

यहाँ हम यह बतालाना चाहते हैं कि वेबर ने करिश्माई सत्ता को प्रशासन के साथ कैसे जोड़ा। वेबर के अनुसार, करिश्माई नेता जब शासक बन जाता है तो वह केवल उन्हीं लोगों पर भरोसा करता है जो उसकी चमत्कारी शक्ति में अथाह विश्वास रखते हैं। वे उसके अन्ध अनुयायी होते हैं। उसे भगवान मानते हैं। उसमें वे दैवी शक्ति देखते हैं और उसकी पूजा करते हैं। शासक ऐसे ही व्यक्तियों को अधिकारी बनाता है और उन्हें प्रशासन सौंपता है। वह अपने अधिकारियों का चयन उनकी योग्यता के आधार पर नहीं करता है बल्कि वफादारी, समर्पण, श्रद्धा और निष्ठा चयन के मापदण्ड होते हैं। उसके प्रशासक, भक्त अधिकारी कहे जा सकते हैं। यही प्रशासकीय संगठन की रचना करते हैं। उनकी समस्त क्रियाएँ शासक या नेता की पसन्द और नापसन्द के अनुसार चलती हैं। यहाँ आप प्रश्न कर सकते हो कि ऐसे करिश्माई सत्ताधारियों को शासन की किस श्रेणी में रखा जा सकता है? मैक्स वेबर का उत्तर है, ऐसे नेता प्रायः तानाशाह बन जाते हैं। वे देश को विनाश के रास्ते पर ले जा सकते हैं, क्योंकि वे अनुयायियों की अन्धभक्ति का लाभ उठाते हैं।

5.4.3 विधिक सत्ता

विधिक (Legal) सत्ता के स्रोत तत्कालीन कानून होते हैं। जब समाज में एक संविधान सर्वोपरि माना जाता है तो व्यवस्थापिका द्वारा बनाये गये कानून उसी संविधान के अनुसार होते हैं। प्रशासकीय संगठन इसी संवैधानिक या कानूनी सत्ता की अभिव्यक्ति होते हैं। कानून का शासन सब लोगों पर समान रूप से लागू होता है। सत्ताधारी व्यक्ति (प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति) की सत्ता का स्रोत संविधान और कानून ही होते हैं। प्रशासकीय संगठन जिन लोगों पर निर्भर करता है, उनका चयन और नियुक्ति कानून के अनुसार होती है। प्रशासकों का ध्येय कानून और विधिक व्यवस्था को बनाये रखना होता है। ऐसी स्थिति में कानून का शासन होता है। कानून की दृष्टि में सब बराबर हैं। अधिकारी और सामान्य लोगों के मध्य में आदेश और अनुपालन का रिश्ता तो होता है, लेकिन दोनों का आचरण कानून के अनुसार होता है। अधिकारी मनमानी नहीं कर सकते, क्योंकि वे कानूनी सीमाओं से बंधे हुये होते हैं। विधिक सत्ता की यह स्थिति एकाधिकारवाद को पनपने नहीं देती।

इस तरह आप देखेगें कि सत्ता का चाहे जो भी स्वरूप हो उसको अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए शासितों से वैधता प्राप्त करनी ही होती है। अर्थात् वैधता का वास्तविक स्रोत शासित होते हैं। शासितों का ध्येय होता है, अपेक्षानुसार सुशासन और उनकी अपनी समृद्धि और राज्य का समग्र विकास। यदि शासक इन अपेक्षाओं के विपरीत चलता है, निजी हितों को सर्वोपरि समझता है, अपने स्वभाव में सनक को जगह देता है, गैर-कानूनी और अनैतिक हरकतें करता है, वर्ग-विभेद में विश्वास करना, भावनात्मक मुद्दों का सहारा लेता है तो निश्चित तौर पर वह स्वस्थ परम्पराओं से भी हटता है। कानून भी तोड़ता है और अपने करिश्मे को भी खो देता है।

यहाँ वेबर का सुझाव यह है कि सर्वोत्तम सत्ता की स्थापना के लिये तीनों प्रकार की सत्ताओं, पारम्परिक, करिश्माई और विधिक का मिश्रण अनिवार्य है, क्योंकि प्रत्येक सत्ता में बहुत सी कमियां होती हैं। मिश्रित सत्ता शुद्ध सत्ता होती है, लेकिन वेबर के अनुसार तीनों प्रकार की सत्ताओं का अलग-अलग विश्लेषण होना चाहिए।

आप यहाँ सवाल कर सकते है कि तीनों प्रकार की सत्ताओं में सर्वोत्तम कौन सी है? मैक्स वेबर का उत्तर है- 'विधिक सत्ता'। क्यों? क्योंकि यह तार्किक है। यह लोकतांत्रिक विचारधारा के अनुरूप है। यह आधुनिक सरकारों का आधार है। इसके समय के साथ बदलने की सम्भावना बहुत कम है। विधिक तार्किकता को दृष्टि में रखकर ही वेबर ने अपने नौकरशाही के प्रतिमान (Model) को तैयार किया है, क्योंकि वेबर जानता है कि आधुनिक सरकारों का सबसे अधिक वासता (काम) नौकरशाही ही से पड़ता है।

5.5 नौकरशाही का स्वरूप या चरित्र

पहले हम आपको यह बता दें कि नौकरशाही है क्या? नौकरशाही का अंग्रेजी अनुवाद है 'Bureaucracy'। ब्यूरो अलमारी को कहते हैं। प्रशासन में अलमारी से अभिप्राय है, आफिस या कार्यालय। आगे चलकर कार्यालय से अर्थ निकाला गया अधिकारी और उनके अधीनस्थ। अन्ततः अधिकारी-तंत्र प्रशासकीय व्यवस्था को नाम दिया गया। 20वीं सदी में अधिकारी-तंत्र नौकरशाही कहलाने लगी। कारण था एक मानसिकता का पनपना। मानसिकता यह थी कि अधिकारी थे तो नौकर, लेकिन दिमगा था शाहो जैसा। इसलिये इस व्यवस्था को हिन्दी में नौकरशाही कहते हैं। आज विश्व का पूरा प्रशासन इसकी पकड़ में है।

नौकरशाही की जड़ें अतीत में भी देखी जा सकती हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी नौकरशाह जैसे अधिकारियों का वर्णन मिलता है। आधुनिक समय में कल्याणकारी राज्य की स्थापना के साथ ही लोक कार्यालयों की स्थापना होने लगी। धीरे-धीरे लोक कार्यालय एक संगठन बन गये और नौकरशाही एक प्रशासकीय व्यवस्था बन गई।

'ब्यूरोक्रेसी' शब्द का सबसे पहले प्रयोग फ्रान्सीसी अर्थशास्त्री डी0 गोरने ने किया। फ्रान्स में 18वीं सदी में ही यह शब्द बहुत लोकप्रिय हो गया था। ब्रिटिश राजनीतिशास्त्रियों ने इस शब्द को 19वीं सदी में ग्रहण किया। जे0 एस0 मिल ने ब्यूरोक्रेसी को अपने विश्लेषण का विषय बनाया। आगे चलकर लगभग सभी समाजशास्त्रियों ने नौकरशाही के अध्ययन को महत्वपूर्ण स्थान दिया। लेकिन वह नाम जिसके बिना नौकरशाही की अवधारणा अधूरी है, वह निश्चित तौर पर मैक्स वेबर है।

5.6 मैक्स वेबर और नौकरशाही

आप को नौकरशाही के बारे में जो कुछ समझाया गया, वो विशेष रूप से 'मोस्का' और 'माइकेल्स' के विचार थे। अब यह समझना होगा कि नौकरशाही कोई 'वाद' या विचारधारा नहीं है, ना यह कोई चिन्तन है और ना ही कोई दर्शन। इसलिये मैक्स वेबर ने भी नौकरशाही को या उसके चरित्र को स्पष्ट तो किया है, उसे परिभाषित नहीं किया है। वह नौकरशाही को नियुक्त पदाधिकारियों का एक प्रशासनिक ढाँचा या समूह मानता है। उसके अनुसार निर्वाचित लोग नौकरशाही का अंग नहीं होते हैं। वेबर नौकरशाही की विशेषताओं के आधार पर उसको दो वर्गों में विभाजित करता है।

पहला- पुश्तैनी या पैतृक नौकरशाही, जिसका सम्बन्ध पारम्परिक और करिश्माई सत्ताओं से होता है तथा दूसरा- विधिक-तार्किक नौकरशाही, जिसका सम्बन्ध विधिक सत्ता से होता है।

यहाँ हमने यह देखा कि वेबर ने नौकरशाही का सम्बन्ध सत्ता से जोड़ा और फिर सत्ता के स्रोत के आधार पर उसने नौकरशाही को वैधता प्रदान करने का प्रयास किया। वेबर ने अनुसार नौकरशाही स्वंय में सत्ता है, जिसको कानूनी

मान्यता या वैधता प्राप्त होती है। इसलिये वह नौकरशाही को विधिक-तार्किक सत्ता कहता है। अनेक विद्वानों ने वेबर की नौकरशाही विश्लेषण को वेबरवादी प्रतिमान (वेबैरियन मॉडल) कहा है।

वेबर किसी भी प्रकार की सत्ता के लिये वैधता को अनिवार्य मानता है। उसके अनुसार सत्ता की वैधता पाँच स्पष्ट विश्वासों पर टिकी होती है-

1. एक कानूनी संहिता की स्थापना अनिवार्य है, जो संगठन या समूह से अनुपालन की अपेक्षा कर सकती है;
2. कानून नियमबद्ध नियमों की एक व्यवस्था है, जिनको विशिष्ट प्रकरण पर लागू किया जाता है। प्रशासन इन्हीं कानूनों की सीमाओं के भीतर संगठन के हितों की समीक्षा करता है;
3. वह व्यक्ति जो सत्ता का प्रयोग करता है, वह भी कानूनी व्यवस्था का पालन करता है;
4. केवल समान स्तर का सदस्य दूसरे सदस्य से अनुपालन करवा सकता है; तथा
5. अनुपालन सत्ताधारी व्यक्ति का नहीं होता है वरन् उस व्यवस्था का होता है, जिसने सत्ताधारी को वह पद दिया है।

वेबर द्वारा प्रस्तुत किये गये पांच तत्व यह सिद्ध करते हैं कि वह वैधता और व्यक्तित्व विहीन व्यवस्था के मध्य एक गहरा सम्बन्ध देखता था। उसने नौकरशाही पर खुलकर बहस की है और ऐसा लगता है कि नौकरशाही पर दिये गये उसके वक्तव्यों पर चार तथ्यों का गहरा प्रभाव पड़ा है जो इस प्रकार हैं-

- ऐतिहासिक, तकनीकी और प्रशासनिक कारण, जिन्होंने पश्चिमी जगत में नौकरशाहीकरण की प्रक्रिया को निर्णायक स्वरूप प्रदान किया है;
- नौकरशाही-तंत्र पर विधि के शासन का प्रभाव;
- नौकरशाही द्वारा ग्रहण पद के कारण उनमें पनपी मानसिकता; तथा
- आधुनिक जगत पर नौकरशाही व्यवस्था के परिणामों का प्रभाव।

वेबर का मानना है कि इन चार कारणों ने आधुनिक सरकारों को पूरी तरह अपने शिकंजे में ले लिया है।

5.7 वेबर और नौकरशाही का प्रतिमान

आपको यह याद रखना होगा कि वेबर द्वारा तैयार किया गया नौकरशाही का प्रतिमान या नमूना (मॉडल) दो शब्दों पर आधारित है- विधिक और तार्किक (Legal & Rational) अर्थात् कानूनी और तर्कसंगत। इस बहस को और आगे बढ़ाते हुये अब हम यह स्पष्ट करेंगे कि वेबर ने अपने प्रतिमान की क्या विशेषताएं बताई हैं? वेबर कानून, राजनीति, अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान का अद्वितीय विद्वान था। अतः उसने इन अनुशासनों को दृष्टि में रखकर नौकरशाही से सम्बन्धित प्रभावों का विश्लेषण किया है और उसके आधार पर अपना नौकरशाही का प्रतिमान तैयार किया है, जिसकी विशेषताएं इस प्रकार हैं-

1. प्रशासन से सम्बन्धित कार्यकलाप दो भागों में विभक्त होते हैं, निजी और लोक या सरकारी। लोक या सरकारी कार्यों में निरन्तरता होती है, वे चलते रहते हैं।
2. कोई भी प्रशासनिक अभिकरण (संगठन या ऐजेन्सी) निश्चित नियमों के अनुसार कार्य करती है। इस सम्बन्ध में तीन बातों को ध्यान में रखना होगा, पहला- प्रत्येक अधिकारी की शक्तियां और कार्य जहाँ तक उसकी व्यक्तिगत हैसियत का सवाल है, असीमित होते हैं। इसका अर्थ है कि निर्णय लेते समय वह अपने औचित्य का प्रयोग करने का अधिकारी है, दूसरा- अधिकारी को उत्तरदायित्व के अनुरूप सत्ता प्रदान की जाती है तथा तीसरा- बाध्यकारी उपाय जो अधिकारी को प्रदत्त होते हैं, सीमित होते हैं और वे परिस्थितियां जिनके अर्न्तगत वह उनका प्रयोग कर सकता है और यह तभी सम्भव है जब वह वैधता की

सीमा में हो। अर्थात् मनमाने ढंग से वह बाध्यकारी शक्तियों का प्रयोग नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में स्पष्ट नियम हैं।

3. सत्ता की एक श्रेणीबद्धता (पदानुक्रम या हायरॉर्की) होती है। प्रत्येक पदाधिकारी इस व्यवस्था का एक भाग होता है। उच्चतर अधिकारियों का काम आदेश देना और निरीक्षण करना है। जबकि निम्न स्तर के अधिकारी या कर्मचारी उत्तरदायित्व को निभाते हैं और अनुपालन करते हैं। उनको याचना (अपील) करने का भी अधिकार होता है।
4. कर्त्तव्यों को निभाने के लिये पदाधिकरी संसाधनों के स्वामी नहीं होते हैं वरन् वे सरकारी संसाधनों के उपयोग कि लिये जवाबदेह होते हैं।
5. कार्यालय (विभाग, संगठन) निजी सम्पत्ति नहीं हैं। जिन्हें जब चाहें, मन चाहे अधिकारियों से भर दिया जाये। ना तो यह किसी की विरासत है और ना ही क्रय-विक्रय की वस्तु।
6. लिखित दस्तावेज प्रशासन के क्रियान्वयन का आधार होते हैं।

उक्त विशेषताओं के आधार पर प्रश्न किया जा सकता है कि सत्ता या प्रशासन के अधिकारियों या नौकरशाहों की विशेषता क्या होती है? वेबर ने इस विषय पर खुलकर बहस की है। उसके अनुसार अधिकारी-

- व्यक्तिगत तौर पर स्वतंत्र होता है अर्थात् व्यक्तिगत तौर पर वह किसी का मातहत नहीं होता है। उसकी नियुक्ति एक संस्था के द्वारा किसी सरकारी पद पर होती है। इस नियुक्ति की शर्त संविदा होती है;
- नियमों के अनुसार वह उस सत्ता का क्रियान्वयन करता है जो उसको प्रदत्त की जाती है और उसकी वफादारी का मापदण्ड उसके द्वारा निष्ठा से किये गये कार्य होते हैं;
- नियुक्ति का आधार उसकी प्रशासकीय महारत और योग्यता होती है;
- उस पद पर नियुक्त किया जाता है, जिसमें वह तकनीकी दृष्टि से दक्ष हो;
- प्रशासनिक कार्यों को पूरा करना उसकी जिम्मेदारी होती है। कार्य की समय सीमा उसके लिये नहीं है; तथा
- वेतन और प्रोन्नति के अवसर उसके पुरस्कार हैं।

वेबर के अनुसार अपनी प्रकृति, अपने चरित्र और अपनी हैसियत (Status) से विधिक-तर्कसंगत नौकरशाही अन्य प्रशासनिक व्यवस्थाओं की तुलना में तकनीकी आधार पर उच्चतर होती हैं। नौकरशाही द्वारा शासित लोग इस विशिष्ट प्रशासन के अभ्यस्त हो जाते हैं। वे सोच भी नहीं सकते कि कोई दूसरी प्रशासनिक व्यवस्था उनको संतुष्टि दे सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि नौकरशाही ने स्वयं को मजबूती से स्थापित किया है। वह स्थायी और अनिवार्य बन गई है। मैक्स वेबर का विधिक-तर्कसंगत नौकरशाही का प्रतिमान जिन अनिवार्यताओं की ओर इशारा करता है, उन्हें याद रखना जरूरी है, जिनका आगे चलकर विश्लेषण किया जायेगा।

5.8 वेबर और आदर्श प्रकार की नौकरशाही

जैसा कि आपको बताया गया कि वेबर ने नौकरशाही का एक प्रतिमान तैयार किया, जिसको वेबरवादी प्रतिमान भी कहा जाता है। इस प्रतिमान की मुख्य विशेषताऐं हैं- वैयक्तिक रहित व्यवस्था, नियम, दक्षता का क्षेत्र, पदसोपान, व्यक्तिक और लोक लक्ष्य, लिखित अभिलेख, और एकतंत्र। अब हम सब विशेषताओं पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

5.8.1 वैयक्तिक विहीन व्यवस्था

यहाँ दो बातें समझना है। वेबर का मानना यह है कि सत्ता का केन्द्र या तो व्यक्ति होगा या व्यवस्था होगी। यदि व्यक्ति सत्ताधारी होगा तो वैयक्तिक सत्ता होगी और यदि व्यवस्था सत्ता का केन्द्र होगी तो यह वैयक्तिक विहीन व्यवस्था (Impersonal order) कहलायेगी। वेबर का प्रतिमान वैयक्तिक विहीन व्यवस्था पर जोर देता है। उसका मानना है कि सत्ता या नियंत्रण की शक्ति का स्रोत व्यक्ति नहीं वरन् पद या वह स्थिति होती है, जिसको विधिक मान्यता मिली होती है। व्यक्ति हटते रहते हैं, लेकिन पद बना रहता है। स्थिति या कार्यालय व्यक्ति को एक हैसियत(Status) प्रदान करता है। व्यक्ति उस हैसियत के अनुसार मात्र एक भूमिका अदा करता है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई भी व्यक्ति किसी पद पर फिट हो सकता है। नौकरशाही व्यवस्था में पद के अनुरूप प्रशिक्षण अनिवार्य है। योग्यता और दक्षता का यही मापदण्ड है।

5.8.2 नियम

क्या नौकरशाह एकाधिकारवादी होते हैं? या वे अपनी सनक के अनुसार काम करते हैं? मैक्स वेबर के अनुसार तर्कसंगत विधिक सत्ता की विशेषता यह है कि नौकरशाही के निर्णय लेने और क्रियान्वयन की शक्ति नियमों द्वारा प्रतिबन्धित होती है। नियम उनका क्षेत्राधिकार निश्चित करते हैं और वे नियमों का पालन करने के लिये बाध्य होते हैं। यह नियम तकनीकी भी होते हैं और औपचारिक भी। इन नियमों को तार्किकता के आधार पर क्रियान्वित किया जाता है। लेकिन यह तभी सम्भव होता है जब अधिकारी या संगठन को नियमों की जानकारी हो और उनके क्रियान्वयन के लिये प्रशिक्षण दिया जाये। वेबर के दृष्टिकोण को समझते हुए मर्टन ने लिखा है कि नियमों को वास्तव में साधन समझा जाता है और नौकरशाही में यह नियम स्वयं में साधन बन जाते हैं। स्थिति ऐसी उत्पन्न होने लगती है कि जो अन्तिम लक्ष्य है। (जैसे किसी योजना को पूरा करना) वह गौड़ हो जाता है और नियम अन्तिम लक्ष्य बन जाते हैं। नतीजा यह होता है कि अधिकारी लकीर के फकीर बन जाते हैं, पत्राचार में उलझ जाते हैं। अनौपचारिकता अर्थहीन हो जाती है और परिणाम स्वरूप बिलम्ब प्रशासनिक संकट पैदा करते हैं।

5.8.3 पदसोपानीय व्यवस्था

प्रशासन संगठन पर निर्भर होता है। संगठन की एक संरचना होती है। वह संरचना कुछ नियमों के अनुसार होती है। इन नियमों में वेबर की दृष्टि में सबसे अधिक तर्कसंगत नियम पदसोपान का है। पदसोपान के बारे में पहले भी लिखा जा चुका है। वेबर के अनुसार प्रत्येक निम्नस्तर कार्यालय अपने से उच्चतर कार्यालय के नियंत्रण और निरीक्षण के अधीन रहता है। उसका मानना है कि किसी संगठन के समस्त प्रशासनिक कर्मचारी एक परिभाषित पदसोपानीय व्यवस्था के द्वारा संगठित होते हैं। वेबर की दृष्टि में यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है कि आदेश ऊपर से आने चाहिए। संगठन के प्रत्येक स्तर पर यह सिद्धान्त लागू होना चाहिए।

5.8.4 वैयक्तिक और लोक ध्येय

प्रशासन का लक्ष्य जनहित होता है। लेकिन प्रशासन अधिकारियों के हाथ में होता है। इसलिये अक्सर प्रशासक वैयक्तिक हितों की पूर्ति की ओर भी मुड़ जाते हैं, यहाँ से आरम्भ होता है वैयक्तिक और लोकहितों के बीच टकराव। यहाँ वेबर का सुझाव यह है कि प्रशासकों का स्वामित्व किसी भी प्रकार से उत्पादन के संसाधनों या प्रशासन में नहीं होना चाहिए। यहाँ तक कि प्रशासन में प्रशासकों के किस स्थिति पद या स्थान पर तैनात किया जाये, यह अधिकार भी प्रशासकों को नहीं होना चाहिए। नौकरशाह अपने पद शक्ति और सत्ता का दुरूपयोग ना करें, इसलिये उन पर कुछ प्रतिबन्ध अनिवार्य हैं।

5.8.5 लिखित दस्तावेज

मैक्स वेबर ने अपने आदर्श प्रकार की सत्ता के लिये लिखित दस्तावेज को अनिवार्य बताया है। वह नौकरशाही में अनौपचारिकता को खतरनाक मानता है। उसका सुझाव है कि समस्त प्रशासनिक क्रियाओं, निर्णय और नियम लिखित रूप में तैयार किये जाये और उनको अभिलिखित(रिकार्ड) किया जाये। यहाँ तक कि किसी मीटिंग में यदि कुछ मौखिक फैसले हो तो उनको भी लिखा जाये। दस्तावेज अधिकारी को उत्तरदायी बनाते हैं। ये जनता के प्रति जबावदेह होते हैं। दस्तावेज भावी योजनाओं के लिये भी अनिवार्य होते हैं।

5.8.6 यौग्य व्यक्तियों का चयन

तकनीकी दृष्टि से प्रशासन के लिये योग्य व्यक्तियों का चयन मैक्स वेबर की तर्कसंगत-विधिक नौकरशाही की एक बड़ी विशेषता है। वह अपने प्रतिमान में योग्य, दक्ष, कर्मठ और समर्पित अधिकारियों के चयन पर बहुत जोर देता है। चयन के उपरान्त ऐसे अधिकारियों को वह प्रशिक्षण देने की सिफारिश करता है। ऐसे अधिकारियों के लिये वेबर एक निश्चित वेतन और एक निश्चित आय तक सेवा की गारन्टी देना चाहता है। अधिकारी अनिश्चय की स्थिति में ना रहे। आर्थिक दृष्टि से तनाव ना रहे। सेवा-शर्तों के कारण वह निराशा और हताशा की स्थिति में ना जाये, प्रोन्नति के उसे पूरे अवसर मिलें। लेकिन साथ ही कठोर अनुशासन और नियंत्रण का माहौल हो। यहाँ वेबर का दावा है कि एकल नौकरशाही संगठन (Monocrotic Bureaucratic) तकनीकी दृष्टि से सर्वाधिक निपुणता की गारन्टी देता है।

5.9 वेबरवाद की आलोचना

वेबर की नौकरशाही के प्रतिमान की प्रशंसा तो बहुत हुई है, किन्तु उसके आलोचक भी कम नहीं हैं। आलोचनाओं पर ध्यान देने से पहले हमें वेबरवादी प्रतिमानों से सम्बन्धित तीनों बातों पर ध्यान देना होगा: पहला- प्रतिमान की तार्किकता दूसरा- प्रतिमान की उपयुक्तता तथा तीसरा- प्रतिमान से प्राप्त अधिकतम क्षमता या कार्य कुशलता।

अब जहाँ तक पहली बात है, इस पर अनेक विद्वानों ने उंगली उठाई है। राबर्ट मर्टन का कहना है कि वेबर का विधिक-तर्किक प्रतिमान तर्कसंगत नहीं है। यह प्रतिमान अनेक अनचाहे परिणामों को पैदा करता है। उदाहरण के लिये पदसोपानीय संरचना और उससे सम्बन्धित नियम (जिनको वेबर तर्कसंगत मानता है) ऐसे अनैच्छिक परिणाम दे सकते हैं जो लक्ष्य की प्राप्ति में बांधा बन सकते हैं। विलम्ब और मनोवैज्ञानिक तनाव ऐसे दुष्परिणाम हैं। मर्टन नौकरशाही को अक्षमता की संज्ञा देता है।

जहाँ तक वेबर के प्रतिमान की दक्षता और उपयुक्तता का सवाल है, मर्टन का तर्क है कि एक युवा और ओजस्वी या उत्साही स्नातक बड़े जोश के साथ नौकरशाही में प्रवेश करता है। लेकिन नौकरशाही का चरित्र ऐसा है कि कुछ ही समय में ही नौकरशाही उस युवा अधिकारी को नौकरशाह बना देती है। अर्थात् निष्क्रिय, लापरवाह, लकीर का फकीर, नियमों का कीड़ा, विलम्बकारी और या तो अनुत्तरदायी या फिर अत्यन्त सतर्क। काम की नहीं केवल अपने अस्तित्व को परवाह करने वाला। मर्टन के अनुसार प्रशिक्षण अधिकारी को सक्षम नहीं अक्षम बना देती है। नौकरशाही, जिसकी वकालत वेबर ने की है, मर्टन की दृष्टि में 'अक्षमता का प्रशिक्षण स्थल' है।

अन्य विद्वानों ने भी वेबरवाद की आलोचना की है। जिसका सार है-

1. वेबर की आदर्श प्रकार की नौकरशाही में आन्तरिक विरोधाभास है। प्रशासक से दक्षता की आशा करना और दूसरी ओर उसे आदेश देने का अधिकार देना अर्न्तविरोध पैदा करता है। फिर अधीनस्थ किस का अनुपालन करे? तकनीकी उच्चतर का या अधिकार सम्पन्न अधिकारी का? पार्सन्स ने यह प्रश्न उठाया है।

2. वेबर का दूसरा आलोचक है एलविन गउल्डनर। उसका कहना है कि प्रशासकों का रूख नियमों के प्रति कैसा होता है। अर्थात् वे नियमों को अपने ऊपर थोपा हुआ समझते हैं या वे नियमों को अनिवार्य समझकर अपना मार्गदर्शक समझते हैं। वेबर अपने सिद्धान्त में इन प्रश्नों को उत्तर नहीं देता है।
3. प्रशासकों पर पर्यावरण और परिस्थितियों का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। वे तथ्य संगठन के आचरण को परिस्थितियों के अनुसार ढालते हैं। वेबर इस तथ्य की अनदेखी करता है।
4. रडौल्फ का तर्क यह है कि प्रशासन ना तो एक तर्कसंगत मशीन है और ना ही अधिकारी मात्र है, तकनीकी प्रकार्यात्मक व्यक्ति (कार्य करने वाला व्यक्ति) है जैसा कि वेबर ने माना है। प्रशासन में भावनाऐं भी उतनी अहम भूमिका अदा करती हैं, जितने नियम।
5. वेबर पर यह भी आरोप है कि निर्णय लेने के मामले में अधिकारियों के व्यक्तित्व और आचरण को वह महत्व नहीं देता है। सच यह है कि सामान्य सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों का गहरा प्रभाव प्रशासकों के आचरण और निर्णय शक्ति पर पड़ता है।
6. विभिन्न स्थानों और समयों में वेबरवादी प्रतिमान को प्रशासन पर लागू नहीं किया जा सकता है। पीटर ब्लाउ के अनुसार वेबर के तर्कसंगत प्रशासन पर पुनः विचार करना चाहिए। परिवर्तित परिस्थितियों में संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति नौकरशाह के बदलते हुये स्वरूपों पर निर्भर है, जिसको वेबर महत्व नहीं देता है।
7. वेबर निपुणता को बहुत महत्व देता है, लेकिन ब्लाउ का मानना है कि मात्र नियमों के अनुरूप काम करके निपुणता नहीं आ सकती। निपुणता तभी सम्भव है, जब प्रशासक संगठन के लक्ष्य को बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार पूरा करने का प्रयास करे तथा अपने आचरण को भी परिस्थितियों के अनुसार ढाले।
8. वेबर पर एक आरोप यह है कि उसकी विधिक तर्कसंगत सत्ता एकाधिकारवाद को बढावा देती है। प्रायःआदेश देने वाले अधिकारी स्वयं को अपरिहार्य समझने लगते हैं, यह मनोवृत्ति एकाधिकारवाद को जन्म देती है।

संक्षेप में वेबर के प्रतिमान की आलोचनाओं को तीन बिन्दुओं पर समेटा जा सकता है, पहला- वेबरवादी प्रतिमान में आन्तरिक विरोधाभास है, दूसरा- तर्कसंगत नौकरशाह को सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। तीसरा- शब्द 'आदर्श प्रकार' (Ideal type) स्वयं में उलझे हुये शब्द है। वह आदर्श ही नहीं कहता, उसमें प्रकार भी लगाकर गुमराह करता है। दूसरे जो आदर्श रूस के लिये है, वह जरूरी नहीं कि अमरीका के लिये भी हो।

5.10 समालोचना

नौकरशाही से सम्बन्धित मैक्स वेबर के दृष्टिकाण को आपने समझ लिया होगा। इस दृष्टिकोण की खुलकर आलोचना हुई जो हमने आप को समझाने का प्रयास किया है। वेबर के समालोचकों का तर्क है कि अनुभावात्मक आधार पर वेबरवादी नौकरशाही की सार्थकता नहीं है। यह आधुनिक प्रशासन में कही भी फिट नहीं बैठती है। लेकिन यहाँ एक बात याद रखना है कि कोई भी चिन्तक अपने समाज के परिवेश से प्रभावित होता है। उसके विचारों में उसके अपने देश की परिस्थितियों या संकटों की झलक होती है। वेबर ने जो कुछ लिखा उसमें तत्कालीन जर्मन परिस्थितियों की अभिव्यक्ति है। वह आने वाली भावी परिस्थितियों या परिवर्तनों से बेखबर था। वह उनके बारे में क्यों और क्या लिखता? उसके समय में पारम्परिक और करिश्माई सत्ता या संगठन का बोलबाला

था। उसने विधिक-तर्कसंगत प्रतिमान का विचार रखकर यह बताने का प्रयास किया कि उसका आदर्श प्रकार का प्रतिमान दूसरे प्रतिमानों से श्रेष्ठ है और उसमें स्थायित्व है।

यदि वेबर यह दावा करता है कि उसका विधिक-तर्कसंगत प्रतिमान दक्ष अधिकारियों के साथ अधिकतम क्षमता प्राप्त कर सकता है, तब इसमें दोष क्या है। यह एक सामान्य वक्तव्य है जो आधुनिक समय में भी लागू होता है।

मैक्स वेबर औपचारिकतावाद पर अधिक बल देता है। यहाँ भी वेबर गलत नहीं है। आज प्रबन्धन की तकनीकों का विकास हुआ है और प्रशासन को वैज्ञानिकता मिली है। इसलिये औपचारिकतावाद आधुनिक प्रशासन की विशेषता बन गई है। क्या आज नौकरशाही प्रशासन से पीछा छुड़ाया जा सकता है? वेबर का उत्तर है कभी नहीं। जो समाज एक बार नौकरशाही के चंगुल में फंस गया, वह उससे निकल नहीं सकता।

आधुनिक समाजों ने वेबरवादी नौकरशाही के प्रतिमान को अपनाया हुआ है। इसमें बहुत कुछ सकारात्मक है तो कुछ नकारात्मक भी। चयन का आधार योग्यता, दक्षता, नियम और प्रशिक्षण, ये सकारात्मक विशेषताऐं हैं। पदसोपान नियम, व्यवस्था, तकनीकी का क्षेत्र, लिखित दस्तावेज इत्यादि नकारात्मक विशेषताऐं है। लेकिन सकारात्मकता और नकारात्मकता में तालमेल होना वेबर के प्रतिमान की विशेषता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. मैक्स वेबर को किस शब्द का पर्यायवाची कहा गया है?
   क. वैज्ञानिक प्रबन्धन ख. लोक प्रशासन ग. नौकरशाही घ. नियोजन
2. नौकरशाही (ब्यूरोक्रेसी) शब्द का सबसे पहले प्रयोग किया?
   क. मैक्स वेबर ने ख. कार्ल फ्रीडरिच ने ग. गुलिक एण्ड उर्विक ने घ. डी गोरने ने
3. 'दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड इकोनामिक आरगनाईजेशन' का लेखक है?
   क. मैक्स वेबर ख. राबर्ट मर्टन ग. टैलकॉट पारसन्स घ. पीटर ब्लाउ
4. वेबर द्वारा तैयार किये गये नौकरशाही के प्रतिमान का सबसे बड़ा आलोचक था?
   क. फ्रेडरिक टेलर ख. टेलकाट पारसन्स ग. उर्विक घ. हेनरी फेयोल
5. वेबरवादी प्रतिमान की निम्न में से कौन सी विशेषता नहीं है?
   क. व्यैक्तिक विहीन व्यवस्था ख. प्रकार्यात्मक फोरमैनशिप
   ग. पदसोपान घ. लिखित दस्तावेज
6. मैक्स वेबर ने तर्कसंगत-विधिक नौकरशाही का विचार रखते समय ध्यान में रखा?
   क. इग्लैण्ड की परिस्थितियों को ख. विश्व की परिस्थितियों को
   ग. जर्मनी की परिस्थितियों को घ. अमेरिकी की परिस्थितियों को
7. वेबर समर्थक था?
   क. पारम्परिक सत्ता का ख. करिश्माई सत्ता का
   ग. विधिक सत्ता का घ. विधिक-तार्किक सत्ता का

5.11 सारांश

नौकरशाही के अध्ययन में मैक्स वेबर ने एक अहम भूमिका अदा की है। उसके योगदान को संक्षेप में इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. वेबर ने प्रशासन को सत्ता का क्रियान्वयन कहा है। वह व्यवस्था जिसमें अधिकारियों का समूह अपनी योग्यता, दक्षता और स्थिति (पद) के आधार पर सत्ता का निष्पादन करे, उसे नौकरशाही कहते हैं।

2. वेबर ने विधिक सत्ता को तर्कसंगत कहा है और उसको विधिक-तार्किक कहा है।
3. वेबर ने विधिक-तार्किक सत्ता के संस्थागत स्वरूप को नौकरशाही कहा है।
4. वेबर की विधिक-तार्किक सत्ता को वेबरवादी प्रतिमान कहा जाता है।
5. विधिक-तार्किक नौकरशाही को वैधता- वैयक्तिक विहीन व्यवस्था, नियमों, निपुणता के क्षेत्र, लिखित अभिलेखों, तकनीकी दृष्टि से योग्य व्यक्तियों से प्राप्त होती है।
6. नौकरशाही के वेबरवादी प्रतिमान की आलोचनाओं का आधार तीन मुद्दे हैं- तर्कसंगतता जिसको आलोचक एक मिथ्या मानते हैं, समय और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार ना होना और आधुनिकतम कार्य क्षमता की मात्र परिकल्पना करना।
7. वेबरवादी प्रतिमान के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू हैं।
8. वेबरवादी प्रतिमान की सार्थकता आज भी बनी हुई है। आज की नौकरशाही इसी प्रतिमान पर टिकी हुई है। यह कहा जा सकता है कि आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था मैक्स वेबर की ऋणी है।

5.12 शब्दावली

वैधता- किसी कृत या संस्था को विधिसम्मत बनाना। वैधता एक आधार है जिसके द्वारा बल या सत्ता का प्रयोग होता है। चुनाव संसद को वैधता प्रदान करते हैं। जनता चुनावों को वैधता प्रदान करती है। संविधान जनता के मताधिकार को वैधता प्रदान करता है। वैधता की अन्तिम कुंजी जनता के हाथ में होती है। वैधता एक मोहर है, जिसको लगाकर व्यक्ति या संस्था अपने कृत के औचित्य को सिद्ध करती है।

वैयक्तिक विहीन व्यवस्था- जिस तरह कानून का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता है और उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से स्वार्थ अथवा भावनात्मकता का कोई पुट नहीं होता है। इसी तरह का चरित्र यदि व्यवस्था का भी हो तो उसे वैयक्तिक विहीन व्यवस्था कहा जायेगा। इसका अर्थ है- सत्ता का केन्द्र व्यक्ति ना होकर व्यवस्था है। जहाँ पद, पद की शक्ति या अधिकार और स्थिति स्थायी होती है, व्यवस्था बनी रहती है, व्यक्ति आते-जाते रहते हैं।

करिश्माई- इसका अर्थ है दैवी उपहार या प्रतिभा। वह क्षमता जिसके माध्यम से करिश्माई व्यक्ति अपने अनुयाइयों को प्रभावित करता है या प्रोत्साहित करता है। अक्सर ऐसा व्यक्ति आध्यात्मिकता सम्पन्न होता है, लेकिन यदि कोई सांसारिक वयक्ति(राजनेता) सत्ता के लिये अपनी प्रतिभा या क्षमता या चतुराई का प्रयोग करके अपने अनुयाइयों को लुभाता है तो वह भी करिश्माई व्यक्ति कहलाया जा सकता है। वेबर का इशारा इसी प्रकार की करिश्माई सत्ता की और है।

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग, **2.** घ, **3.** क, **4.** ख, **5.** ख, **6.** ग, **7.** घ

5.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एण्ड अवस्थी: लोक प्रशासन के सिद्धान्त, लक्ष्मी नारायण, आगरा।
2. अवस्थी, ऐ0 ऐ0: पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मी नारायण, आगरा।
3. मैक्स वेबर: दि थ्योरी ऑफ सोशल एण्ड एकोनामिक आर्गनाइजेशन, न्यूयार्क, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. सी0 लक्षमन्ना: ऐ0 वी0 सत्यनारायण राओः लेख, मैक्स वेबर, ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिन्कर्स, सम्पादन, डॉ0 रविन्द्र प्रसाद, वी0ए0 प्रसाद।

5.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 अशोक कुमार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।
2. प्रशासनिक विचारक, आर0 पी0 जोशी एवं अंजु पारीक, रावत पब्लिकेशन।

5.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सत्ता और वैधता का, वेबर के दृटिकोण में क्या सम्बन्ध है?
2. वेबर ने नौकरशाही की क्या विशेषताऐं बताई हैं?
3. वेबर द्वारा तैयार किए गये नौकरशाही के प्रतिमान की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 6 कार्ल मार्क्स

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 कार्ल मार्क्स- एक परिचय
6.3 मार्क्स का दर्शन और प्रशासन
6.4 नौकरशाही के स्रोत और मार्क्सवाद
6.5 नौकरशाही: शोषण का एक विचार
6.6 हीगेल के नौकरशाही पर विचार
6.7 मार्क्स द्वारा हीगेल को नकारना
6.8 नौकरशाही की परजीवी भूमिका
6.9 नौकरशाह का निजी लक्ष्य
6.10 रहस्यमय नौकरशाही
6.11 नौकरशाही की विशेषताऐं
    6.11.1 श्रम विभाजन
    6.11.2 पदसोपानियता
    6.11.3 भर्ती
    6.11.4 नियम
6.12 अलगाववाद का सिद्धान्त
    6.12.1 स्वतंत्रता की क्षति
    6.12.2 सृजनता की क्षति
    6.12.3 मानवीयता की क्षति
    6.12.4 नैतिकता की क्षति
6.13 वर्ग और नौकरशाही
6.14 नौकरशाही से सर्वहारा का अलगाव
    6.14.1 नौकरशाही का विलुप्त होना
    6.14.2 संक्रमण काल में नौकरशाही
6.15 मूल्यांकन
6.16 सारांश
6.17 शब्दावली
6.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.20 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.21 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

एक दार्शनिक और समाजशास्त्री, जिसके विचारों ने 20वीं सदी में उथल-पुथल मचा दी, उसका नाम कार्ल मार्क्स है। साधारणतया यह समझा जाता है कि मार्क्स साम्यवादी विचारधारा का प्रर्वतक था, लेकिन वास्तविकता यह भी है कि उसने प्रत्येक समाज में विशिष्ट प्रशासकीय व्यवस्था को जिसकी अभिव्यक्ति नौकरशाही करती है, समाज के शोषण का स्रोत माना है। इस तरह मार्क्स ना केवल एक दार्शनिक है, वह एक ऐसा प्रशासनिक चिंतक है, जिसने राज्य को वर्ग-संघर्ष में कमजोर वर्ग को कुचलने का एक साधन और नौकरशाही को राज्य के लक्ष्य की प्रगति का एक उपकरण माना। एक ऐसा उपकरण जो रहस्यमयी है, जिसकी तकनीकें गोपनीय हैं, जो अलगाववाद को जन्म देता है। जिसके कारण स्वतंत्रता, रचनात्मकता, मानवीयता और नैतिकता की क्षति होती है। मार्क्स का दावा है कि पूँजीवादी व्यवस्था में समाजवादी क्रान्ति के बाद संक्रातिकाल में सर्वहारा अन्ततः राज्य और नौकरशाही की समाप्ति की प्रक्रिया आरम्भ करेगा।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों के आधार को समझ पायेंगे।
- प्रशासन के सम्बन्ध में मार्क्स के विचारों को जान पायेंगे।
- नौकरशाही के सम्बन्ध में मार्क्स के दृष्टिकोण को समझ पायेंगे।
- नौकरशाही के चरित्र, भूमिका और विशेषताओं के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- नौकरशाही और अलगाववाद के सिद्धान्त को समझ पायेंगे।
- संक्रांतिकाल में सर्वहारा और नौकरशाही के सम्बन्ध को जान पायेंगे।

6.2 कार्ल मार्क्स- एक परिचय

20वीं शताब्दी को यदि किसी चिन्तक ने सर्वाधिक प्रभावित करके आधुनिक विश्व को विचारात्मक आधार पर विभाजित किया है तो नि:संदेह वह कार्ल हीनरिच मार्क्स है। आमतौर पर मार्क्स को साम्यवादी अथवा मार्क्सवादी विचारधारा का व्याख्याता माना जाता है। यह सच है लेकिन सच यह भी है कि वह आधुनिक सामाजिक विज्ञानों का महानतम वास्तुकार है। उसकी छाप चिन्तन, दर्शन, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिक सिद्धान्त और इतिहास पर समान रूप से देखी जा सकती है।

आप प्रश्न करोगे कि मार्क्स का सम्बन्ध प्रशासन से क्या था? प्रशासनिक विचारकों के अध्ययन से आप को पता लगा होगा कि संगठन उनके प्रशासनिक अध्ययन की बुनियादी इकाई है। मार्क्स के सम्पूर्ण दर्शन का सार इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या में सिमटा हुआ है। ऐतिहासिक भौतिकवाद की अवधारणा के माध्यम से उसने समस्त सामाजिक विज्ञानों को समाज के एक सूत्री विज्ञान में एकबद्ध करने का प्रयास किया है। उसके अनुसार संगठन, समाज के अस्तित्व की बुनियादी इकाई है। राज्य, कानून, धर्म, विचारधारा, कला, नैतिकता सब संगठन पर टिके हुए हैं। इस तरह हम देखेंगे कि संगठनों का विश्लेषण करके किस तरह उसने स्वयं को प्रशासन से जोड़ लिया।

कार्ल मार्क्स (1818-1883) युवावस्था से ही क्रांतिकारी था। इसलिए उसने जब पेरिस को अपनी क्रांतिकारी गतिविधियों का केन्द्र बनाना चाहा तो कुछ ही समय में उसे षड़यंत्रकारी घोषित करके फ्रान्स से निकाल बाहर कर दिया गया। उसने लंदन में शरण ली और अंतिम समय तक वहीं रहा। लंदन में ऐन्जेल्स उसका विचारात्मक मित्र

बन गया और ऐजेल्स से मिलकर उसने अनेक विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की जिनमें 'दि होली फैमिली' 'दि कम्यूनिस्ट मैनिफैस्टो' और 'दास कैपिटल' का प्रभाव आधुनिक युग पर गहरा पड़ा है।

6.3 मार्क्स का दर्शन और प्रशासन

प्रशासनिक चिन्तक के रूप में मार्क्स को समझाने के लिए मार्क्स के बुनियादी विचारों या दर्शन को समझाना अनिवार्य है।

पहला, मार्क्स 'पदार्थ'(matter) को विश्व के सम्पूर्ण घटनाक्रम का कारण मानता है। पदार्थ, भौतिक होता है। अत: उसने विश्व के इतिहास को भौतिक दृष्टि से देखा है। इसलिए उसने इतिहास की जो व्याख्या की है, उसे भौतिकवादी व्याख्या कहा गया है। भौतिक को आर्थिक भी कहा जा सकता है।

दूसरे, मार्क्स ने 'वर्ग-संघर्ष' का विचार रखा है। उसके अनुसार सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। यह वर्ग-संघर्ष समाजों के आन्तरिक अन्तर-द्वन्द्व का परिणाम होता है। उसके इस विचार को द्वन्दात्मक भौतिकवाद कहा जाता है। अर्थात पदार्थ में अन्तर-द्वन्द्व होता है। इस अन्तर-द्वन्द्व को दर्शाकर मार्क्स इस नतीजे पर पहुँचता है कि वर्ग-संघर्ष एक ऐसा घटनाक्रम है, जो तब से चल रहा है जब से दो वर्ग अस्तित्व में आये, एक काम करने वाले का दूसरा काम लेने वाले का। अर्थात एक शोषित वर्ग तथा दूसरा शोषणकर्ता का वर्ग।

अब यहाँ से मार्क्स का प्रशासनिक वर्ग (गुट) उभरता है। मार्क्स के अनुसार शोषणकर्ता-वर्ग जिस माध्यम से कामगार-वर्ग का शोषण करता है, वह माध्यम है राज्य। राज्य के अनेक आधार हैं- धर्म, पुलिस, नैतिक मूल्य। इनमें सबसे प्रभावशाली हथकण्डा है, नौकरशाही।

इस तरह मार्क्स के अनुसार वर्ग-संघर्ष में नौकरशाही एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। नौकरशाही प्रशासकीय संगठनों के संरचना का आधार है। अतः मार्क्स के प्रशासनिक विचार नौकरशाही के आस-पास घूमते हैं।

6.4 नौकरशाही के स्रोत और मार्क्सवाद

मार्क्सवाद का अर्थ है, मार्क्स और ऐन्जेल्स के विचार। दोनों ने मिलकर नौकरशाही पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। दोनों ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि नौकरशाही के चार स्रोत रहे हैं- धर्म, राज्य, वाणिज्य तथा प्रौद्योगिकी। जब धर्म पुजारियों का क्षेत्राधिकार था तो वे ही पदाधिकारी भी होते थे। रक्षा के अधिकार को पुजारियों या धर्म गुरूओं ने सैनिकों को हस्तान्तरित कर दिये थे। यह व्यवस्था नौकरशाही की सरलतम चरण थी और यह विशेषता पुरातन युग की थी।

पुरातन समाज जब सभ्य समाज में परिवर्तित होने लगा तो तत्कालीन समाज वर्गों में विभाजित हो गया। सत्ता का उदय हुआ और वह केन्द्रित हो गयी। सत्ता का अर्थ था, राज्य या रजवाड़ा। राज्य ने अपने उपकरणों (पुलिस, सैनिक) के माध्यम से सत्ता का प्रयोग करना आरम्भ किया। कानून बनाना, उन्हें लागू करना और कराधान का कार्य। इन कार्यों के लिये उन्हें अधिकारियों/कर्मचारियों की आवश्यकता हुई और इस तरह नौकरशाही को एक नया आयाम मिल गया।

समाज और आगे बढ़ा। आर्थिक गतिविधियों में तीव्रता आयी। व्यापार और वाणिज्य का विकास होने लगा। अब लेखा-जोखा तैयार करना, उसको बनाये रखना, आय-व्यय का ब्योरा तैयार करना और इन सबके लिये नियम बनाना, उनका क्रियान्वयन करना। अर्थात वाणिज्य से सम्बन्धित समस्त प्रक्रियाओं से गुजरना नये समाज की विशेषता हो गई। अतः नौकारशाही को अपने पांव पसारने का पूरा अवसर मिल गया। यह नौकरशाही का निजी स्वरूप था, जिसका आकार और कार्य-क्षेत्र सरकारी नौकरशाही से कहीं अधिक बन गया।

नौकरशाही का चौथा स्रोत प्रौद्योगिकी बनी। अधिकतम उत्पादन के लिये विकसित प्रौद्योगिकी एक अनिवार्य शर्त बन बयी। तकनीकों और प्रक्रियाओं का स्तरीय होना एक लक्ष्य बन गया। इसका अर्थ यह नहीं था कि मशीनों के विकास के साथ मनुष्य का महत्व कम हो गया। रूपरेखा तैयार करने, योजनाएँ बनाने, नियंत्रण करने, निरीक्षण करने और मशीनों को संचालित करने के लिये व्यक्तियों की आवश्यकता तो बनी ही रहती है। अतः प्रौद्योगिकी के दौर में भी नौकरशाही और शक्तिशाली हो जाती है। वह प्रौद्योगिकी पर नियंत्रण रखती है इसलिये उसे प्रौद्योगिकी का पूरा ज्ञान होता है। इस तरह आज ब्यूरोक्रेसी (नौकरशाही) टैक्नोक्रेसी (प्रौद्योगशाही) में बदल गयी है।

6.5 नौकरशाही: शोषण का एक उपकरण

मार्क्स ने इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के माध्यम से, आदिम युग से लेकर पूँजीवादी व्यवस्था तक नौकरशाही का समय के अनुसार विश्लेषण किया है। अब यहाँ आप प्रश्न कर सकते हो कि नौकरशाही का विश्लेषण करने का मार्क्स का उद्देश्य क्या था?

मार्क्स इस मूल धारणा के साथ इतिहास की व्याख्या करता है कि सभी समाजों का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है। विस्तार में ना जाकर हम यह समझायेंगे कि मार्क्स की दृष्टि में प्रत्येक समाज में वर्ग-सघर्ष दो वर्गों के मध्य होता है। एक कमजोर लेकिन संख्या में अधिक और दूसरा शक्तिशाली लेकिन संख्या में कम। शक्तिशाली वर्ग कमजोर वर्ग का शोषण करता है और उसके शोषण का उपकरण है- नौकरशाही।

मार्क्स स्वयं अपने अनुभव से इन नतीजों पर पहुँचा कि एक ओर (पूँजीवादी व्यवस्था में) सामाजिक वर्ग है और दूसरी ओर नौकरशाही, जो सामाजिक वर्गों या गुटों को अपना अधीनस्थ मानती है। पूँजीवादी व्यवस्था में नौकरशाही की जड़ें बड़ी गहरी होती हैं और वह शोषण का एक सतत् स्रोत होती है।

मार्क्स के अनुसार, राज्य ने वर्ग-संघर्ष में दमन की एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। राज्य के चार दमनकारी उपकरण हैं- धर्म, सेना, पुलिस और नौकरशाही। राज्य के कानूनों का इन चारों उपकरणों को संरक्षण प्राप्त होता है। शोषण की क्रिया में ये चारों संगठित हैं, लेकिन इनमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नौकरशाही की होती है। इसकी मानसिकता दमनकारी है। पूँजीवादी व्यवस्था में यह सत्ता पक्ष का और पूँजीपतियों का साथ देती है। यह राजनीति का एक अंग है और राजनीति की अभिव्यक्ति है।

मार्क्स, वेबर की तरह नौकरशाही पर कोई सिद्धान्त प्रतिपादित करना नहीं चाहता है। वह तो केवल यह बताना चाहता है कि नौकरशाही शोषणकर्ता का एक प्रभावशाली हथकण्डा है। वह राजनीतिक-वर्ग के हितों की रक्षा करता है। उसका चरित्र दमनकारी है। राज्य को नष्ट होना चाहिये, तब नौकरशाही स्वतः नष्ट हो जायेगी। मार्क्स ने अपने ग्रन्थ 'क्रीटीक ऑफ हीगेल्स फिलॉसफी आफ□ाइट' में लिखा 'नौकरशाही राजनीतिक अलगाव की संस्थागत प्रतिछाया है।' यह एक हित का समर्थन करती है। यह तभी समाप्त हो सकती है, जब सामान्य हित वास्तविक हो जाये।

6.6 हीगेल के नौकरशाही पर विचार

नौकरशाही के सन्दर्भ में मार्क्स, हीगेल से बहुत प्रभावित था। इसलिये उसने 'क्रीटिक ऑफ हीगेल्स फिलॉसफी' की रचना की। अतः अनिवार्य हो जाता है कि नौकरशाही पर हीगेल के विचारों को समझा जाये तो आप इस तरह समझिये कि-

हीगेल के अनुसार नौकरशाही मुख्य शासकीय संगठन है। राज्य विकास की अन्तिम कड़ी है। जैसे ही राज्य अस्तित्व में आता है, स्वतः प्रशासकीय गतिविधियां आरम्भ हो जाती हैं। राजा, नौकरशाह और रजवाड़ों के अधिकारी राजनीतिक अभिकर्ता (Actor) बन जाते हैं।

राज्य में तीन वर्ग होते हैं- कृषि वर्ग, व्यापारी वर्ग तथा सर्वजनीय वर्ग। तीनों वर्गों का सोचने का ढंग अलग होता है, अर्थात् अनुदारवादी, व्यक्तिवादी तथा सार्वजनिक। व्यवस्था के दो अंग होते हैं- नागरिक समाज और राज्य। पहला अंग विशिष्ट हितों का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा जनहित का। हीगेल के अनुसार नौकरशाही नागरिक समाज (Civil Society) और राज्य के मध्य एक कड़ी का काम करती है। नौकरशाही आम हितों की रक्षा करती है, इसलिये नौकरशाही का चरित्र सार्वभौमिक होता है। इससे आप देखेंगे कि हीगेल की दृष्टि में नौकरशाही एक अनिवार्य संस्था है जो सार्वजनिक हितों की पोषण है। सार्वजनिक हित नौकरशाही का लक्ष्य होता है।

हीगेल विनियमिकिय यांत्रिकी (Regulatory Mechanism) की बात करता है। इसका अर्थ यह है कि नौकरशाही एक व्यवस्था है। पदसोपानीय और विशिष्टीकरण इस व्यवस्था के ताने-बाने हैं। एक प्रकार की सम्बन्धात्मक व्यवस्था है। यहाँ जो दाखिल होता है, उसकी सोच वैसा ही बन जाती है। यह सोच है, सार्वजनिक हित और उन हितों का ज्ञान। आन्तरिक और बाहरी प्रभाव नौकरशाही की दिशा निश्चित करते हैं। व्यवस्था उनका एक निश्चित स्वभाव बना देती है। वे अपने कर्तव्यों को पहचानते हैं। बाहरी प्रभाव राजनीतिक व्यक्तियों से आता है। निचले स्तर पर कष्टदायक निवारण मागें आती हैं, यही विनियमिकीय यांत्रिकी है।

हीगेल नौकरशाही को अनिवार्य तो मानता है, लेकिन उसे बिल्कुल छूट देने का पक्षधर नहीं है। वह उस पर नियंत्रण रखकर सन्तुलन बनाये रखने की बात करता है। नौकरशाही राजनीतिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है और समाज और राज्य के मध्य समन्जस्य बैठाना उसका कर्तव्य है।

6.7 मार्क्स द्वारा हीगेल को नकारना

अभी आपको बताया गया है कि हीगेल नौकरशाही को सर्वजन हितों का प्रतिनिधि मानता है। मार्क्स ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया है। उसके अनुसार राज्य दो प्रकार के होते हैं, तर्क-संगत राज्य(Rational State) और शोषक राज्य। तर्क-संगत राज्य सामान्य हितों का रक्षक हो सकता है, लेकिन वर्तमान राज्य शोषण का प्रतीक है और नौकरशाही इस शोषण का उपकरण है। वह हीगेल के इस विचार से सहमत है कि एक सर्वजनीय वर्ग होता है। इस वर्ग को उसने 'सर्वहारा' वर्ग कहा है। लेकिन उसे दु:ख है कि नौकरशाही इस वर्ग के हितों के विरूद्ध काम करती है। इसके साथ ही मार्क्स ने खुलकर नौकरशाही के विरूद्ध लिखना प्रारम्भ किया।

सन् 1843 में मार्क्स ने नौकरशाही पर खुलकर हमला बोलना आरम्भ किया। पहला आक्रमण सरकारी तंत्र की मानसिकता पर था। उसने आरोप लगाया कि नौकरशाह जिस संसार में रहते हैं, वह यथार्थ के संसार से भिन्न है। मार्क्स ने समझाया कि किस तरह उसने उत्पादन सम्बन्धों को निश्चित किया। वह नौकरशाही की संरचना के विरूद्ध नहीं था, बल्कि उसके चरित्र और नियत के विरूद्ध था। उसने नौकरशाही की जो विशेषताऐं बताई वह इस तरह हैं-

1. नौकरशाही राज्य के भीतर एक बन्द समाज है।
2. नौकरशाही राज्य का एक उपकरण है।
3. राज्य वर्ग आधिपत्य का एक अंग है।
4. राज्य का उद्देश्य एक ऐसी व्यवस्था पैदा करना है कि एक वर्ग दूसरे वर्ग को कुचलता रहे।
5. नौकरशाही राज्य के इस लक्ष्य को पूरा करने का साधन है।

मार्क्स पर हीगेल का एक प्रभाव अवश्य पड़ा। वह यह कि यदि हीगेल नौकरशाही पर कुछ नहीं लिखता तो मार्क्स भी इस विषय को नहीं छूता। यह एक तरह से नकारात्मक प्रभाव था। वह राज्य को एक ऐसी संस्था मानता है जो दमन, अत्याचार और उत्पीड़न के लिए एक कानून व्यवस्था विकसित करती है और उसको कानूनी हैसियत प्रदान करती है। मार्क्स के अनुसार इस उत्पीड़न में जो सर्वहारा वर्ग झेलता है, नौकरशाही अहम भूमिका अदा करती है। लेकिन मार्क्स का दावा है, बल्कि उसकी भविष्यवाणी भी है कि जब वर्ग-विहीन समाज अस्तित्व में आयेगा तो

राज्य स्वतः विलुप्त हो जायेगा और नौकरशाही अर्थहीन हो जायेगी। परन्तु यह मार्क्स की मात्र एक कल्पना थी। उसने स्वयं स्वीकार किया कि नौकरशाही एक वास्तविकता है। यह प्रशासन की एक व्यवस्था है, जो उसमें लगे व्यक्तियों पर आधारित है।

6.8 नौकरशाही की परजीवी भूमिका

नौकरशाही की परजीवी भूमिका मार्क्स का एक यथार्थवादी दृष्टिकोण है। वह नौकरशाही को एक ऐसा 'जन्तु' मानता है, जो अपनी खुराक के लिए दूसरे जन्तु पर निर्भर रहता है। इस सम्बन्ध में उसका दृष्टिकोण क्या है? वह राजनीतिक व्यवस्था को समाज के लोगों की एक सम्पूर्ण उत्पादक गतिविधि मानता है। उसने 'कन्ट्रीब्यूशन टू दि क्रीटीक ऑफ पोलिटिकल इकोनॉमी' की प्रस्तावना में लिखा कि 'राज्य और कानून स्वायत्त(आटोनोम्स) नहीं हैं और ना ही वे मानव मस्तिष्क का परिणाम है। यह जीवन की भौतिक परिस्थितयाँ होती हैं, जिनसे राज्य और कानून जन्म लेते हैं।' उत्पादन पद्धति मानव के सामाजिक जीवन का आधार है। उत्पादन पद्धति में मानव जीवन की झलक होती है। जैसा वे उत्पादन करते हैं, वैसे वे बन जाते हैं।

व्यक्तियों का स्वरूप क्या है? मार्क्स के अनुसार वे वैसे नहीं हैं जैसे दिखाई पड़ते हैं। उनकी वास्तविकता कुछ और है। सामाजिक-वर्ग उत्पादन के सम्बन्ध निश्चित करते हैं। उत्पादन पद्धति के भीतर दो वर्ग होते हैं, एक वह जो उत्पादन के साधनों का स्वामी होता है, दूसरा वह जो साधन विहीन होता है। नौकरशाही की स्थिति सावयवी (Organic) या आंगिक नहीं है। उसका सीधा सम्बन्ध उत्पादन प्रक्रिया से नहीं है। वह 'परजीवी' है और उसका काम समाज के दबंग-वर्ग के हितों की रक्षा करना और उनकी हैसियत को बनाये रखना है। ऐसा करके वह स्वयं को जीवित रखती है।

6.9 नौकरशाह का निजी लक्ष्य

नौकरशाही के दो रूप होते हैं: पहला- एक संस्था का रूप, दूसरा- व्यक्तिक नौकरशाहों का रूप। पहले रूप को राज्य पोषित करता है। राज्य नौकरशाही की निजी सम्पत्ति है। लेकिन जहाँ तक व्यक्तिक नौकरशाह का सवाल है, वहाँ राज्य का ध्येय नौकरशाह का निजी लक्ष्य बन जाता है। वह उच्च पदों के लिए भागता है, प्रोन्नति पर प्रोन्नति चाहता है, यही उसका निजी अन्तिम लक्ष्य होता है।

अब भले ही नौकरशाही का संस्थागत हैसियत से कोई सामान्य लक्ष्य हो या व्यक्तिक रूप से निजी लक्ष्य, शोषण समाज का ही होता है। मार्क्स राज्य को परिवार और नागरिक समाज की तुलना में महत्व नहीं देता है। राज्य समाज के घटकों में समरसता और सामन्जस्य पैदा नहीं करता है। उसका चरित्र नैतिक नहीं है। वह समाज के घटकों की गुणात्मक भलाई नहीं चाहता है। 'दि जर्मन आइडियोलॉजी' नामक अपने ग्रन्थ में मार्क्स ने राज्य के उदय के कारणों पर प्रकाश डालते हुए लिखा कि 'उत्पादन की प्रत्येक पद्धति ने एक विशिष्ट राजनीतिक संगठन को जन्म दिया, जिसने दबंग वर्ग के हितों की रक्षा की।' राज्य एक ऐसी संस्था है, जिसमें व्यक्ति (राजनीतिक व्यक्ति, पूँजीपति, धर्मगुरू) अपने सामान्य हितों को आगे बढ़ाते हैं और मार्क्स के अनुसार नौकरशाही राज्य में शोषण के एक उपकरण का काम करती है। वह समाज की आवश्यकताओं, कष्टों और समस्याओं को इस तरह संचित करती है कि अन्ततः निजी हितों की पूर्ति हो सके। यह नौकरशाही का सबसे घिनौना कृत (कार्य) होता है। नौकरशाही आत्माविहीन होती है। वह समाज की आत्मा (भावना, संवेदना, नैतिकता) का शोषण करती है। संक्षेप में नौकरशाह व्यक्तिगत रूप से शोषण में भागीदार बनकर, प्रगति और प्रोन्नति की अपेक्षा करता है और सामूहिक रूप से वह विशिष्ट वर्ग के हितों की रक्षा करता है।

6.10 रहस्यमय नौकरशाही

मार्क्स, नौकरशाही की एक और रोचक विशेषता बताता है। मार्क्स के अनुसार 'नौकरशाही की सामान्य भावना है, गोपनीयता और रहस्य।' वह राज्य के मामलों को बाहरी लोगों से छिपा लेती है। उसमें खुलापन नहीं होता है। पारदर्शिता का तो सवाल ही नहीं उठता। वह जन-समाज से डरती है। वह सोचती है कि यदि समाज को पता लग गया (राजनीतिक सन्दर्भ में) तो यह रहस्य को धोखा देना होगा, यह गद्दारी होगी।

नौकरशाही के पीछे सत्ता होती है। सत्ता निरंकुशवाद को जन्म देती है। लोग नौकरशाही का आदर तो करते हैं, लेकिन डरकर। वह उसे पूजाभाव से देखते हैं, लेकिन सहमे रहते हैं। कारण नौकरशाही की रहस्यमयिता है। वह अलगाव पसंद है। नौकरशाही इस अलगाव और रहस्यमयिता को बनाये रखने का सतत् प्रयास करती है। आम लोग अलग-थलग पड़ जाते हैं। नौकरशाही यही चाहती है, ताकि उसकी परजीवी और दमनकारी प्रकृति का किसी को एहसास ना हो सके।

6.11 नौकरशाही की विशेषताऐं

मार्क्स ने विशेषताओं के आधार पर नौकरशाही को चार भागों में विभाजित किया है। श्रम विभाजन, पदसोपान, भर्ती और नियम। इन चार विशेषताओं के आधार पर उसने नौकरशाही की समीक्षा की है, जो इस प्रकार है-

6.11.1 श्रम विभाजन

मार्क्स के अनुसार, श्रम का विभाजन पूँजीवादी समाज के संगठन को पूरी तरह उत्पादकीय बना देता है, लेकिन मार्क्स की दृष्टि में मूल रूप से श्रम का विभाजन देखने को मिलता है। वह बौद्धिक और भौतिक गतिविधियों के माध्यम से क्रिया करते हैं। इस तरह इस श्रम विभाजन से कामगार पर उत्पादन का बोझ पड़ता है। लेकिन इस उत्पादकता का लाभ पूँजीपति को मिलता है और इस लाभ का एक भाग नौकरशाही को मिलता है। आश्चर्य यह है कि अधिक उत्पादकता कामगार को हानि पहुँचाती है। नवीन प्रोद्यौगिकी से उत्पादन बढ़ता है और लोग बेरोजगारी का शिकार होते हैं।

6.11.2 पदसोपानियता

नौकरशाही को अपने निजी हितों की पूर्ति से कोई नहीं रोक सकता, ना आन्तरिक प्रभाव ना बाहरी प्रभाव। व्यक्तिगत तौर पर नौकरशाही को प्रोन्नति चाहिये। मार्क्स नौकरशाही की पदसोपानियता को ज्ञान की पदसोपानियता कहता है। यह व्यवस्था ऐसी है कि उच्चतम बिन्दु (शिखर) वाला निचले वृत्तों (सरकिल) को उच्चतम वृत्त में पहुँचने का ज्ञान देता हैं, जबकि निचले वृत उच्चतर को बनाये रखने का गुण सिखाता है। मार्क्स के अनुसार नौकरशाही एक वृत्त है, जिससे कोई नहीं बच सकता। मार्क्स यहाँ यह कहना चाहता है कि पदसोपानियता मात्र श्रेणीबद्धता नहीं है। यह एक ऐसा वृत है, जिसमें ऊपर से लेकर नीचे तक सब फंसे हुये हैं। सबके पास ज्ञान है, सब परजीवी हैं। सब एक-दूसरे को धोखा देते हैं। लक्ष्य अपने निजी हितों की पूर्ति (करियर) है।

6.11.3 भर्ती

क्या उदार शिक्षा, सेवीवर्ग (नौकरशाह) को मानवीय बना सकती है? मार्क्स का कहना है, कभी नहीं। वास्तविकता यह है कि एक नौकरशाह के कार्य का यांत्रिकी चरित्र और उस पर कार्यालय के दबाव उसको अमानवीय बना देते हैं।

मार्क्स के अनुसार प्रतियोगितात्मक परीक्षा के माध्यम से नौकरशाही की भर्ती अनुचित है। नौकरशाह में एक राजनेता के गुण होने चाहिए, जिनका आंकलन परीक्षा से नहीं किया जा सकता। क्या महान शासकों ने कोइ परीक्षा

पास की? परीक्षा से केवल उच्च-वर्ग के लोगों को लाभ मिलता है, क्योंकि वे उच्च शिक्षा प्राप्त होते हैं। उच्च शिक्षा उनको वे मूल्य और आचरण सिखाती है जो पूँजीवाद के लिये सहायक होते हैं। उच्च शिक्षा धनी और निर्धन की खाई को चौड़ा करती है। नौकरशाह आम लोगों से मेल नहीं खाते। उन्हें कामगार के शोषण का कोई दर्द नहीं होता है।

6.11.4 नियम

नौकरशाह नियमों के गुलाम होते हैं। नियम उनकी मौलिक सोच का ह्रास कर देते हैं। वे परिस्थितियों से बंधे हुए होते हैं। निष्क्रिय अनुपालन उनकी प्रकृति होती है। वह नियमों के पालन को साध्य मान लेते हैं। वे निष्ठुर हो जाते हैं। उनकी दृष्टि में मनुष्यों से अधिक नियमों का महत्व होता है। यह स्थिति मार्क्स की दृष्टि में घातक है।

6.12 अलगाववाद का सिद्धान्त

मार्क्स के अध्ययनकर्ताओं को 20वीं शताब्दी में पता लगा कि उसने सन् 1844 में एक और सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, जिसे 'अलगाववाद का सिद्धान्त' कहा गया। इस सिद्धान्त के आधार पर मार्क्स यह समझाना चाहता है कि किस तरह पूँजीवादी औद्योगिक उत्पादन व्यवस्था में लोग स्वयं-अपने में और आपस में अजनबी बन जाते हैं। विद्वानों का विचार है कि मार्क्स का अलगाववाद का सिद्धान्त (Theory of Elienation) उसके पूँजीवादी व्यवस्था के विश्लेषण का आधार है।

मार्क्स के सिद्धान्त का सार यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिक पहले अपने काम पर से नियंत्रण खो देते है; तत्पश्चात वे अपने जीवित रहने के अधिकार पर से अपना नियंत्रण खो देते हैं। श्रमिकों की अपनी कोई स्वायत्ता नहीं होती। वे अपनी आजादी खो देते हैं। उनके कार्य पर उनका स्वामित्व नहीं रहता है। वह एक मशीन (उत्पादन का उपकरण) का मात्र एक गुटका बन जाता है। श्रमिक नीरस काम करते हैं, उत्पादन की प्रक्रिया पर उनका नियंत्रण नहीं होता है, उत्पादन पर उनका स्वामित्व नहीं होता है और उन सम्बन्धों पर भी उनका नियंत्रण नहीं होता है जो उनके आपस में होते हैं।

नतीजा, वे अपनी मानवीय प्रकृति से अलग हो जाते हैं। आजादी खो देते हैं। वे स्वयं में अजनबी बन जाते हैं, उनमें अलगाव की प्रवृत्ति पनपती है, अपने अस्तित्व से अलगाव। इन परिस्थितियों में वे मानव प्राणी नहीं रह सकते। इस अलगाववाद को पूँजीवादी व्यवस्था में नौकरशाही और बदत्तर बना देती है।

मार्क्स के अनुसार अलगाववाद के चार मुख्य पहलू हैं- स्वतंत्रता खो देना, रचनात्मकता खो देना, मानवीयता खो देना तथा नैतिकता खो देना। यहाँ खो देने का अर्थ क्षति से है। इन चारों पहलुओं की व्याख्या इस प्रकार है-

6.12.1 स्वतंत्रता की क्षति

शोषण की स्थिति में अलगाव पनपता है। संगठन के सभी सदस्य अलगाव के शिकार हो जाते हैं। शोषणकर्ता भी और शोषित भी। दबाव श्रमिकों को नौकरी के लिये मजबूर करते हैं। वे स्वतंत्र होकर अपना पेशा नहीं चुन सकते। नौकरी करते ही वे प्रबन्धन के निरंकुश आदेश के नीचे दब जाते हैं। वे अपनी स्वतंत्रता खो देते हैं। प्रबन्धक भी अलगाववाद का शिकार होते हैं, क्योंकि वे भी नौकर ही होते हैं। वह अधिक से अधिक मुनाफे के पीछे भागता है। वह भी अपनी इच्छानुसार जीवन नहीं गुजारता है। कला, साहित्य, संगीत, आमोद-प्रमोद, सैर-सपाटा सब उससे दूर रहते हैं।

6.12.2 सृजनता की क्षति

नौकरशाही एक निर्जीव मानसिकता है। वह व्यवस्था के सदस्यों की रचनात्मकता या सृजनता में हस्तक्षेप करती है। हस्तक्षेप के कारण श्रमिक या कर्मचारी में नीरसता आ जाती है। उत्पादन घटने लगता है। असन्ष्ट कामगार अपनी

रचनात्मकता की क्षमता खो देता है। वह स्वयं को एक उपकरण समझता है। प्रशासक भी सृजनता को खो देता है। उसकी कोई पहचान नहीं होती है। वह गुमनामी के गर्त में डूब जाता है, क्योंकि वह जो कुछ कहता है वह सामूहिक प्रयास का नतीजा होता है। नीति वह बनाता है, लेकिन श्रेय राजनेता को मिलता है। इसलिये वह निराश रहता है और अपनी रचनात्मकता को खो देता है।

6.12.3 मानवीयता की क्षति

श्रमिकों का लक्ष्य काम करना होता है, एक मशीन की तरह। परिणाम यह होता है कि वे अपनी मानवीयता खो देते है। श्रम-विभाजन के कारण श्रमिक नीति-निर्माण में भागीदार नहीं होते हैं। वे संगठन का लक्ष्य भी तय नहीं कर सकते। कार्यालय एक बड़ी मशीन बन जाता है। वहाँ भी कोई मानवीयता नहीं होती है। प्रशासक भी इसी मशीन का एक अंग है। मानवीय मूल्य नौकरशाही के लिये एक कोरी कल्पना होते हैं। मूल्यों की नौकरशाही में कोई भूमिका नहीं होती है।

6.12.4 नैतिकता की क्षति

मार्क्स के अनुसार जब स्वतंत्रता और मानवीयता क्षतिग्रस्त हो जाती है तो नैतिकता कहाँ रहती है। पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों से उनकी आजादी छीन लेना और उनको मात्र पशु समझना क्या नैतिक हो सकता है? सृजनता की क्षति से भी नैतिकता की क्षति होती है। पूँजीपति का केवल लाभ की ओर भागना और उसके लिये श्रमिकों का शोषण करना घोर अनैतिकता है। मार्क्स का दावा है कि नैतिकता के ह्रास में नौकरशाही भी भागीदार है। नौकरशाह अपनी पदोन्नति के लिये काम करता है।, क्या यह नैतिक है? मार्क्स पूछता है।

6.13 वर्ग और नौकरशाही

मैक्स वेबर ने नौकरशाही के औचित्य को तार्किकता के आधार पर स्वीकार किया है। वेबर को पढ़ने के बाद आपको पता लगा होगा कि वह नौकरशाही और तार्किकता को सिक्के के दो पहलू मानता है। वह नौकरशाही को सामाजिक योजना अथवा रचना का एक तार्किक उत्पादन मानता है। उसके अनुसार सामाजिक मांगों की पूर्ति और सामाजिक समस्याओं का समाधान तार्किकता के आधार पर किया जा सकता है और यह क्षमता केवल नौकरशाह में है।

मार्क्स, मैक्स वेबर के इन तर्कों से सहमत नहीं है। वह 'वर्ग' (वर्ग-संघर्ष) के दृष्टिकोण से नौकरशाही को देखता है। उसके अनुसार नौकरशाही का जन्म सामाजिक विभाजन के गर्भ में हुआ है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि मार्क्स नौकरशाही को एक वृत मानता है। जिससे कोई भी बच नहीं सकता। नौकरशाही एक श्रेणीबद्धता है। मार्क्स के अनुसार वास्तव में यह श्रेणीबद्धता ज्ञान की पदसोपानियता है। शिखर, नियमों और नीतियों से तल को ज्ञान देता है। शिखर, तल के सामान्य ज्ञान को देता है या फिर यूँ समझिये कि मुख्य कार्यपालक और दूसरे बड़े अधिकारी प्रत्येक स्तर पर अधीनस्थों को नीतियों, नियमों और निर्णयों से अवगत कराते हैं। जबकि अधीनस्थ मुख्य कार्यपालक को जनता की समस्याओं, परेशानियों और मांगों से अवगत कराते हैं।

6.14 नौकरशाही से सर्वहारा का अलगाव

सर्वहारा (मेहनतकश, मजदूर) पूँजीवादी व्यवस्था से आकार में एक बड़ा वर्ग है। नौकरशाही, दूसरा लेकिन एक छोटा वर्ग है। मार्क्स के अनुसार नौकरशाही अपनी प्रवृति से सर्वहारा (Proletariot) से अलग रहती है और सर्वहारा नौकरशाही से दूर रहता है। यह भौतिक और मानसिक द्वन्द्व के कारण होता है।

इस अलगाव के दो नतीजे निकलते हैं। पहला यह है कि राज्य के अन्त के साथ नौकरशाही भी धराशायी हो जाती है। मार्क्स के अनुसार सर्वहारा को चाहिए कि वह नौकरशाही की संस्था को स्वयं उखाड़ फैंके, ताकि राज्य स्वतः समाप्त हो जाये। ऐसा सर्वहारा कि क्रान्ति से हो सकता है। राज्य सर्वहारा के लिये किसी काम का नहीं है।

अलगाव का दूसरा नतीजा यह निकलता है कि राजनीतिक व्यवस्था को उखाड़ फैंकने के लिये उतनी हिंसा की आवश्यकता होती है, जितनी मजबूत नौकरशाही की पकड़ होती है। मार्क्स कहता है कि यूरोपीय नौकरशाही-तंत्र में सर्वहारा का काम नौकरशाही को अपने हित में प्रयोग करना नहीं, बल्कि नष्ट करना है। राज्य कैसे नष्ट होगा? मार्क्स कहता है-

6.14.1 नौकरशाही का विलुप्त होना

मार्क्स की दृष्टि में नौकरशाही-वर्ग समाज की विशेषता है। पूँजीवादी समाज राज्य का अन्तिम पड़ाव है। यहाँ सर्वहारा की क्रान्ति आवश्यगामी है। क्रान्ति के बाद जो समाज अस्तित्व में आयेगा उसे नौकरशाही की आवश्यकता नहीं होगी। पहले राज्य विलुप्त होगा। नई व्यवस्था में कार्यों (प्रशासन) की प्रकृति में परिवर्तन आयेगा। यह तभी सम्भव है कि जब सामान्य हित वास्तविक हित बन जायेंगे।

मार्क्स के अनुसार सर्वहारा क्रान्ति का लक्ष्य सर्वप्रथम वर्गों को समाप्त करना होता है। जब ऐसा हो जायेगा तो राज्य की शक्ति को कुचलना होगा। वैसे वर्ग-विहीन समाज में राज्य स्वतः ही विलुप्त हो जायेगा और सरकारी काम-काज का रूप बदल जायेगा। वे साधारण प्रशासकीय कार्यों में बदल जायेंगे।

मार्क्स यहाँ यह कहना चाहता है कि सर्वहारा की क्रान्ति के बाद पूँजीवादी राज्य और उसका उपकरण, नौकरशाही तो समाप्त हो जायेगी लेकिन उसके बाद सर्वाहारा राज्य अस्तित्व में आयेगा। केन्द्रीकरण नये राज्य की विशेषता होगी। सर्वहारा, बुर्जुआई (पूँजीपति, जमींदार तथा नौकरशाह) के हाथ से सत्ता छीन लेगा तथा नये राज्य में उत्पादन के समस्त साधनों को केन्द्रित कर देगा। 'प्रशासन नये राज्य में भी होगा लेकिन उसमें तुच्छ नौकरशाही की दरिन्दगी नहीं होगी।' राज्य के विलुप्त होने का अर्थ होगा, नौकरशाही का दम तोड़ना।

6.14.2 संक्रमण काल में नौकरशाही

पूँजीवादी राज्य और समाजवादी वर्ग-विहीन समाज के मध्य का काल(समय) मार्क्स की दृष्टि में संक्रमण या संक्राति काल (Transitional period) होगा। इस दौरान प्रशासकों के चरित्र और स्वभाव में आमूल परिवर्तन लाया जायेगा। सबसे पहले उन्हें सर्वहारा के नियंत्रण में लाना होगा। तत्पश्चात् वे पूरे समाज के नियंत्रण में होंगे।

मार्क्स ने अपने ग्रन्थ 'दि सिविल वार इन फ्रान्स' में संक्रान्ति काल का एक चित्रण प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार, स्थानीय सरकार का स्वरूप कम्यून होगा। चाहे वह केन्द्रीय प्रशासन हो या गांव, केन्द्रीय शासन के महत्वपूर्ण कार्यों को दबाया नहीं जायेगा, लेकिन अब उनका निर्वहन कम्यून करेगा। कम्यून के सदस्य पूर्णतया उत्तरदायी होंगे। संक्रान्तिकाल में श्रमिक अधिकारी होंगे। प्रशासकों का चरित्र रहस्यमयी नहीं होगा; वे परजीवी नहीं होंगे। वे बड़े वेतन पाने वाले चापलूस नहीं होंगे; वे दम्भी और घमण्डी नहीं होंगे। वे समाज के उत्तरदायी प्रतिनिधि होगें, क्यों कि वे जनता के निरीक्षण मे रहेंगे। उनसे आशा की जायेगी कि वे संक्रन्तिकाल को समाजवाद की ओर ले जाये।

इस तरह मार्क्स के वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार पूँजीवादी वर्ग में सर्वहारा की क्रान्ति होगी। क्रान्ति के बाद संक्रान्तिकाल आयेगा, वर्ग समाप्त होंगे, राज्य विलुप्त हो जायेगा, नौकरशाही धवस्त हो जायेगी, सर्वहारा की तानाशाही स्थापित होगी और अन्ततः समाजवाद के दर्शन होने लगेंगे।

6.15 मूल्यांकन

मार्क्स ने जिस दृष्टि से नौकरशाही का परीक्षण किया है उसका सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर असाधारण महत्व माना गया है। मार्क्स नौकरशाही को राज्य का एक अभिन्न अंग मानता है। मार्क्स से पहले नौकरशाही को एक अच्छी और कल्याणकारी संस्था माना जाता था। विशेष रूप से हीगेल ने नौकरशाही के औचित्य को प्रत्येक स्तर पर सिद्ध करने का प्रयास किया है। मार्क्स के लेखों के बाद नौकरशाही के बारे में विद्वानों का दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया। प्रसिद्ध विचारक 'अवीनेरी' ने तत्कालीन सामाजिक सत्ता की एक बिगड़ी हुई छाया को नौकरशाही कहा और 'हाल ड्रेपर' ने नौकरशाही को राज्य के स्वस्थ शरीर में एक ऐसा फोड़ा कहा, जिसे राज्य से प्रथक नहीं किया जा सकता है। मार्क्स इस संसार को बदलना चाहता था। यह लक्ष्य सर्वहारा के द्वारा पूरा किया जा सकता था। मार्क्स ने नौकरशाही का जो विश्लेषण किया है उसका राजनीतिक लक्ष्य था- राज्य के साथ नौकरशाही को भी धवस्त करना। मार्क्स हिंसा में विश्वास करता है और हिंसा के माध्यम से राज्य को उखाड़ फैंकने की वकालत करता है।

लेकिन यहाँ यह भी स्वीकार करना होगा कि मार्क्स ने नौकरशाही के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा, वह सत्यता के समीप तो था लेकिन वर्ग-विहीन समाज की स्थापना, राज्य का विलुप्तीकरण और नौकरशाही का ध्वस्तीकरण इतना सरल नहीं है, जितना मार्क्स समझता था।

अभ्यास प्रश्न-

1. मार्क्स की प्रसिद्ध पुस्तक नाम क्या है?
   क. कार्ल मार्क्स सेलेक्टेड राइटिंग्स ख. कम्यूनिस्ट मैनेफेस्टो
   ग. कैपिटलिज्म एण्ड माडरनिटी घ. इन्साइड ब्यूरोक्रेसी
2. 'क्रीटीक ऑफ हीगेल्स फिलासफी ऑफ राइट' का लेखक कौन है?
   क. मार्क्स ख. हीगेल ग. हाल ड्रेपर घ. कार्ल शां
3. कौन सा स्रोत नौकरशाही का नहीं है?
   क. धर्म ख. राज्य ग. वाणिज्य घ. सेना
4. 'दि जर्मन आइडियोलाजी' का लेखक है:
   क. हीगेल ख. ऐन्जेल्स ग. मार्क्स घ. ड्राकर
5. नौकरशाही के प्रश्न पर मार्क्स ने किसका विरोध किया?
   क. मैक्स वेबर का ख. फयोरबाख का
   ग. हीगेल का घ. ऐन्जेल्स का
6. मार्क्स की भविष्यवाणी है कि-
   क. राज्य विलुप्त हो जायेगा ख. समाज विलुप्त हो जायेगा
   ग. नौकरशाही का अस्तित्व बना रहेगा घ. सर्वहारा नष्ट हो जायेगा।

6.16 सारांश

1. विचारात्मक आधार पर आधुनिक समय को यदि किसी ने बदला है तो वह कार्ल मार्क्स है। वह एक क्रान्तिकारी दार्शनिक है और साम्यवादी क्रान्ति का अगुआ है।
2. मार्क्स ने नौकरशाही की प्रकृति का विश्लेषण, वर्ग और राज्य के सन्दर्भ में किया और उसे राज्य के भीतर एक बन्द समाज कहा।

3. मार्क्स ने नौकरशाही को राज्य द्वारा कमजोर वर्ग के शोषण का एक उपकरण बताया।
4. मार्क्स ने नौकरशाही को सामाजिक विभाजन का परिणाम बताया।
5. वर्ग-समाज में नौकरशाही पूँजीपतियों और राजनेताओं का पक्ष लेती है। मार्क्स की दृष्टि में नौकरशाही परजीवी होते हैं। उनका काम दबंग वर्गों की हैसियत और विशेषाधिकारों को बनाये रखना होता है।
6. मार्क्स के अनुसार, नौकरशाही जन-समूह के अलगाव का प्रतीक है। प्रशासन में पदसोपान और गोपनीयता की वह आलोचना करता है। पूँजीवादी प्रशासन शोषण और अयोग्यता का उपकरण है।
7. संक्रान्तिकाल में मार्क्स के अनुसार नौकरशाही सर्वहारा के नियंत्रण में होगी और उनको मजदूरों के बराबर मजदूरी मिलेगी।
8. यद्यपि मार्क्स स्वयं को सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में वैज्ञानिक मानता है, लेकिन अन्त में वह भी काल्पनिक बन जाता है। लोकतांत्रिक समाजों में नौकरशाही की भूमिका को नकारते हुए उसने जो भी कुछ लिखा है वह त्रुटिपूर्ण है।
9. फिर भी मार्क्स ने जिस तरह नौकरशाही का गहराई से विश्लेषण किया है, उससे प्रशासकीय व्यवस्था को समझाना सरल हो गया है।

6.17 शब्दावली

मार्क्सवाद- वे विचार या विश्वास जो मार्क्स और ऐन्जेल्स के लेखों पर आधारित हैं, मार्क्सवाद कहलाते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में सर्वहारा द्वारा क्रान्ति लाना, पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फैकना, राज्य का विलुप्त होना, नौकरशाही का ध्वस्त होना और समाजवादी समाज की स्थापना मार्क्सवाद का सार है।

सर्वहारा- कारखानों में काम करने वाले मजदूर जो औद्योगिक उत्पादन का महत्वपूर्ण स्रोत हैं और जिनका पूँजीपति और नौकरशाह शोषण करते हैं।

बुर्जुआई- वह वर्ग जिसका उत्पादन, उत्पादन के संसाधनों और पूँजी पर अधिपत्य होता है। यही वर्ग शोषण करता है और नौकरशाही को अपने हितों की रक्षा के लिये एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल करता है।

नौकरशाही का मुर्झाना- मार्क्स के अनुसार नौकरशाही-वर्ग समाज की देन है। यह राज्य के शोषण के लिये उपकरण है। जब सर्वहारा, क्रान्ति के माध्यम से पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फैकेगा और सर्वहारा की तानाशाही स्थापित हो जायेगी, तब एक वर्ग-विहीन समाज उदित होगा। राज्य विलुप्त हो जायेगा और नौकरशाही अपनी सामयिकता खो देगी। परिणाम यह होगा कि नौकरशाही मुर्झा जायेगी।

6.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, **2.** क, **3.** घ, **4.** ग, **5.** ग, **6.** क

6.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0 अधीनेरी: दि सोशल एण्ड पॉलिटिकल थॉट ऑफ कार्ल मार्क्स, लंदन केम्ब्रिज यूनिर्वस्टी प्रेस।
2. मैकलेलान: कार्ल मार्क्स, सेलेक्टेड राइटिंगस, आक्सफोर्ड यूनिर्वस्टी प्रेस।
3. प्रभाव कुमार दत्त: कार्ल मार्क्स, लेख (एडी) ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिकंर्स 1991, स्टर्लिंग पब्लिशर्स।
4. जाकिर हुसैन: राजनीतिक चिन्तक, प्रकाश पब्लिशर्स।

6.20 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 अशोक कुमार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।
2. प्रमुख प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 नरेन्द्र कुमार थोरी, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स।

6.21 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नौकरशाही पर मार्क्स के विचारों की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. मार्क्स की दृष्टि में नौकरशाही की विभिन्न समाजों में क्या भूमिका रही है?
3. मार्क्स के प्रशासनिक विचारों का आधार क्या है?

इकाई- 7 लूथर हैल्से गुलिक

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 लूथर गुलिक- जीवन परिचय
7.3 लूथर गुलिक के प्रमुख विचार एवं योगदान
    7.3.1 संगठन के सिद्धान्त
    7.3.2 पोस्टकार्ब का सिद्धान्त
    7.3.3 विभागीकरण के आधार
    7.3.4 मुख्यालय-क्षेत्रीय कार्यालय सम्बन्ध
7.4 लोक प्रशासन पर लूथर गुलिक के विचार
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन इतना ही पुराना है, जितना कि समाज व राज्य। परन्तु इसका सचेत शास्त्रीय अध्ययन आरम्भ हुए एक शताब्दी ही हुए हैं। राजनीति विज्ञान की तुलना में जहाँ प्लेटो का रिपब्लिक (Republic), अरस्तू की पालीटिक्स (Politics), हॉब्स का लेवियाथन (Leviathan) आदि महान ग्रन्थ हैं, वहीं लोक प्रशासन में ऐसा कोई प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। अध्ययन और चिन्तन के विषय के रूप में लोक प्रशासन का देर से आरम्भ होने का कारण वुडरो विल्सन ने बताने का प्रयास किया। लोक प्रशासन की प्रकृति एवं उसके लक्ष्यों के विषय और चिन्तन की परम्परा अपेक्षाकृत नयी है। इसका प्रादुर्भाव वुडरो विल्सन के लेख 'प्रशासन का अध्ययन' (The Study of administration) से हुआ। इस लेख में राजनीति और प्रशासन के मध्य एक स्पष्ट रेखा खींची गयी थी। इस विचारधारा के समर्थन में अन्य प्रशासनिक चिंतक भी जुड़ गये। जैसे विलोबी, एल0 डी0 वाइट, लूथर गुलिक, हेनरी फेयोल तथा उर्विक। लूथर गुलिक लोक प्रशासन को अनुशासन के रूप में विकसित एवम् लोकप्रिय बनाने वाले विचारक के रूप में जाने जाते हैं। गुलिक लोक प्रशासन में शास्त्रीय विचारक भी माने जाते हैं। 1937 में लिंडल उर्विक के साथ मिलकर उन्होंने 'Papers on the Science of Administration' (पेपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन) लिखी। यह लोक प्रशासन के विकास में एक महत्वपूर्ण कड़ी थी।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लूथर गुलिक के जीवन के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- गुलिक के प्रशासनिक विचारों से अवगत हो पायेंगे।

- लोक प्रशासन के क्षेत्र में उसके योगदान से अवगत हो पायेंगे।

7.2 लूथर गुलिक- जीवन परिचय

लूथर हैल्से गुलिक का जन्म सन् 1892 में जापान में हुआ था। 28 वर्ष की आयु में उसने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से 'डाक्टरेट' की उपाधि प्राप्त की। सन् 1939 में 'डाक्टर ऑफ लिटरेचर' (D.Lit.) की उपाधि से सुशोभित किये गये। शैक्षणिक कार्य में निरन्तर अध्ययन करते हुए सन् 1954 में पुन: 'डाक्टर ऑफ लॉ लेबर' की उपाधि प्राप्त की। गुलिक कई वर्षों तक विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर रहे। साथ ही साथ उन्होंने बहुत से राष्ट्रों के प्रशासनिक प्रबन्ध समिति के सलाहकार के रूप में काफी योगदान प्रदान किया।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय गुलिक राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद (National Defence Council) में कार्यरत थे। सन् 1920 से लगभग 40 वर्ष तक 'न्यूयार्क शहर शोध संस्थान' (New York City Research Institute) से जुड़े रहे। न्यूयार्क शहर के प्रशासक के पद पर सन् 1954 से लेकर 1956 तक कार्यरत थे। 'लोक प्रशासन संस्थान न्यूयार्क' के अध्यक्ष पद की भी गरिमा बनाये रखी और राष्ट्रपति के प्रशासनिक प्रबन्ध समिति के सदस्य के रूप में भी कार्य किया। इससे विदित होता है कि वे भिन्न-भिन्न समय पर विभिन्न संस्थानों एवं प्रशासनिक प्रबन्ध पर सदैव अपनी योग्यता एवं अनुभवों को बांटते रहे।

गुलिक लेखन शैली के क्षेत्र में भी धनी थे। इस क्षेत्र में उन्होंने महती योगदान प्रदान किया है।

1. पेपर्स आन द साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन
   Papers on the Science of Administration (1937)
2. एडमिनिस्ट्रेटिव रेफलेक्सन फ्राम वर्ल्ड वार- II
   Administrative Reflections from World War- II
3. मेट्रोपालीटन प्रबलम्स एण्ड अमेरिकन आइडियाज
   Metropolitan Problems and American Ideas.
4. मार्डन मैनेजमेन्ट फार द सिटी ऑफ न्यूयार्क
   Modern Management for the City of New York.

7.3 लूथर गुलिक के प्रमुख विचार एवम योगदान

संगठनों के प्रबन्ध की 'शास्त्रीय विचारधाराओं' को सर्वश्रेष्ठ तरीके से लोकप्रिय करने वाले लूथर गुलिक और लिंडल उर्विक हैं, जिनके कार्य इस विषय का परिचय कराते हैं। लूथर गुलिक औपचारिक संगठन के प्रबल समर्थक थे। इन्हें फ्रेडरिक विन्सलो टेलर और मैक्स वेबर के समान ही माना जाता है। गुलिक का विश्वास था कि प्रशासन के कतिपय सिद्धान्त हैं। गुलिक के योगदान को निम्नवत शीर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है-

7.3.1 संगठन के सिद्धान्त

पूर्व में बताया गया है कि लूथर गुलिक का सम्बन्ध औपचारिक संगठन विचारधारा से है। ये शास्त्रीय विचारक (Classical Thinker) माने जाते हैं। इनका विश्वास था कि संगठन के कुछ सामान्य सिद्धान्त होते हैं और इन सिद्धान्तों को लागू करने से संगठन की प्रभावशीलता में वृद्धि की जा सकती है। शास्त्रीय विचारकों का मुख्य ध्यान मितव्यता और दक्षता पर आधारित था। इनका मत है कि यदि प्रशासन के सामान्य सिद्धान्तों का अनुपालन सुनिश्चित किया जाये तो संगठन में अधिकतम मितव्यता और दक्षता प्राप्त की जा सकती है। लूथर गुलिक, हेनरी

फेयोल द्वारा प्रतिपादित प्रशासन के चौदह सिद्धान्त से काफी प्रभावित थे। इन्होंने संगठन के दस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।

1. **कार्य विभाजन या विशेषीकरण-** संगठन के 10 सिद्धान्तों में गुलिक कार्य के विभाजन या विशेषीकरण के सिद्धान्त को सर्वाधिक महत्व देते हैं। उनका मत है कि कार्य का विभाजन केवल संगठन का आधार ही नहीं, बल्कि कारण भी है। अन्य शास्त्रीय विचारक भी कार्य विभाजन को संगठन का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त मानते हैं। कार्य के विभाजन का आशय यह है कि कार्य को सर्वप्रथम छोटे-छोटे भागों में बांटा जाए और प्रत्येक भाग का कार्य विशिष्ट व्यक्ति ही करे। कार्य का विभाजन कर दिए जाने से ना केवल कार्य को करना आसान होगा, अपितु विशेषीकरण का लाभ भी उठाया जा सकेगा, क्योंकि एक-सा कार्य करते रहने से कर्मचारी उस कार्य में विशेष दक्षता प्राप्त कर लेता है।
2. **विभागीय संगठनों के** आ**धार-** गुलिक, संगठन का दूसरा सिद्धान्त विभागीय संगठनों के आधार के रूप में पहचानते हैं। गुलिक ने इस पर काफी कुछ लिखा। उसने विभागीयकरण के चार आधारों की विवेचना की है, जिनका विस्तार से वर्णन अगले भाग में दिया जाएगा। संक्षेप में ये आधार हैं- पर्पज या प्रयोजन, प्रोसेज या प्रक्रिया, पर्सन या व्यक्ति तथा प्लेस या स्थान। गुलिक का विभागीयकरण का यह सिद्धान्त ''चार-पी'' (Four 'P') सिद्धान्त के नाम से अधिक लोकप्रिय है।
3. **पदसोपान द्वारा समन्वय-** समन्वय, संगठन के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एक है। गुलिक भी समन्वय स्थापना के कई तरीके बताते हैं, जिनमें से एक है पदसोपान द्वारा समन्वय। यह संगठन में समन्वय स्थापना में सहायक होता है।
4. **सचेत समन्वय-** गुलिक संगठन में जान-बूझकर, सचेत प्रक्रिया द्वारा समन्वय स्थापना को संगठन का चौथा सिद्धान्त बताते हैं। वस्तुतः समन्वय स्थापना के लिए सचेत प्रयास किए जाने आवश्यक हैं।
5. **समितियों द्वारा समन्वय-** समितियों के माध्यम से समन्वय स्थापना को गुलिक संगठन का पांचवा सिद्धान्त बताते हैं। समन्वय की स्थापना के लिए समितियों का गठन भी किया जा सकता है। इनके माध्यम से औपचारिक व प्रभावी समन्वय स्थापना की जा सकती है।
6. **विकेन्द्रीकरण-** विकेन्द्रीकरण से आशय है, प्रशासनिक सत्ता का एक स्थान पर केन्द्रित ना होकर संगठन के विभिन्न स्तरों पर निहित होना। विकेन्द्रीकरण को गुलिक संगठन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त मानते हैं, क्योंकि इसका सम्बन्ध कार्य-विभाजन से होता है।
7. आ**देश की एकता-** आदेश की एकता सिद्धान्त से आशय है कि प्रशासनिक संगठन में किसी कर्मचारी को अपने तुरन्त उच्च अधिकारी से ही आदेश ग्रहण करने चाहिए और केवल उसी के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। यह सिद्धान्त एक स्वामी एक अधीनस्थ के विचार पर बल देता है।
8. **स्टाफ एवं सूत्र-** गुलिक स्टाफ एवं सूत्र को संगठन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त बताते हैं। स्टाफ परामर्शदात्री कार्य सम्पन्न करता है और सूत्र नीति बनाता है, निर्णय लेता है और उन्हें क्रियान्वित करता है।
9. **प्रत्यायोजन-** इसका आशय है, सत्ता सहित कार्यों का हस्तान्तरण। जब अधिकारी के पास कार्य-भार बढ़ जाता है या कार्य का तकनीकी पक्ष जटिल हो जाता है तो वह सत्ता सहित कार्यों को हस्तान्तरित करता है। उसे ही प्रत्यायोजन कहा जाता है।
10. **नियन्त्रण का क्षेत्र-** गुलिक, नियन्त्रण के क्षेत्र को संगठन का अन्तिम सिद्धान्त बताते हैं। इसका आशय यह होता है कि एक प्रशासनिक संगठन में एक उच्चाधिकारी अपने अधीन कितने कर्मचारियों के कार्यों का प्रभावशाली रूप से नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण कर सकता है। यह अवधारणा वी0 ए0 ग्रेक्यूनास के 'ध्यान के विस्तार क्षेत्र' के सिद्धान्त से सम्बन्धित है।

इस प्रकार अन्य शास्त्रीय विचारकों की तरह गुलिक भी संगठन के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हुए उन्हें संगठन में लागू करने का आग्रह करते हैं।

7.3.2 पोस्टकार्ब विचार

लोक प्रशासन का शायद ही कोई विद्यार्थी होगा जो 'पोस्टकार्ब' के विचार से अनभिज्ञ हो। पोस्टकार्ब विचार के माध्यम से लूथर गुलिक ने कार्यपालिका के कार्यों को गिनाया है। पोस्टकार्ब सात अक्षरों से मिलकर बना शब्द है, जिसका प्रत्येक अक्षर एक विशिष्ट कार्य को दर्शाता है- P- प्लानिंग, O- ऑर्गेनाइजिंग, S- स्टाफिंग, D- डायरेक्टिंग, Co- कॉओर्डिनेटिंग, R- रिर्पोटिंग, B-बजटिंग।

इन सातों क्रियाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

1. **प्लानिंग या नियोजन-** नियोजन या आयोजन कार्यपालिका का प्रथम कार्य है या कहा जाय प्रशासन की प्रथम गतिविधि है। नियोजन का लक्ष्य निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न गतिविधियों की पहचान करना है। तथा साथ ही उस क्रम की भी पहचान करना है या प्राथमिकताऐं तय करनी हैं ताकि हम अपने निर्धारित लक्ष्यों तक प्रभावशाली रूप से पहुँच सकें। नियोजन का उद्देश्य संगठन के मानवीय तथा भौतिक साधनों का सही अनुमान लगाना है और उन साधनों की खोज करना है, ताकि अधिकतम मितव्ययता और न्यूनतम खर्चे पर दक्ष परिणाम प्राप्त हो सकें। नियोजन, संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति का सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। बिना उचित नियोजन के संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करने में कठिनाई आती है। हेनरी फेयोल जो कि गुलिक के समान शास्त्रीय विचारक हैं, नियोजन को प्रथम प्रशासनिक क्रिया मानते हैं।
2. **ऑर्गेनाइजिंग या संगठित करना-** कार्यपालिका का दूसरा कार्य है। प्रशासन की गतिविधियों का नियोजन कर लेने के बाद हमें प्रशासन की संरचना के बारे में ध्यान रखना पड़ता है। अर्थात् संगठन की स्थापना करनी पड़ती है, ताकि इन गतिविधियों को लागू किया जा सके तथा संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। संगठन की स्थापना करने के लिए सत्ता की व्यवस्था की जाती है। सत्ता ही संगठन का हृदय होती है। बिना संगठन के प्रशासन अपना कोई भी लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। गुलिक के अनुसार ''सत्ता की औपचारिक संरचना को संगठन कहते हैं। जिसके माध्यम से कार्य की उपशाखाओं को प्रबन्धित, सुनिश्चित तथा समन्वित किया जाता है, ताकि निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।''
3. **स्टाफिंग-** स्टाफिंग या स्टाफ रखने से आशय संगठन के गतिशील पहलू से है। स्टाफिंग, कार्मिक प्रशासन के सभी आयामों से जुड़ा होता है। कर्मचारियों की भर्ती करना, उनकी नियुक्ति, पदोन्नति, वेतन, अनुशासन, सेवानिवृत्ति आदि ऐसे कार्य हैं, जिनका कि प्रबन्धकों को ध्यान रखना पड़ता है। चूंकि किसी भी संगठन की कार्यकुशलता उसके कार्मिकों की कार्यकुशलता से जुड़ी होती है, इसलिए कार्मिक प्रशासन पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। अभिप्रेरणा जो कि कार्मिक प्रशासन का एक अति महत्वपूर्ण सिद्धान्त है, को शास्त्रीय विचारकों ने प्रायः नजर-अन्दाज ही किया है।
4. **डायरेक्टिंग या निर्देशन-** डायरेक्टिंग या निर्देशन का आशय, प्रबन्धकों द्वारा प्रशासन की विभिन्न गतिविधियों को करने के लिए अधीनस्थों को आदेश, निर्देश देने से है। यह मुख्य कार्यपालिका का एक महत्वपूर्ण कार्य है कि वह अपने अधीनस्थों को कार्य के दौरान निर्देशित करें और उन्हें आवश्यक आदेश दें, ताकि कार्यों को प्रभावी ढंग से पूर्ण किया जा सके तथा लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ा जा सके।
5. **कॉओर्डिनेटिंग या समन्वय स्थापित करना-** कॉओर्डिनेटिंग या समन्वय स्थापित करना भी कार्यपालिका का एक महत्वपूर्ण कार्य है। समन्वय से जहाँ कार्यों में दोहराव व टकराव को रोका जा

सकता है वहीं कार्य को व्यवस्थित रूप से सम्पन्न करने के लिए समन्वय आवश्यक है। अधिकांश शास्त्रीय विचारों के समन्वय को एक महत्वपूर्ण गतिविधि के रूप में पहचाना है।

6. **रिपोर्टिंग या रिपोर्ट देना-** गुलिक के अनुसार कार्यपालिका का छठा कार्य है। संगठन में क्या गतिविधियां चल रही हैं? कौन किस प्रकार कार्य कर रहा है? संगठन में क्या समस्याएँ हैं? आदि समस्त बातों की जानकारी रिपोर्ट के माध्यम से मिलती है। रिपोर्ट के माध्यम से ही प्रबन्धक संगठन की स्थिति और समस्याओं को जान पाते हैं और उनका सुधारने का कार्य करते हैं।
7. **बजटिंग या बजट बनाना-** गुलिक के मत से बजट बनाना, कार्यपालिका का सातवां कार्य है। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन से है। प्रशासन और वित्त चूँकि शरीर और छाया की भाँति जुड़े हुए हैं, अतः वित्तीय प्रशासन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है। इसमें बजट बनाना, वित्तीय प्रक्रियाएँ, लेखा, अंकेक्षण आदि गतिविधियां सम्मिलित हैं।

इस प्रकार लूथर गुलिक ने एक शब्द 'पोस्टकार्ब' में कार्यपालिका की गतिविधियों को समेट लिया। यद्यपि इसमें कार्यपालिका के कई अन्य महत्वपूर्ण कार्य छूट गए हैं।

7.3.3 विभागीकरण के आधार

विभागों के गठन का आधार क्या हो? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए लूथर गुलिक ने विभागीकरण के चार आधारों पर उल्लेख किया है। ये चारों ही आधार 'पी' अक्षर से शुरू होते हैं। अतः इसे 'चार-पी' (four 'P') विचार कहा जाता है। ये आधार हैं-

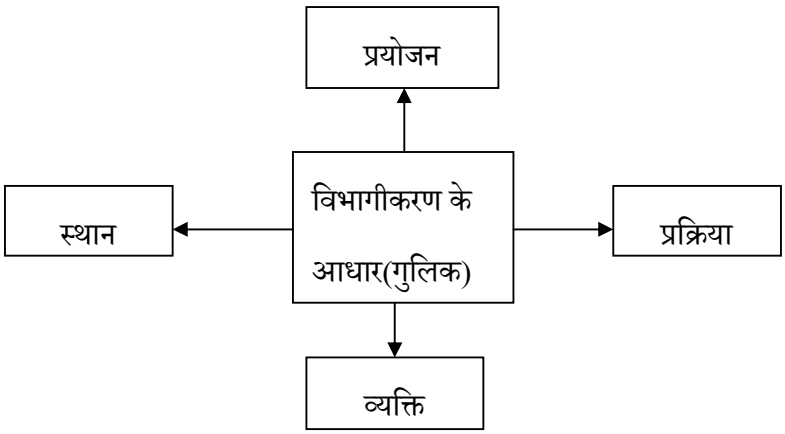

1. **प्रयोजन(Purpose)-** गुलिक के अनुसार विभागीकरण का प्रथम आधार है। यहाँ संगठन को सर्वप्रथम अपने मुख्य कार्यों और लक्ष्यों की पहचान करनी होती है और फिर प्रत्येक कार्य के लिए पृथक विभाग की स्थापना की जाती है। प्रयोजन के आधार पर विभागों का गठन सामान्य बात है। जैसे चिकित्सा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए चिकित्सालय, शिक्षा के लिए स्कूल और कॉलेज आदि होते हैं। इस प्रकार जब प्रयोजन का उद्देश्य के आधार पर विभाग का गठन किया जाता है तो गुलिक के मत में समन्वय की स्थापना आसानी से और कम खर्च पर हो जाती है। वे इसके कुछ नुकसान भी हैं।
2. **प्रक्रिया(Process)-** विभागीकरण का दूसरा आधार है। इस आधार पर एक समान प्रक्रिया का अनुसरण करने वाले व्यक्ति एक ही विभाग के अधीन रखे जाते हैं। चाहे उनके प्रयोजन भिन्न-भिन्न क्यों न हों। यहाँ प्रक्रिया से तात्पर्य कार्य करने की तकनीकी कौशल से है। इस आधार पर लाभ यह है कि इसमें

विशेषीकरण का लाभ लिया जा सकता है। परन्तु इसका एक प्रमुख दोष यह है कि इससे समन्वय स्थापना की प्रक्रिया में बांधा आती है।

3. **व्यक्ति(Person)-** व्यक्ति, विभागीकरण का तीसरा आधार है। इसका आशय यह है कि एक विशिष्ट विभाग व्यक्तियों के एक विशिष्ट समूह की सेवा करेगा। इस प्रकार एक ही समूह की सेवा करने तथा देखभाल करने से कार्यों में विशेषीकरण बढ़ता है और सेवा किए जाने वाले समूह को सुविधाएँ आसानी से मिल जाती हैं। परन्तु इसका नुकसान यह है कि चूंकि लोगों के समूह भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, अतः सभी के लिए अलग-अलग विभागों की स्थापना करना महंगा कार्य होगा।
4. **स्थान(Place)-** स्थान को गुलिक विभागीयकरण का अन्तिम आधार बताते हैं। इसमें एक क्षेत्र-विशेष में किए जा रहे सभी कार्यों को जोड़ दिया जाता है और उनका एक विभाग बना दिया जाता है। इस प्रकार बनाए गए विभागों से उस क्षेत्र विशेष का विकास सम्भव हो जाता है, जिसके लिए कि विभाग की स्थापना की गयी है। पर यह आधार क्षेत्रीयता और संकीर्णता को बढ़ावा दे सकता है।

7.3.4 मुख्यालय-क्षेत्रीय कार्यालय सम्बन्ध

गुलिक ने मुख्यालय (हैडक्वार्टर्स) और क्षेत्रीय कार्यालय (फील्ड ऑफिसेज) के बीच सम्बन्धों के तीन प्रतिमानों का उल्लेख किया है- सभी अंगुलियां (All Fingers), छोटी भुजाएँ-लम्बी अंगुलियां(Short Arms-Long Fingers), लम्बी भुजाएँ-छोटी अंगुलियां(Long Arms- Short Fingers)।

1. **सभी अंगुलियां प्रतिमान** से आशय है, मुख्यालय से आदेश सीधे क्षेत्रीय कार्यालयों और इकाईयों को भेजे जाते हैं। इस प्रतिमान में मुख्यालय और क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होता है। यह ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार हमारे हथेली से सीधे ही अंगुलियां निकलती हैं।
2. **छोटी भुजाएँ तथा लम्बी अंगुलियां प्रतिमान** के अन्तर्गत क्षेत्रीय मुख्यालय प्रधान कार्यालय के अति निकट स्थित होते हैं। इतः इसे छोटी भुजाएँ कहा जाता है। इन छोटी भुजाओं से आदेश दूर स्थित क्षेत्रीय इकाइयों तक जाते हैं, जिन्हें लम्बी अंगुलियां कहा जाता है।
3. **लम्बी भुजाएँ तथा छोटी अंगुलियां प्रतिमान** में प्रधान कार्यालय और क्षेत्रीय कार्यालय के बीच काफी दूरी होती है, जिन्हें लम्बी भुजाएँ कहा जाता है। क्षेत्रीय कार्यालयों से क्षेत्रीय इकाइयों के बीच दूरी कम होती है। इन्हें छोटी अंगुलियां कहा जाता है।

इस प्रकार गुलिक ने मुख्यालय-क्षेत्रीय कार्यालयों के बीच का रोचक विवरण प्रस्तुत किया है।

7.4 लोक प्रशासन पर गुलिक के विचार

लूथर गुलिक लोक प्रशासन को परिभाषित करते हुए कहते हैं, ''लोक प्रशासन प्रशासनिक विज्ञान का वह भाग है जिसका सम्बन्ध सरकार से रहता है और इस प्रकार प्रमुखतया इसका सम्बन्ध कार्यपालिका शाखा से है, जहाँ सरकार का कार्य किया जाता है। यद्यपि व्यवस्थापिका और न्यायपालिका से सम्बन्धित समस्याएँ भी स्पष्ट रूप से प्रशासकीय समस्याएँ ही हैं।''

एक अन्य स्थान पर गुलिक लोक प्रशासन की परिभाषा इस प्रकार करते हैं, ''सरकारी प्रणालियों, कार्यों और सेवाओं का विज्ञान तथा कला, विशेषतया प्रबन्धकीय पक्ष पर।''

गुलिक लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच समस्याओं पर बल देते हैं और इन दोनों के बीच बढ़ती अन्तःक्रियाओं की वकालत करते हैं।

गुलिक का मत था कि चूँकि लोक प्रशासन अनिवार्यतः पर्यावरण में कार्य करता है, अतः लोक प्रशासन को बदलती हुई स्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। गुलिक ने निम्न तीन सरकारी परिवर्तनों की भविष्यवाणी की है, पहला- अन्तर्राष्ट्रीय सरकारी क्रिया के विस्तार, आकार और आयतन में वृद्धि, दूसरा- घरेलू अर्थव्यवस्था के नियन्त्रण और विनियमन में राष्ट्र-राज्य का घुस जाना और तीसरा- महानगरीय सैटलमेन्ट के नए प्रतिमान का विकास, जिसे 'मेगापोलीज' कहते हैं।

गुलिक को केवल सिद्धान्तवादी या लोक प्रशासन का दार्शनिक ही नहीं माना जाना चाहिए। उसकी लोक प्रशासन के सुधार में भी रूचि थी और प्रशासनिक सुधारक के रूप में गुलिक ने निम्न सिद्धान्त विकसित किए-

1. सम्बद्ध गतिविधियों को एक इकाई के रूप में प्रशासित किया जाए।
2. सभी एजेन्सियों को कुछ विभागों में संचित कर दिया जाना चाहिए।
3. हर संगठनात्मक इकाई को अपनी योग्यता और तकनीकी ज्ञान सिद्ध कर चुके एक ही अधिकारी के अधीन कर दिया जाना चाहिए।
4. प्राधिकार को उत्तरदायित्व से जोड़ा जाना चाहिए।
5. हर विभागाध्यक्ष के पास नियमित मूल्यांकन से लिए खुद का स्टाफ होना चाहिए।
6. इस प्रकार के कार्यों को करने की जिम्मेदारी किसी विशिष्ट कार्यकर्ता को सौंपी जानी चाहिए।
7. निर्वाचित पदाधिकारियों की संख्या कम की जानी चाहिए।
8. प्रशासनिक कार्यों के लिए मण्डल और आयोगों का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।
9. मुख्य कार्यकारी को यह शक्ति होनी चाहिए कि वह विभागाध्यक्षों को नियुक्त कर सके, उन्हें हटा सके तथा उनके कार्य को निर्देशित कर सके।
10. मुख्य कार्यकारी के पास शोध स्टाफ होना चाहिए, जो विभागीय कार्यों पर प्रतिवेदन दे सके तथा उन्नत विधियां सुझा सके।

उपर्युक्त सुधारों का समबन्ध अमेरीकी प्रशासन में सुधार से है।

गुलिक ने द्वितीय विश्वयुद्ध के अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट किया कि नीति और प्रशासन के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। उनके मत में युद्धकाल का लोक प्रशासन शान्तिकाल के लोक प्रशासन से भिन्न होता है।

गुलिक कहते हैं कि जब सन् 1937 में उनका लेख 'पेपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित हुआ था, उसके बाद बहुत कुछ ऐसा घटा जिसने लोक प्रशासन को काफी प्रभावित किया। गुलिक लोक प्रशासन में मानवीय-घटक को अत्यधिक महत्व देते हैं, क्योंकि सरकारें मानवों द्वारा ही उनके लिए ही बनाई जाती हैं। गुलिक के मत में राज्य का मुख्य कार्य मानवीय कल्याण होना चाहिए ना कि युद्ध। साथ ही गुलिक लोक प्रशासन में 'समय घटक' के महत्व को पहचानते हैं। ''पब्लिक एडमिनिस्ट्रेटिव रिब्यू'' नामक पत्रिका में 1987 में छपे अपने लेख ''समय और लोक प्रशासन'' में गुलिक ने समय के पांच भिन्न-भिन्न आयाम बताए हैं-

समय →
- इनपुट के रूप में
- आउटपुट के रूप में
- घटनाओं के प्रवाह के रूप में
- दो और अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं/प्रक्रियाओं के बीच अन्तर के रूप में
- प्रबन्ध नीति के रूप में

उनका मत है कि समय, लोक-प्रबन्धन की एक केन्द्रीय रणनीति और नैतिक चिन्ता होनी चाहिए।

अपने युद्धकालीन अनुभवों के आधार पर गुलिक ने लोक प्रशासन के लिए निम्न 15 सबक (पाठ) तैयार किए हैं-

1. अमेरिकी सरकारी तन्त्र, युद्ध के प्रशासन के लिए पूर्णतया पर्याप्त है।
2. प्रयोजनों का एक स्पष्ट विवरण जिसे सार्वभौमिक रूप से समझा जा सके, प्रभावशाली प्रशासन की असाधारण गारण्टी है।
3. प्रयोजन से कार्यक्रम का अनुवाद प्रशासन का एक जटिल तत्व है।
4. समन्वय प्रभावी क्रिया का अपरिहार्य गतिशील प्रनियम है।
5. प्रशासनिक व्यवहारों का नियन्त्रण होना चाहिए। उसकी अनेक तकनीकें हो सकती हैं।
6. युद्ध ने यह स्पष्ट कर दिया है कि नियोजन प्रबन्ध का आवश्यक और सतत् आयाम है।
7. प्रशासनिक नियन्त्रण और तकनीकी नियन्त्रण आवश्यक हैं।
8. व्यापक कार्यों वाले संगठन अधिक प्रभावी होते हैं।
9. नियन्त्रण के क्षेत्र को आवश्यकता से अधिक प्रभावी बनाया जाये।
10. राष्ट्रीय आपत्तियों में क्षमतावान कार्मिक अपरिहार्य हैं तथा रचनात्मक प्रशासनिक श्रेष्ठता अमूल्य है।
11. युद्ध ने लोक प्रशासन में समय-तथ्य के महत्व को स्पष्ट किया है।
12. लोकमत का समर्थन अच्छे प्रशासन के लिए आवश्यक है।
13. संगठित हित समूहों के सदस्य परामर्शदाता और सेल्समैन के रूप में सरकारी कार्यक्रमों के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होते हैं, अपेक्षाकृत प्रशासन के नियमित सदस्यों के।
14. प्रशासन में सत्य प्रभावी क्रिया प्रयोजन की एकता और स्पष्टता से आती है।
15. अन्तर्राष्ट्रीय प्रशासन ने कोई नई समस्याएं पैदा नहीं की हैं।

प्रशासन के विज्ञान में विश्वास रखते हुए गुलिक ने लोक प्रशासन को भावी मांगों के अनुरूप क्षमतावान बनाने के लिए निम्न पांच सूत्री कार्यक्रम बताये हैं-

- क्रिया के क्षेत्र के रूप में लोक प्रशासन को बदलती हुई मानवीय आवश्यकताओं के प्रति अनुकूलित होना चाहिए, विशेषतः अन्तर्राष्ट्रीय, आर्थिक और महानगरीय क्षेत्रों में।
- विश्लेषण और समझ के रूप में या यूँ कहें अध्ययन अनुशासन के रूप में लोक प्रशासन को व्यापार के अध्ययन और अन्य प्रशासनों के अध्ययनों से सम्बन्धित होना चाहिए।
- लोक प्रशासन को कार्मिक समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।
- लोक प्रशासन को 'आटोमेशन' (कम्प्यूटर) के अवसरों को स्वीकार कर आगे बढ़ना चाहिए।
- लोक प्रशासन को अपने सिद्धान्तों पर पुनर्विचार करना चाहिए और नया सूत्रीकरण करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. लूथर गुलिक का जन्म कहाँ हुआ?
2. पोस्टकार्ब विचार क्या है?
3. चार 'पी' (Four 'P')से क्या तात्पार्य है?
4. लूथर गुलिक के विचार, लोक प्रशासन के महत्व को संकुचित विचारधारा में क्यों सम्मलित करते हैं?

7.5 सारांश

लोक प्रशासन के एक प्रमुख शास्त्रीय विचारक के रूप में लूथर एच0 गुलिक को सदैव याद किया जाएगा। सन् 1937 में लिंडल एफ0 उर्विक के साथ मिलकर उन्होंने ''पेपर्स ऑन दी साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन'' का सम्पादन किया जो कि लोक प्रशासन के विकास के मार्ग में एक मील का पत्थर साबित हुआ।

गुलिक औपचारिक संगठन विचारधारा के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने संगठन के औपचारिक ढांचे का विशद् अध्ययन किया तथा संगठन के दस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। उनके संगठन के दस सिद्धान्त इस प्रकार हैं- कार्य विभाजन या विशेषीकरण, विभागीय संगठनों के आधार, पदसोपान द्वारा समन्वय, सचेतन समन्वय, समितियों द्वारा समन्वय, विकेन्द्रीकरण, आदेश की एकता, स्टाफ तथा सूत्र, प्रत्यायोजन एवं नियन्त्रण का क्षेत्र।

'पोस्टकार्ब' के विचार से प्रशासन का हर विद्यार्थी परिचित है। गुलिक ने बड़े ही सुन्दर तरीके से प्रशासन के कार्यों को 'पोस्टकार्ब' में समेटा। 'पोस्टकार्ब' के अक्षरों में से प्रत्येक प्रशासन के एक निश्चित कार्य की ओर इशारा करता है। ये कार्य हैं- प्लानिंग, ऑर्गेनाइजिंग, स्टाफिंग, डायरेक्टिंग, कोऑर्डिनेटिंग, रिपोर्टिंग तथा बजटिंग।

गुलिक विभागीयकरण के चार आधारों की पहचान करते हैं। प्रथम- प्रयोजन या उद्देश्य, दूसरा- प्रक्रिया, तीसरा- व्यक्ति तथा चौथा- क्षेत्र। इसी प्रकार गुलिक प्रधान कार्यालय और क्षेत्रीय कार्यालयों के सम्बन्धों की भी विवेचना करते हैं। इसके लिए उन्होंने तीन प्रकार के सम्बन्धों की पहचान की- सभी अंगुलियां, छोटी भुजाएँ और लम्बी अंगुलियां एवं लम्बी भुजाएँ और छोटी अुंगुलियां।

अपने परवर्ती लेखन में गुलिक लोक प्रशासन पर दूसरे दृष्टिकोण से विचार करते हैं। वे लोक प्रशासन के व्यवहार का अध्ययन करते हैं तथा इसमें सुधार हेतु सुझाव भी देते हैं। गुलिक लोक प्रशासन में समय कारक और मानवीय कारकों पर सर्वाधिक बल देते हैं। वे सरकार को मानवीय कल्याण का कार्य करने की वकालत करते हैं। नि:संदेह गुलिक का प्रशासन को योगदान सदैव याद किया जाता रहेगा।

7.6 शब्दावली

औपचारिक संगठन- विधिवत संगठन, कार्यपालिका- प्रशासक या व्यवस्थापक, बजट- आय-व्यय का लेखा जोखा

7.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न का उत्तर गुलिक के जीवन परिचय का अध्ययन करने से मालूम हो जायेगा।
2. पोस्टकार्ब विचार के माध्यम से लूथर गुलिक ने कार्यपालिका के कार्यों का वर्णन किया है। विस्तृत जानकारी हेतु लेख का ध्यान पूर्वक अध्ययन करें।
3. विभागों के गठन किस आधार पर किये जाते हैं। उसी को 'चार पी' द्वारा बताया गया है।
4. लोक प्रशासन के महत्व को दो रूपों में देखा जाता है। एक संकुचित तथा द्वितीय समग्र कार्य प्रणाली के रूप में शेष प्रश्न का उत्तर इकाई पढ़ने के विदित होगा।

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. लोक प्रशासन- बी0 एल0 फाड़िया।
2. प्रशासनिक एवम प्रबन्ध चिन्तक- एस0 एल0 गोयल।
3. लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार- एम0 पी0 शर्मा एवं बी0 एल0 सड़ाना।

4. द गैलेक्सी आफ एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स- पी0 वी0 राठौर।
5. लोक प्रशासन के नये आयाम- मोहित भट्टाचार्या।
6. प्रमुख प्रशासनिक विचारक- नरेन्द्र कुमार थोरी।
7. प्रशासनिक विचारक- श्री राम माहेश्वरी।

7.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक विचारक, डॉ0 राकेश कुमार, प्रकाशन- लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. प्रमुख राजनीतिक विचारक, नरेन्द्र कुमार थोरी, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स।

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लूथर गुलिक के संगठन के सिद्धान्त भी विवेचना कीजिए।
2. लूथर गुलिक द्वारा प्रतिपादित कार्यपालिका के कौन-कौन से कार्य हैं? इनका विस्तार से वर्णन कीजिए।

इकाई- 8 लिण्डल एफ0 उर्विक

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 लिण्डल एफ0 उर्विक- एक परिचय
8.3 उर्विक के संगठन के सिद्धान्त
    8.3.1 उद्देश्यों का सिद्धान्त
    8.3.2 समानता का सिद्धान्त
    8.3.3 उत्तरदायित्व का सिद्धान्त
    8.3.4 सोपान सिद्धान्त
    8.3.5 नियंत्रण का क्षेत्र
    8.3.6 विशेषीकरण का सिद्धान्त
    8.3.7 समन्वय का सिद्धान्त
    8.3.8 परिभाषा का सिद्धान्त
8.4 उर्विक का 'जैड' सिद्धान्त
8.5 उर्विक के अन्य विचार
8.6 लोक प्रशासन और निजी प्रशासन में समानता
8.7 उर्विक की आलोचना
8.8 उर्विक का मूल्यांकन
8.9 सारांश
8.10 शब्दावली
8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

प्रशासन एवं प्रबन्ध की शास्त्रीय विचारधारा के अग्रणी पुरोधा लिण्डल एफ0 उर्विक का नाम महान चिन्तकों एवं लेखकों की श्रेणी में आता है। सैन्य पृष्ठभूमि पर आधारित होने के कारण उर्विक का चिन्तन स्वाभाविक रूप से अनुशासन तथा नियमों की सुव्यवस्थित संरचना को प्रशासन का केन्द्र बिन्दु मानता है। प्रशासन के यांत्रिक दृष्टिकोण के साथ-साथ उर्विक इसके व्यवहारवादी स्वरूप को भी विश्लेषित करने का प्रयास करते हुए कहते हैं, "सामाजिक जीवन में रीति-रिवाज स्थायित्व बनाए रखने का कार्य करते हैं। संस्थाओं तथा सोचने की आदतों के क्रम में मानव मस्तिष्क परिवर्तन को बहुत धीरे-धीरे स्वीकारता है। यही कारण है कि संगठनात्मक स्तर पर भी परिवर्तन, व्यवहार एवं सुधार इत्यादि से सम्बन्धित मुद्दे चिन्ता का विषय बने रहते है।'' उर्विक 'वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा' के प्रबल समर्थक रहे हैं।

प्रशासन एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में इतिहासकार के उपनाम से प्रसिद्ध उर्विक के बारे में लिलियन गिलब्रेथ लिखती है "जिस प्रकार शैले कवियों के कवि थे, मुझे उसी तरह उर्विक, सलाहकारों के सलाहकार दिखाई देते हैं।''
एक सैन्य अधिकारी से लेकर प्रबन्ध परामर्शदाता के रूप में उर्विक का चिन्तन सुसंगत विचारों से परिपूर्ण दिखाई देता है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- उर्विक के प्रशासनिक विचारों का जान पायेंगे।
- उर्विक के संगठन के महत्वपूर्ण विचार से अवगत होंगे।
- प्रशासनिक विचारों के क्षेत्र में उर्विक के योगदान को समझ पायेंगे।

8.2 लिण्डल एफ0 उर्विक- एक परिचय

उर्विक का जन्म सन् 1891 में ब्रिटेन में हुआ। उनकी पढ़ाई 'ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय' में हुई। यहीं से उसने इतिहास में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। उर्विक 'न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय' में प्रोफेसर भी रहे। उर्विक ने ब्रिटेन और यूरोप के कई प्रबन्ध संस्थाओं में कार्य किया। 1983 में उर्विक की मृत्यु हो गई।
उर्विक ने कई पुस्तकें लिखी और बहुत से लेख प्रकाशित करवाये। 1937 में उन्होंने लूथर गुलिक के साथ मिलकर 'पेपर्स ऑन दि साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' का सम्पादन किया। उर्विक की महत्वपूर्ण रचनाएँ इस प्रकार हैं-

1. Dynamic Administration (Co.ed.)
2. Freedom and Coordination (ed.)
3. Papers on the Science of Administration (1937) [Co.ed.]
4. The Meaning of Rationalization (1929)
5. Committees on Organization
6. Management o Tomorrow
7. The Elements of Administration (1943)
8. The Making of Scientific Management (1945-48 [III Vol.]
9. The Theory of Organization (1952)
10. The Patterns of Management
11. The Golden Book of Management
12. The Patterns of Management and Leadership in the XX Century Organizations

'कमीटीज ऑन ऑर्गेनाइजेशन' पुस्तक में उर्विक ने समितियों पर मौलिक विचार प्रकट किए और संचार के क्षेत्र में अग्रणी योगदान दिया। 'द मीनिंग ऑफ रैशलाइजेशन' पुस्तक में उर्विक ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि क्यों ब्रिटेन अमरीकी वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन को स्वीकारने में सतर्कता बरत रहा है। 'द मेकिंग ऑफ साइन्टिफिक मैनेजमेन्ट' पुस्तक जो तीन वोल्यूमों (भाग) में प्रकाशित कराई गई थी, में उन्होंने सामाजिक सम्बन्धों पर प्रौद्योगिकी के प्रभावों का विश्लेषण किया है। 'द एलीमेन्ट्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' जो प्रथम बार 1943 में प्रकाशित हुई थी, उर्विक की सबसे महत्वपूर्ण कृति मानी जाती है। सन् 1956 में उर्विक ने नई दिल्ली में स्थित 'भारतीय लोक प्रशासन संस्थान' में दिए एक व्याख्यान में उन्होंने शासन में प्रबन्ध के महत्व पर जोर दिया।

एक शास्त्रीय विचारक के रूप में उर्विक का योगदान लोक प्रशासन में सदैव याद किया जाएगा। गुलिक के साथ मिलकर उनकी सम्पादित पुस्तक 'पेपर्स ऑन दि साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' लोक प्रशासन के विकास में मील का पत्थर साबित हुई।

8.3 उर्विक के संगठन के सिद्धान्त

शास्त्रीय विचारकों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान संगठन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन है। लूथर गुलिक ने जहाँ संगठन के दस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वहीं उर्विक भी संगठन के कतिपय सिद्धान्तों की पहचान करते हैं। संगठन को परिभाषित करते हुए उर्विक कहते हैं कि संगठन किसी प्रयोजन (या योजना) के लिए आवश्यक निर्धारक गतिविधियां हैं और उनको लोगों को दिए जाने के लिए समूहों में व्यवस्थित करना है। उर्विक संगठन की आकृति (Design) को काफी महत्व देते हैं और कहते हैं कि आकृति के अभाव में सगठन की स्थापना करना अतार्किक, क्रूर, व्यर्थ और अप्रभावी है।

उर्विक संगठन के कतिपय सिद्धान्तों का उल्लेख करते हैं। पहले उन्होंने संगठन के निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया-

8.3.1 उद्देश्यों का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का मुख्य जोर उद्देश्यों पर है। इसके अनुसार संगठन और इसकी प्रत्येक इकाई के उद्देश्यों में स्पष्टता और निश्चितता होनी चाहिए। बिना उद्देश्यों के संगठन कार्य नहीं कर सकता। संगठन के उद्देश्य जितने स्पष्ट होंगे उन्हें प्राप्त करना उतना ही सुगम होगा।

8.3.2 समानता का सिद्धान्त

समानता के सिद्धान्त से आशय, प्राधिकार और उत्तरदायित्व के बीच समानता है। संगठन के प्रत्येक पद के लिए जहाँ प्राधिकार की व्यवस्था की जाती है, वहीं इसके लिए समान उत्तरदायित्वों की व्यवस्था भी होनी चाहिए। बिना उत्तरदायित्व के प्राधिकारों का दुरूपयोग होने की सम्भावना रहती है और बिना प्राधिकार के उत्तरदायित्वों का निभाना मुश्किल होता है। अतः दोनों में समानता होनी चाहिए।

8.3.3 उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

उत्तरदायित्व के सिद्धान्त से आशय उच्च अधिकारियों का अपने अधीनस्थों के प्रति उत्तरदायित्व निश्चित होना चाहिए। संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उच्चाधिकारियों का यह उत्तरदायित्व स्पष्ट व निश्चित होना आवश्यक है।

8.3.4 सोपान सिद्धान्त

सोपान सिद्धान्त से आशय संगठन के पदसोपानात्मक सिद्धान्त है, जिसमें उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण रखते हैं। सोपान का सिद्धान्त संगठन में एकीकरण की स्थापना में सहायक होता है। उर्विक कहते हैं कि "प्रत्येक संगठन में पदसोपान वैसे ही आवश्यक है जैसे हर घर में निकासी व्यवस्था होती है। किन्तु इस कड़ी को संचार का एकमात्र साधन मानना वैसे ही अनावश्यक है जैसे कि घर की निकास व्यवस्था में समय बिताना।''

8.3.5 नियंत्रण का क्षेत्र

नियंत्रण का क्षेत्र सिद्धान्त का तात्पर्य है कि प्रशासनिक संगठन में कोई उच्चाधिकारी अपने अधीन कार्यरत कितने कार्मिकों के कार्यों का पर्यवेक्षण प्रभावशाली रूप से कर सकता है। एक अधिकारी के अधीन कार्यरत कर्मचारियों की संख्या कितनी होनी चाहिए कि वह प्रभावशाली ढंग से कार्यों पर नियंत्रण और पर्यवेक्षण कर सके? इस प्रश्न

का उत्तर देते हुए उर्विक कहते हैं कि एक व्यक्ति अपने अधीन कार्यरत पांच या छ: अधीनस्थों के कार्यों का ही प्रभावी तरीके से पर्यवेक्षण कर सकता है। उर्विक का मानना है कि किसी अधिकारी के अधीन कार्यरत व्यक्तियों की संख्या में जितनी बढ़ोत्तरी होती है, उससे कहीं अधिक बढ़ोत्तरी अधीनस्थ व्यक्तियों के मध्य परस्पर सम्बन्धों में हो जाती है। उनके अनुसार, "यदि किसी अधिकारी के अधीन पहले से कार्यरत पांच अधीनस्थों में यदि एक और (छठा) जुड़ जाए तो कार्य में केवल 23 प्रतिशत अधिक सहायता मिलती है, जबकि निरीक्षण या नियंत्रण के क्षेत्र में 100 प्रतिशत अर्थात दुगुनी से भी अधिक वृद्धि हो जाएगी।'' उर्विक की मान्यता रही है कि नियंत्रण का छोटा क्षेत्र सामाजिक एवं प्रशासनिक दूरियों में कमी लाता है। नियंत्रण का बड़ा क्षेत्र समन्वय तथा नियंत्रण व्यवस्था को प्रभावित करता है।

8.3.6 विशेषीकरण का सिद्धान्त

विशेषीकरण के सिद्धान्त का सम्बन्ध कार्य-विभाजन से है। इसका आशय होता है कि एक व्यक्ति के कार्य को एक विशेष कार्य तक ही सीमित रखना चाहिए। जब एक व्यक्ति विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करता है तो वह उन कार्यों को करने में विशेष दक्षता हासिल कर लेता है और इस तरह प्रशासन को विशेषीकरण का लाभ मिल जाता है।

8.3.7 समन्वय का सिद्धान्त

समन्वय, संगठन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। सभी शास्त्रीय विचारकों ने इसे संगठन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना है। समन्वय का आशय संगठन के विभिन्न अंगों, भागों, इकाइयों के कार्यों व गतिविधियों में तारतम्य या सामंजस्य की स्थापना करना है। समन्वय द्वारा जहाँ कार्यों में दोहराव व टकराव को समाप्त किया जा सकता है, वहीं यह सहयोगी भावना की स्थापना में भी सहायक होता है।

8.3.8 परिभाषा का सिद्धान्त

परिभाषा के सिद्धान्त से आशय यह है कि प्रत्येक पद के कर्तव्यों की स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिए। कौन क्या-क्या कार्य करेगा, इसकी स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक कार्य की स्पष्ट परिभाषा होने से किसी भी प्रकार की अनिश्चितता नहीं रहेगी और प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्यों को स्पष्ट समझ सकेगा।

इस प्रकार उर्विक संगठन के आठ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं और प्रबन्ध के लिए इन सिद्धान्तों के महत्व का प्रतिपादन करते है। बाद में उर्विक ने फेयोल के चौदह सिद्धान्तों, मूनी व रैली के चार सिद्धान्तों, टेलर, फोलेट, ग्रेक्यूनास आदि के सिद्धान्तों को मिलाकर संगठन के 29 सिद्वान्तों का प्रतिपादन अपनी पुस्तक ''Elements of Administration (1943)'' में किया। ये 29 सिद्धान्त निम्न हैं- 1. अन्वेषण, 2. पूर्वानुमान, 3. नियोजन, 4. उपयुक्तता, 5. संगठन, 6. समन्वय, 7. व्यवस्था, 8. आदेश, 9. नियंत्रण, 10. समन्वयात्मक सिद्धान्त, 11. प्राधिकार, 12. स्कैलर प्रक्रिया, 13. कार्यों को देना, 14. नेतृत्व, 15. प्रत्यायोजन, 16. कार्यात्मक परिभाषा, 17. निर्धारक, 18. अनुप्रयात्मक, 19. व्याख्यात्मक, 20. सामान्य रूचि, 21. केन्द्रीयकरण, 22. स्टाफिंग, 23. जोश, 24. चयन तथा पदस्थापन, 25. पुरस्कार और शास्तियां, 26. पहल, 27.समानता, 28. अनुशासन और 29. स्थायित्व।

इस प्रकार उर्विक ने संगठन के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है। शास्त्रीय सिद्धान्तकार के रूप में संगठन की 'यांत्रिक विचारधारा' के समर्थक उर्विक का यह लोक-प्रशासन को महत्वपूर्ण योगदान है। उल्लेखनीय है कि ये सिद्धान्त गुलिक के साथ मिलकर गढ़े शब्द 'पोस्डकार्ब' का ही विस्तार हैं।

8.4 उर्विक का 'जैड' सिद्धान्त

उर्विक द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त प्रमुख रूप से व्यवसाय कार्यों से जुड़े संगठनों के सन्दर्भ में है। अभिप्रेरणा के सन्दर्भ में 'आउची' तथा 'जेगर' का ''जैड सिद्धान्त'' उर्विक के सिद्धान्त से भिन्न है। उर्विक का जैड सिद्धान्त इस मान्यता पर टिका है कि 'प्रबन्ध अपने आर्थिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का उपयोग करता है।' कतिपय विद्वानों का मानना है कि उर्विक के 'आर्थिक उद्देश्य' सम्बन्धी इसी विचार पर मैकग्रिगोर की 'एक्स' और 'वाई' विचारधारा विकसित हुई है।

उर्विक ने अपने जैड सिद्धान्त विचारधारा में यह स्पष्ट किया है कि "किसी भी संगठन में प्रबन्ध का प्राथमिक उद्देश्य यह है कि वह उपभोक्ताओं को उनके द्वारा चाही गई वस्तु या सेवा उस कीमत पर दे, जिस कीमत को उपभोक्ता स्वेच्छा से दे सकते हैं। इसी क्रम में प्रबन्ध उत्पादन तथा वितरण का कार्य करता है तथा यह प्रयास करता है कि इस प्राथमिक उद्देश्य की प्राप्ति हो जाए।'' इसी क्रम में उर्विक आगे लिखते हैं "मुद्दा यह है कि आज व्यक्ति एक उपभोक्ता के रूप में उत्पादक एवं वितरणकर्ता मनुष्य से दूर हो गया है। इसका मुख्य कारण उपभोक्ता तथा उत्पादक एवं वितरक के मध्य अपूर्ण या अस्पष्ट संचार का होना है।''

इस अपूर्ण संचार का वास्तविक कारण यह है कि व्यक्तियों को 'सामान्य उद्देश्य' का ज्ञान नहीं है। उत्पादक एवं वितरक के रूप में व्यक्ति (संगठन मनुष्य या प्रबन्धक) अपने को उस व्यक्ति से भिन्न या पृथक् मानता है जो उपभोक्ता हैं। उर्विक कहते हैं, "व्यक्ति कहते हैं कि ग्राहक सदैव सही होता है, किन्तु वे इस बात को प्रायः भुला देते हैं कि वे ही 'उपभोक्ता' है।'' उर्विक के अनुसार, "यदि उपभोक्ता तथा उत्पादक एवं वितरक के मध्य व्याप्त खाई को पाट दिया जाए तो व्यक्ति अभिप्रेरित होंगे तथा वे पूर्ण मनोयोग से कार्य करेंगे।'' प्रबन्ध द्वारा इस सम्बन्ध में उठाया गया कोई भी सकारात्मक कदम 'सामान्य उद्देश्यों' के प्रति समझ उत्पन्न करेगा। इसी 'सामान्य उद्देश्य' की सही जानकारी होने पर प्रबन्ध, संगठन, कार्मिक (व्यक्ति) तथा उपभोक्ता की आवश्यकताऐं पूरी हो सकेंगी। उर्विक का यह स्पष्ट मत है कि व्यक्ति तकनीकी क्रांति के लाभों में भागीदार बनना चाहता है। किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति प्रयास तो करता ही है। चाहे हमें ऊपरी तौर पर अलग-अलग व्यक्तियों के अलग-अलग उद्देश्य दिखाई दते हैं, किन्तु यथार्थ यह है कि किसी ना किसी बिन्दु पर हमारे कुछ उद्देश्य सामान्य भी होते हैं। सामान्य उद्देश्य को पहचान कर उसकी प्राप्ति हेतु सभी को प्रयास करने चाहिए।

लिण्डर एफ0 उर्विक के द्वारा औद्योगिक प्रबन्ध एवं प्रशासन के विविध पक्षों पर भरपूर लेखन किया गया है।

उर्विक ने अपनी एक कृति 'Committees on Organisation'(सन् 1930) में संगठनात्मक स्तर पर बनने वाली समितियों की रचना, कार्य-प्रणाली, इनके मध्य संचार तथा इनकी उपादेयता पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। उर्विक का स्पष्ट मानना रहा है कि संगठन में गठित की जाने वाली समितियां गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार को प्रोत्साहित करती हैं, क्योंकि समितियों में 'सभी की जिम्मेदारी, किसी की जिम्मेदारी नहीं' नामक सिद्धान्त अभिभावी रहता है। उनके अनुसार समितियों की स्थापना गलतियों को छिपाने तथा उत्तरदायित्व से बचने के लिए की जाती है। उर्विक के शब्दों में "यह समितियां ऐसे निगम की तरह होती हैं, जिसमें ना तो श्राप देने के लिए कोई आत्मा होती है और ना ही लात मारने के लिए शरीर।''

8.5 उर्विक के अन्य प्रशासनिक विचार

लिण्डल एफ0 उर्विक लोक प्रशासन तथा प्रबन्ध के क्षेत्र में उस दौर का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब संगठन की शास्त्रीय या संरचनात्मक या औपचारिक संगठन या कुशलता विचारधारा अपने चरम पर थी। गुलिक एवं उर्विक द्वारा रचित पुस्तक 'Papers on the Science of Administration (वर्ष 1937)' के समय (सन् 1930 से 50)

यह विचारधारा पर्याप्त लोकप्रिय थी। लोक प्रशासन के साहित्य में अधिसंख्य विद्वान अमेरिका का प्रतिनिधित्व करते हैं, किन्तु एक ब्रिटिश चिन्तक एवं लेखक के रूप में उर्विक का योगदान किसी भी दृष्टि से कम करके नहीं आंका जा सकता है।

उर्विक का नाम उन विद्वानों में अग्रणी है, जो प्रशासन को विज्ञान मानते हैं। तथा इस सम्बन्ध में कतिपय सुनिश्चित सिद्धान्तों की स्थापना पर बल देते हैं। सन् 1942 में 'Institute of Industrial Administration' लन्दन में 'प्रशासन के सिद्धान्तों' पर दिए गए उर्विक के पांच व्याख्यान जो कि सन् 1943 में 'The Elements of Administration' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए हैं, में उर्विक ने प्रशासन की प्रकृति को वैज्ञानिक करार दिया है। साथ ही वे प्रशासन के संचालन हेतु कौशल एवं कला पक्ष पर भी बल देते हैं। उर्विक यह भी मानते हैं कि प्रशासनिक कार्यों में सफलता के लिए सीमित ज्ञान पर्याप्त नहीं है, बल्कि निरन्तर व्यवहार के माध्यम से ही प्रशासनिक कौशल विकसित होता है। उनके अनुसार "प्रशासनिक कौशल ना तो खरीदा जा सकता है और ना ही इसके 'शार्ट कट' रास्ते हैं। इसके लिए कठिन अध्ययन, गहन चिन्तन तथा बौद्धिक सिद्धान्तों के प्रशिक्षण (वास्तविक एवं कार्य समस्या पर आधारित) की कीमत चुकानी होती है।''

लोक प्रशासन को विज्ञान की तरह देखते हुए उर्विक ने तर्क दिया है कि "जिस प्रकार किसी सेतु के निर्माण हेतु अभियांत्रिकी के कुछ निश्चित नियम होते हैं, उसी प्रकार संगठन के संचालन हेतु निश्चित सिद्धान्त होते हैं।'' इन संगठनात्मक सिद्धान्तों को सभी परम्परागत, व्यक्तिगत तथा राजनीतिक तथ्यों की प्राथमिकता की दृष्टि से ध्यान में रखना आवश्यक है, अन्यथा उस संगठन के लक्ष्यों या व्यक्तियों के परिश्रम का वांछित फल नहीं मिल सकेगा। प्रशासन के विज्ञान बनाने के लिए उर्विक ने निम्न तर्क प्रस्तुत किए हैं-

1. 'The Making of Scientific Management(1945-48) (3Volumes)' में उर्विक ने सामाजिक सम्बन्धों पर प्रौद्योगिकी के प्रभावों का अवलोकन प्रस्तुत किया है। उर्विक कहते हैं कि "पाश्चात्य सभ्यता एक स्थापित सभ्यता के बजाय अनुकूलन योग्य सभ्यता बन गई है, लेकिन सबसे बड़ा परिवर्तन प्रौद्योगिकीय तरीकों में आया है। दुःखद पक्ष यह है कि वर्तमान प्रशासन (प्रबन्ध) ही प्रगति की राह में सबसे बड़ी बाँधा बना हुआ है।'' इसी पुस्तक में उर्विक ने अमेरिकी प्रशासनिक व्यवस्था एवं विकास की आलोचना भी की है।
2. उर्विक ने प्रबन्ध ज्ञान पिरामिड की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए इसके कलात्मक, मानवीय तथा अभियांत्रिक पक्षों पर प्रकाश डाला है तथा यह बताया है कि इसमें चार पक्ष मुख्य रूप से समाहित हैं, पहला- कार्य का विज्ञान, दूसरा- व्यक्ति एवं कार्य का समायोजन, तीसरा- कार्य का समूहीकरण तथा सहसम्बन्ध तथा चौथा- समूहों का निर्देशन एवं अभिप्रेरणा।
3. प्रशासनिक प्रबन्ध सिद्धान्त के प्रतिपादक उर्विक के अनुसार, "इस सिद्धान्त में प्रशासन तथा प्रबन्ध को एकीकृत करते हुए चार तत्वों, यथा- विवेकशीलता (तार्किकता), कार्यकुशलता, कार्य विशिष्टिकरण तथा औपचारिक सम्बन्ध सम्मिलित किया जाता है।'' यह सिद्धान्त तथा इसके तत्व संगठन के उच्च स्तरों, कार्यरत कार्यपालक अधिकारियों के कार्य एवं व्यवहार से सम्बन्धित हैं। इसी क्रम में उर्विक ने नेतृत्व के लिए स्वास्थ्य या शारीरिक क्षमता, समझदारी एवं मानसिक शक्ति, नैतिकता, समानता तथा प्रबन्धकीय योग्यताओं को आवश्यक बताया है।
4. संगठन में 'सूत्र' एवं 'स्टाफ' अवधारणा को अपनाने के क्रम में उर्विक ने स्पष्टता से एवं विस्तारपूर्वक लिखा है कि "यह अवधारणा हमने सैन्य प्रशासन से ग्रहण की है, जबकि इसे व्यवसाय प्रशासन एवं लोक प्रशासन में ज्यों का त्यों अपनाना कठिन है। सैन्य प्रशासन में सूत्र एवं स्टाफ की अवधारणा कम से कम

चार स्थितियों, यथा- सूत्र, व्यक्तिगत स्टाफ, विशेष स्टाफ तथा सामान्य स्टाफ को स्पष्ट करती है। इसी के अनुरूप इन्हें कार्य, सत्ता तथा उत्तरदायित्व दिए जाते हैं।''

5. उर्विक ने अपनी प्रथम पुस्तक 'The Meaning of Rationalisation' (वर्ष 1929) में उस दौर में लोकप्रिय हो रही वैज्ञानिक प्रबन्ध की अमेरिकी विचारधारा तथा इस सम्बन्ध में ब्रिटेन द्वारा अपनायी गई सावधानियों का वर्णन भी किया है।

इसके अतिरिक्त उर्विक ने नौकरशाही संगठन के क्रम में लिखा है "यदि मानवीय सहयोग की व्यवस्थाऐं एक निश्चित आकार लेने के बाद विकसित होने लगती हैं, तो संगठन का नौकरशाही प्रारूप स्वतः ही अनिवार्य हो जाता है।'' उनकी दृष्टि में बहुत सारे कारणों तथा गुणों से युक्त नौकरशाही स्वयं को अपरिहार्य बना देती है। इसी प्रकार उर्विक द्वारा विगत सदी के तीसरे दशक में रॉवण्ट्री एण्ड कम्पनी में ओलिवर शेल्डन के साथ 'नीतिपरक आदर्शवाद' (Ethical Idealism) विषय पर किया गया कार्य, मानव-सम्बन्धों के हाथोर्न प्रयोगों से मिलता-जुलता माना जाता है, किन्तु यह प्रयोग पूर्ण सफल नहीं कहा जा सकता है।

8.6 लोक प्रशासन और निजी प्रशासन में समानता

इस प्रकार उर्विक यह भी मानते हैं कि लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन समान हैं, अर्थात् इनमें भेद करना ना तो आवश्यक है और ना ही सहज है। इस क्रम में उर्विक कहते हैं "जिस प्रकार सभी व्यक्तियों के लिए सभी विषय समान होते हैं, अर्थात् बैंक कार्मिकों के लिए जीव रसायन विज्ञान वैसा ही होता है जैसा अन्य के लिए है या राजनेताओं के लिए मनोरोग विज्ञान, सामान्य व्यक्तियों जैसा ही है; इसी प्रकार सभी प्रशासन सभी के लिए समान ही हैं।'' उर्विक मानते हैं कि एक सीमा तक लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन का अपनी-अपनी प्रकृति या लोकाचार या स्वभाव होता है तथा दोनों एक-दूसरे से सीखते हैं। प्रशासन और प्रबन्ध की भ्रान्ति के क्रम में भी उर्विक का यह मानना रहा है कि "यह दोनों शब्द अन्तर-परिवर्तनीय रहे हैं। 'प्रशासन' शब्द मुख्यतः लोक प्रशासन के सन्दर्भ में तथा 'प्रबन्ध' शब्द व्यवसाय प्रशासन के क्रम में अधिक प्रयुक्त हुआ है। हाँ यह सही है कि प्रशासन विशिष्ट एवं व्यापक गतिविधि है, जिसे समस्त प्रकार की क्रियाओं के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।'' उर्विक अपनी बात आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं "प्रशासनिक संगठन अभी एक अछूता क्षेत्र है तथा इसे भली भाँति समझने के लिए कई अज्ञात कारणों का पता लगाना नितान्त आवश्यक है।''

8.7 उर्विक की आलोचना

लिण्डल एफ0 उर्विक की उनके लेखन या विचारों के लिए कभी भी व्यक्तिगत रूप से अधिक आलोचना नहीं हुई है, बल्कि उनकी आलोचना प्रशासन या संगठन के परम्परागत या शास्त्रीय दृष्टिकोण के समर्थक होने के नाते उसी सन्दर्भ में की गई है। इन आलोचकों में हरबर्ट साइमन तथा वाल्डो को अग्रणी माना जाता है। यह आलोचनाऐं इस प्रकार हैं-

1. साइमन के अनुसार, यांत्रिक दृष्टिकोण के कुछ मान्य सिद्धान्तों विशेषकर कार्य-विभाजन, आदेश की एकता, पदसोपान तथा नियंत्रण के क्षेत्र के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी बातें विद्यमान हैं। साइमन ने इन प्रशासनिक सिद्धान्तों को मात्र कहावतें या लोकोक्तियां या मुहावरे करार दिया है।
2. बहुत से विद्वानों ने उर्विक एवं अन्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित संगठनात्मक सिद्धान्तों को मात्र अनुभव दर्शन पर आधारित नियम बताया है, क्योंकि इन्हें विस्तृत परीक्षणों के परिणामों के आधार पर प्रतिपादित नहीं किया गया है।

3. उर्विक के सिद्धान्तों को भी आदर्शात्मक बताया जाता है, क्योंकि इनमें 'क्या होना चाहिए' पर बल है ना कि 'क्या है' पर। अतः ये सिद्धान्त व्यवहारवाद के विपरीत हैं।
4. संगठन के परम्परागत सिद्धान्तों की यह कहकर भी आलोचना की जाती है कि इनमें संरचना पर अधिक बल दिया गया है, संगठन को 'बन्द इकाई' माना गया है, आर्थिक प्रोत्साहनों पर जोर दिया गया है तथा व्यक्ति को मशीन की तरह विश्लेषित किया गया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी सकारात्मक पक्ष यह है कि संगठन के अध्ययन के लिए आज भी परम्परागत उपागम तथा सिद्धान्त ही मूलाधार बने हुए हैं तथा उर्विक ने इन सिद्वान्तों को निरन्तरता प्रदान की है। ब्रिटेन में प्रबन्ध तथा प्रशासन के सिद्धान्तों को लोकप्रिय एवं मान्य बनाने में उर्विक का योगदान सर्वाधिक रहा है।

8.8 उर्विक का मूल्यांकन

उर्विक के सिद्धान्तों की आलोचना करते हुए आलोचक यह तर्क देते हैं कि उनके सिद्धान्त केवल अनुभव और दर्शन पर आधारित हैं। उनका कोई प्रयोगात्मक आधार नहीं है। साइमन जैसे विचारक लोक प्रशासन के सिद्धान्तों को 'कहावतें' कहकर उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। उर्विक द्वारा संगठन के औपचारिक पहलुओं पर ज्यादा ध्यान देने और मानवीय पक्षों की अवहेलना करने का आरोप भी लगाया जाता है। साथ ही उर्विक का दृष्टिकोण 'यांत्रिक' या 'मैकनिस्टिक' होने के कारण आलोचनाओं का शिकार होता है। इन आलोचनाओं के बावजूद उर्विक के विचारों का लोक प्रशासन पर व्यापक प्रभाव है और लोक प्रशासन उनके योगदान के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. उर्विक की पुस्तक का क्या नाम है? और इसका प्रकाशन कब हुआ?
2. यह किसने कहा, "डिजाइन का अभाव संगठन को अतार्किक, निर्मम, अपव्ययी तथा अकार्यकुशल बनाता है।''
3. उर्विक के अनुसार एक निरीक्षक अपने अधीन कितने अधीनस्थों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित कर सकता है?
4. उर्विक ने संगठन के कितने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया?
5. उर्विक सम्बद्ध है, शास्त्रीय विचारधारा या मानव सम्बन्ध विचारधारा से।
6. उर्विक निम्न में से किस तर्क के समर्थक हैं? निजी व लोक प्रशासन एक-दूसरे के विरोधी हैं या लोक प्रशासन व निजी प्रशासन समान हैं।

8.9 सारांश

यह दुर्भाग्य की बात है कि लूथर गुलिक के साथ ही लिण्डल एफ0 उर्विक का नाम लिया जाता है, जबकि उर्विक के अपने विचार भी काफी महत्वपूर्ण एवं मौलिक है। उर्विक भी प्रशासन के शास्त्रीय विचारक माने जाते हैं। उर्विक ने प्रशासन और प्रबन्ध पर अनेक पुस्तकें लिखी, जो प्रशासन व प्रबन्ध को उनकी अमूल्य धरोहर है। सन् 1943 में प्रकाशित 'दी एलीमेन्ट्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचनाओं में से एक है।

एक शास्त्रीय विचारक के रूप में उर्विक संगठन के कतिपय सिद्धान्तों की पहचान करते हैं। प्रारम्भ में वे संगठन के आठ सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। पर बाद में यह संख्या बढ़कर 29 हो जाती है। उर्विक संगठन में सूत्र तथा स्टाफ पर भी विस्तार से विचार करते हैं। वे लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन को अलग-अलग बताने वाले विचारों की आलोचना करते हैं।

8.10 शब्दावली

पदसोपान- सीढ़ीनुमा आकार में पदों की व्यवस्था, जिसमें उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों पर नियंत्रण रखते हैं।
विशेषीकरण- एक व्यक्ति को वही कार्य दिया जाना चाहिए जिसे करने की वह विशेष योग्यता रखता हो।
समन्वय- संगठन के विभिन्न विभागों के बीच सामजंस्य होना ताकि दोहराव या टकराव की स्थिति न हो।
प्रशासनिक कौशल- जो सिर्फ ज्ञान पर आधारित नहीं होता वरन् प्रशासन के लम्बे अनुभव, मेहनत और व्यवहार पर आधारित होता है।

8.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'एलीमेन्ट्स ऑफ एडमिनिशसट्रेशन' 1943 में, **2.** उर्विक, **3.** 5-6, **4.** 29, **5.** शास्त्रीय विचारधारा, **6.** लोक प्रशासन व निजी प्रशासन समान है।

8.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुलिक एवं उर्विक, पेपर्स ऑन द साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, आई0पी0ए0, न्यूयार्क, 1937
2. श्री राम माहेश्वरी, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स, मैकमिलन, 1998
3. लिण्डल उर्विक, द एलीमेन्ट्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, पिटमैन, 1947
4. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
5. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

8.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

8.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उर्विक द्वारा प्रतिपादित संगठन के सिद्धान्त का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. उर्विक के प्रशासनिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 9 मेरी पार्कर फोलेट

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 मेरी पार्कर फोलेट- एक परिचय
9.3 फोलेट के प्रशासनिक विचार
    9.3.1 रचनात्मक संघर्ष
    9.3.2 संगठन में आदेश
    9.3.3 समन्वय
    9.3.4 नेतृत्व
9.4 फोलेट के अन्य विचार
9.5 फोलेट का योगदान
9.6 आलोचनात्मक मूल्यांकन
9.7 सारांश
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

प्रशासनिक चिन्तकों में मेरी पार्कर फोलेट का विशिष्ट स्थान है। उन्हें "प्रबन्ध में भविष्यवक्ता'' की संज्ञा दी जाती है। उनके विचार 'समय से पहले' के विचार हैं। अर्थात नेतृत्व, एकीकरण, मेलजोल, समूह भावना तथा मानव-सम्बन्धों के क्रम में जो सिद्धान्त फोलेट ने 20वीं सदी के द्वितीय एवं तृतीय दशक में प्रस्तुत किए, उन्हें प्रबन्ध के क्षेत्र में पांचवे एवं छठे दशक में अपनाया गया। उर्विक एवं ब्रेच लिखते हैं कि 'फोलेट ने अपने विश्वासों को दर्शाने के लिए जीवन के हर क्षेत्र से उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जैसे- सरकार के कार्य, उद्योग, व्यापार, गृह-युद्ध, शान्ति, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ आदि।' उनकी लेखनी व्यवहारिक बुद्धि, अन्तःप्रज्ञा की गहरी सोच, अविभागीयकृत सोच और लोकतांत्रिक गत्यात्मकता का भण्डार है। यह उल्लेखनीय है कि प्रशासन की शास्त्रीय विचारधारा और वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा, फोलेट के दर्शन से काफी प्रभावित थे। फोलेट का मुख्य कार्य 'सम्बन्धों के मनोविज्ञान' पर केन्द्रित रहा है। नेतृत्व, सत्ता, रचनात्मक संघर्ष या मनमुटाव, एकीकरण, समूह भावना, समन्वय, नियंत्रण, अभिप्रेरणा, संगठनों की नेटवर्किंग तथा मानव सम्बन्धों इत्यादि के सन्दर्भ में व्यापक सिद्धान्त प्रस्तुत करने वाली फोलेट के लिए डेनियल ए0 रेन ने कहा है कि "ऐतिहासिक अनुक्रम में फोलेट वैज्ञानिक प्रबन्ध के दौर का प्रतिनिधित्व करती हैं, जबकि दार्शनिक दृष्टि से वे 'सामाजिक मानव' युग का प्रतिनिधित्व करती हैं।''

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- फोलेट के प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय विचारों को समझ पायेंगे।
- राजनीति, प्रशासन, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र तथा समाजशास्त्र के क्रम में उनके विचारों से अवगत होंगे।
- समाज सेविका, दर्शनशास्त्री, प्रबन्ध विज्ञानी, समाजशास्त्री, संगठन की नव-शास्त्रीय विचारधारा की समर्थक तथा मानवतावादी चिन्तन के रूप में फोलेट के योगदान को समझ पायेंगे।

9.2 मेरी पार्कर फोलेट- एक परिचय

अमेरिका के बोस्टन शहर में 1868 में जन्मी फोलेट ने दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, कानून एवं राजनीति विज्ञान में शिक्षा प्राप्त की। अपने भाषणों में दिन-प्रतिदिन के जीवन तथा समाज में विद्यमान छोटी-छोटी किन्तु व्यवहारिक बातों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करने वाली फोलेट तत्कालीन अमेरिका के श्रेष्ठ वक्ताओं में एक मानी जाती थी। उनके प्रशासनिक एवं प्रबन्धकीय विचारों को आगे बढ़ाने तथा मानवता के कल्याण के लिए बोइस शहर में 'Mary Parker Fullet Foundation' स्थापित किया गया है।
मेरी पार्कर फौलेट की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं-

1. The Speakers of the House of Representatives(1896)
2. The New States(1918)
3. Creative Experiences(1924)
4. Dynamic Administration: The Collected Papers of Marry Parker Follett (उर्विक व मेटकॉफ द्वारा सम्पादित)

9.3 फोलेट के प्रशासनिक विचार

मेरी पार्कर फोलेट का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान संघर्षों के रचनात्मक पहलुओं पर विचारों के रूप में माना गया है। यहाँ संघर्षों से तात्पर्य संगठन में उत्पन्न संघर्षों से हैं। संघर्ष की स्थिति व्यक्ति के जीवन में कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं है। आज हम संघर्ष के युग में जी रहे हैं। संगठन केवल व्यक्ति के जीवन तक ही सीमित नहीं है, अपितु संगठनों में भी संघर्ष व्याप्त है। संघर्ष एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति या इकाई किसी उद्देश्य के लिए दूसरे को रोकने का प्रयास करती है, जिसके परिणामस्वरूप दूसरा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में और अपने हितों के संवर्द्धन में सफल नहीं हो पाता है। साधनों की सीमितता, लक्ष्यों की विविधता, व्यक्तियों में भेद, परिवर्तन, संचार की कमी आदि के कारण संगठनों में संघर्षों का जन्म होता है। सामान्यतया संघर्षों को नकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है परन्तु फोलेट ने संघर्ष के रचनात्मक पहलुओं की ओर प्रबन्ध का ध्यान आकर्षित किया।

9.3.1 रचनात्मक संघर्ष

मेरी पार्कर फोलेट 'रचनात्मक संघर्ष' का विचार प्रस्तुत करती हैं और संघर्षों को संगठन की प्रत्येक क्रिया में एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करती हैं। उनका विचार है कि संघर्ष ना तो अच्छा है और ना ही बुरा। बल्कि यह तो एक सामान्य घटना है, जिसको बिना किसी भावना और नैतिक पूर्व निर्णय के रूप में स्वीकार करना चाहिए। अपनी रचना 'डायनैमिक एडमिनिस्ट्रेशन' में फोलेट कहती हैं कि संघर्ष कोई युद्ध की स्थिति नहीं होती। यह तो सिर्फ मतभेदों की उपस्थिति को दर्शाता है। ये मतभेद राय अथवा हितों के हो सकते हैं। राय और हितों के मतभेद

संगठन में केवल नियोक्ता और कर्मचारी के बीच, निदेशकों के बीच भी उपस्थित हो सकते हैं। चूँकि व्यक्तिगत मतभेद कभी भी समाप्त नहीं किए जा सकते, अतः संगठनों से संघर्षों को कभी समाप्त नहीं किया जा सकता। जब संघर्ष अपरिहार्य और ना टाला जाने वाला होता है तो इसकी आलोचना करने और इसे बुरा बताने के बजाए इसका सकारात्मक उपयोग लेने की कोशिश करनी चाहिए। यही फोलेट का रचनात्मक संघर्ष का विचार था। फोलेट कहती हैं "हर चमक घर्षण से पैदा होती है। जब हम वायलिन पर घर्षण करते हैं, तभी संगीत प्राप्त होता है और जब हमने घर्षण से अग्नि का अविष्कार किया तो हमने असभ्य अवस्था को छोड़ दिया।"

जब संघर्ष अपरिहार्य है तो इसे किस प्रकार रचनात्मक बनाया जाए? फोलेट ने संघर्षों को सुलझाने की तीन विधियों का उल्लेख किया- प्रभुत्व, समझौता तथा एकीकरण।

1. **प्रभुत्व-** फोलेट की दृष्टि में प्रभुत्व का अर्थ एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष पर विजय प्राप्त कर लेना है। यद्यपि संघर्षों के समाधान की यह विधि आसान प्रतीत होती है, तथापि फोलेट ने इसका पूर्ण समर्थन नहीं किया है। इसका कारण यह है कि प्रभुत्व में दबाव, बल प्रयोग, धमकी या दूसरों के हितों पर चोट करते हुए अपने स्वार्थों की पूर्ति की जाती है। अतः पराजित पक्ष सदैव बदला लेने की फिराक में अवसर की प्रतीक्षा करता रहता है। वस्तुतः प्रभुत्व विधि से संघर्ष का समाधान नहीं होता है, बल्कि वह कुछ समय के लिए दब जाता है। इसी क्रम में कहा जाता है कि प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् जर्मनी पर दबावपूर्ण जो शर्तें थोपी गई थीं, उन्होंने अन्ततः दूसरे विश्व युद्ध को जन्म दिया। अतः संघर्षों के समाधान हेतु प्रभुत्व विधि का यथासम्भव कम से कम उपयोग करना चाहिए।
2. **समझौता-** समझौता संघर्ष समाधान का वह तरीका है, जिसमें प्रत्येक पक्ष अपनी कुछ मांगों को छोड़ देता है और इस प्रकार शान्ति स्थापित करने के लिए अपनी कुछ मांगों का परित्याग करके संघर्ष से समझौता कर लेता है। संघर्ष के समाधान के समझौते का तरीका प्रभुत्व की तुलना में अधिक प्रभावी होता है, क्योंकि समझौते में किसी पक्ष को दबाया नहीं जाता और स्वेच्छा से दोनों पक्ष अपनी कुछ इच्छाएँ त्यागने को तैयार हो जाते हैं। चूँकि इसमें प्रत्येक पक्ष को कुछ इच्छाएँ त्यागनी पड़ती हैं, अतः कोई भी पक्ष इसे पसन्द नहीं करता है, वरन् समझौते मजबूरी में किए जाते हैं। उदाहरण के लिए भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर संघर्ष के समाधान के लिए 'ताशकन्द सन्धि' या 'शिमला समझौते' जैसी समझौतात्मक कार्यवाही हुई। परन्तु ये दोनों ही कश्मीर संघर्ष का स्थाई समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके और संघर्ष पुनः पैदा हो गया। समझौता तभी सफल रह सकता है, जब दोनों पक्ष ईमानदारी से समझौते का सम्मान करें, जो कि वस्तुतः काफी कठिन होता है।
3. **एकीकरण-** संघर्ष समाधान के तीसरे तरीके के रूप में फोलेट एकीकरण का जिक्र करती हैं। फोलेट संघर्ष समाधान के सबसे सन्तोषजनक और प्रभावी उपाय के रूप में एकीकरण की पहचान करती हैं। एकीकरण में दोनों पक्षों की इच्छाओं को एकीकृत कर दिया जाता है और किसी भी पक्ष को अपनी इच्छाओं का परित्याग नहीं करना पड़ता। फोलेट समझौते से अधिक प्रभावी एकीकरण को मानती है, क्योंकि समझौते में कुछ भी नया रचित नहीं किया जाता, बल्कि यह उपस्थित स्थिति से ही सम्बन्ध रखता है। जबकि एकीकरण कुछ नया बनाता है, अविष्कार करने को प्रेरित करता है तथा नए मूल्यों का इससे जन्म होता है। एकीकरण संघर्ष की जड़ों तक जाता है और इसके स्थाई समाधान का प्रयास करता है। यदि हम किसी संघर्ष का समाधान समझौते से करते हैं तो संघर्ष किसी दूसरे रूप में प्रकट हो सकता है, क्योंकि लोगों को अपनी कुछ इच्छाएँ त्यागनी पड़ती हैं। फोलेट औद्योगिक और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों के उदाहरण से इस बात को स्पष्ट करती हैं। इसके विपरीत एकीकरण संघर्ष का स्थाई समाधान प्रस्तुत करता है। एकीकरण का उदाहरण देते हुए फोलेट कहती हैं, "हॉवर्ड विश्वविद्यालय के एक छोटे से कमरे की खिड़की को एक

महाशय खोलना चाहते थे, जबकि मैं उसे बन्द ही रखना चाहती थी। हमने अगले कमरे की खिड़की खोल दी जिसमें कोई भी नहीं था। यह समझौता नहीं था, क्योंकि हम दोनों को बिना कोई इच्छा छोड़े वह मिल गया जो हम चाहते थे। मैं बन्द कमरा चाहती थी, क्योंकि मैं नहीं चाहती थी कि उत्तरी वायु सीधे मेरी ओर बहे, इसी प्रकार दूसरा व्यक्ति भी किसी विशिष्ट खिड़की को नहीं खोलना चाहता था। वह तो सिर्फ कमरे में अधिक वायु चाहता था।''

फोलेट जहाँ एकीकरण के लाभों का जिक्र करती हैं, वहीं इसकी प्राप्ति में आने वाली कठिनाइयों से भी अनभिज्ञ नहीं हैं। हर तरह के संघर्ष का समाधान एकीकरण से सम्भव नहीं हो सकता। फोलेट उदाहरण देते हुए कहती हैं कि जब दो व्यक्ति किसी एक ही महिला से विवाह करना चाहते हों तो वहाँ एकीकरण की कोई गुंजाइश नहीं होती। कुछ मामलों में तो एकीकरण असम्भव ही होता है, पर फिर भी इसके लाभों के कारण वह प्रभुत्व और समझौते से अधिक प्रभावी और स्थाई तरीका है।

फोलेट एकीकरण प्राप्त करने के चरणों का उल्लेख करते हुए इसके निम्न चरण बताती हैं-

- एकीकरण के प्रथम चरण के रूप में फोलेट कहती हैं कि हमें सर्वप्रथम अपने मतभेदों को स्पष्ट करना चाहिए। जब तक हम यह नहीं जानते कि हमारे मतभेद क्या हैं? तब तक एकीकरण की आशा नहीं कर सकते। इसलिए सर्वप्रथम हमें संघर्ष में निहित वास्तविक मुद्दों की स्पष्ट पहचान करनी आवश्यक है।
- दूसरे चरण में हमें संघर्ष की समस्या के समग्र को कुछ भागों में तोड़ना पड़ता है। इसके लिए हमें संघर्ष में निहित मांगों को पहचान कर उनको संघटन भागों में बांटना पड़ता है। इस चरण में उन मांगों को अन्य मांगों से अलग कर लिया जाता है, जिनकी पूर्ति आवश्यक होती है। इस प्रकार हम समस्या से सम्बन्धित मुख्य मांगों तक ही अपने आपको केन्द्रित कर पाते हैं, जो संघर्ष समाधान के लिए आवश्यक होता है।
- संघर्ष समाधान का तीसरा चरण पूर्वानुमान है। इसमें संघर्ष के प्रति भिन्न तरीके से जवाब दिया जाता है। इसके लिए फोलेट एक उदाहरण देती हैं। वे कहती हैं कि एक व्यक्ति को कार चलाना अच्छा लगता है, जबकि उसकी पत्नी पैदल चलना पसन्द करती है। वह व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रत्युत्तर को अच्छी तरह जानता है। फोलेट केवल प्रत्युत्तरों के पूर्वानुमान को ही पर्याप्त नहीं मानती, अपितु उनके निर्माण की भी वकालत करती हैं। प्रत्युत्तर, रेखीय या चक्रिक हो सकते हैं। चक्रिक प्रत्युत्तर संघर्ष पर अधिक अच्छे से प्रकाश डालता है। फोलेट के मत में चक्रिक व्यवहार(Circular Behaviour) रचनात्मक संघर्ष की कुँजी है।

यद्यपि एकीकरण संघर्ष के समाधान की प्रभावी विधि है, फिर भी इसमें कई बांधाएँ हैं। ये बांधाएँ इस प्रकार हैं-

क. एकीकरण के लिए उच्च बुद्धि, गहन बोध तथा श्रेष्ठ खोजी प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है। जब तक बुद्धिमता और खोजी प्रवृत्ति नहीं होगी,संघर्षों का एकीकरण से समाधान मुश्किल होता है।

ख. एकीकरण की दूसरी बांधा यह है कि लोग प्रभुत्व की स्थिति का आनन्द लेते हैं और जब तक प्रभुत्व रहता है, एकीकरण मुश्किल होता है।

ग. समस्याओं को सैद्धान्तिक जामा पहना देना भी एकीकरण की एक बांधा है।

घ. उपयोग में ली गई भाषा एकीकरण के मार्ग में चौथी बांधा है। फोलेट के मत में भाषा मेल कराने वाली होनी चाहिए ना कि संघर्षो को और बढ़ाने वाली। कई बार भाषा नये विवाद खड़े कर देती है।

ङ. नेताओं द्वारा पैदा किया गया अनावश्यक प्रभाव एकीकरण की पांचवीं बांधा है।

च. प्रशिक्षण का अभाव एकीकरण की सबसे बड़ी बाँधा है। वे कहती हैं कि संगठन के प्रबन्धकों और श्रमिकों को सहकारी सोच के विकास की शिक्षा देनी चाहिए।

इस प्रकार फोलेट संघर्षों के विविध आयामों का उल्लेख करते हुए रचनात्मक संघर्ष का विचार प्रस्तुत करती हैं और संघर्षों के रचनात्मक उपयोग की वकालत करती हैं।

9.3.2 संगठन में आदेश

आदेश देना संगठन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। मेरी पार्कर फोलेट संगठन में आदेश देने के विविध पहलुओं का परीक्षण करती हैं तथा 'निर्वैयक्तिक आदेश' का विचार प्रस्तुत करती है। वे इस बारे में 'स्थिति के नियम' का भी प्रतिपादन करती हैं।

फोलेट आदेश देने के चार महत्वपूर्ण चरण बताती हैं, प्रथम- एक सचेत अभिवृत्ति जो उन सिद्धान्तों को व्यवहार में लाती है, जिसके जरिए किसी मामले पर कार्यवाही करना सम्भव होता है। द्वितीय- एक जिम्मेदाराना अभिवृत्ति जिससे यह तय हो कि किन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। तृतीय- एक प्रयोगात्मक अभिवृत्ति जिससे प्रयोग किए जाएँ और परिणाम देखे जाएँ तथा चतुर्थ- परिणामों को एकत्रित करना।

प्राय: लोग आदेश देने सम्बन्धी सिद्धान्तों को जाने बिना ही आदेश देते हैं। सर्वप्रथम आदेश देने वाले को उन सिद्धान्तों की जानकारी होनी आवश्यक है, जिनके आधार पर आदेश दिए जाते हैं। इन सिद्धान्तों को पहचानने के बाद ही व्यक्ति को उनके अनुसार ही आदेश देने चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि दिए गए हर आदेश का पालन किया जाएगा। आदेश की पालना कई कठिनाइयों से घिरी है। कई बार अपनी पुरानी आदतों के कारण लोग आदेशों का पालन नहीं करते, क्योंकि वे अपनी आदतों के विपरीत आदेश पालन नहीं करना चाहते। आदेश देने से पहले नियोक्ता को आदेशों की पालना सुनिश्चित करने के लिए कर्मचारियों की 'आदतों' के निर्माण के साधनों और तरीकों पर विचार करना चाहिए। इसके लिए फोलेट निम्न सुझाव देती हैं-

1. अधिकारियों को नई विधियों की वांछनीयता देख लेनी चाहिए।
2. दूसरे ऑफिस के नियमों को इस प्रकार परिवर्तित किया जाए ताकि, अधिकारी नई विधियों को अपना सकें।
3. पहले ही कुछ लोगों को नई विधियां अपनाने के लिए विश्वास में ले लिया जाना चाहिए, ताकि एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके।
4. अन्तिम बात अभिव्यक्त किए जाने वाले व्यवहार को तीव्र बनाना कहते हैं। यह आदेशों की स्वीकृति का रास्ता तैयार करता है।

फोलेट कहती हैं कि आदेशों के प्रत्युत्तर उन स्थानों और परिस्थितियों पर निर्भर रहता है, जिनमें आदेश दिए जाते हैं। फोलेट कहती है कि "किसी आदेश के प्रति अनुकूल प्रत्युत्तरों की शक्ति उस दूरी के व्युत्क्रमानुपाती(inverso ratio) होती है जो कि आदेशों द्वारा तय की जाती हैं।''

'आदेश देने' तथा 'आदेश ना देने' के मामले में मालिकानापन (bossism) से बचने के लिए फोलेट 'आदेशों के निर्वैयक्तिकरण' का सुझाव देती हैं तथा 'स्थिति के नियम' का प्रतिपादन करती हैं। फोलेट कहती हैं कि किसी को, अन्यों को आदेश नहीं देना चाहिए, बल्कि दोनों को 'स्थिति' से ही आदेश ग्रहण करने चाहिए। जब सभी व्यक्ति स्थिति से ही आदेश ग्रहण करें तो आदेश देने तथा आदेश के पालन करने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। उनके मत में जैसी स्थिति मॉग करती है, उसी के अनुसार निर्णय लेना चाहिए। इस बात का सम्बन्ध सिर्फ इस बात से है कि सत्ता 'स्थिति' से जुड़ी होती है। वह एक उदाहरण देती है कि, अपनी मॉ के कहने पर उसका लड़का पहले तो पानी की बाल्टी लाने से मना कर देता है, पर बाद में ले आता है। इस मामले में वह आदेश पर गुस्सा होता है, पर स्थिति की मांग को पहचानता है। फोलेट यह भी कहती है कि चूँकि स्थिति सदैव परिवर्तनशील होती है, अतः

आदेश भी कभी स्थिर नहीं रह सकते। इस प्रकार फोलेट संगठन की महत्वपूर्ण समस्या, आदेश देने का विस्तार से परीक्षण करती है और 'स्थिति' को आदेशों का मूल मानती है।

9.3.3 समन्वय

समन्वय, प्रबन्ध का अति महत्वपूर्ण कार्य है। फोलेट के मत में समन्वय का अभाव किसी भी संगठन की मुख्य कमजोरी होती है। उनके मत में समन्वय संगठन के विभिन्न भागों को सामंजस्यपूर्ण तरीके से व्यवस्थित करना है। फोलेट प्रभावी समन्वय के निम्न सिद्धान्त प्रतिपादित करती हैं-

1. **प्रत्यक्ष सम्पर्क का सिद्धान्त-** संगठन में समन्वय स्थापना के सचेत प्रयास किए जाते हैं। कुछ व्यक्तियों को समन्वय स्थापना की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। फोलेट के प्रत्यक्ष सम्पर्क के सिद्धान्त के अनुसार समन्वय की जिम्मेदारी रखने वाले व्यक्तियों को एक-दूसरे के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क रखने चाहिए। यह समन्वय की प्रक्रिया को सुगम बनाता है। सरकारी-तंत्र में समन्वय की विफलता का एक प्रमुख कारण यह है कि यहाँ पत्रों या आदेशों के माध्यम से समन्वय करने का प्रयास किया जाता है, जो प्रभावी सिद्ध नहीं होता है।
2. **प्रारम्भिक अवस्थाओं का सिद्धान्त-** समन्वय संगठन का सार है, अतः फोलेट सुझाव देती है कि समन्वय की स्थापना नीति-निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही शुरू हो जानी चाहिए। प्रारम्भिक अवस्थाओं में ही समन्वय की स्थापना करने का प्रयास किया जाना चाहिए, क्योंकि बाद में इसकी स्थापना काफी कठिन हो जाती है।
3. **पारस्परिक सम्बन्धों का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार स्थिति के विभिन्न घटकों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध पाए जाते हैं। समन्वय की स्थापना करते समय इन पारस्परिक सम्बन्धों का ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि ये समन्वय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।
4. **सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त-** समन्वय चूँकि एक सतत् प्रक्रिया है, जो संगठन में प्रारम्भ से लेकर आगे तक चलती रहती है। अतः फोलेट समन्वय स्थापना की स्थाई मशीनरी की वकालत करती है। इस प्रकार की स्थाई मशीनरी काफी उपयोगी रहती है। इसके साथ-साथ सूचना आधारित सतत् अनुसंधान के महत्व पर भी जोर देती है।

9.3.4 नेतृत्व

नेतृत्व को एक वृत्ताकार घूमने वाली प्रक्रिया बताने वाली मेरी पार्कर फोलेट ने अपनी पुस्तक 'The New State' में लिखती हैं कि ''अब हमें इस बात पर कम बल देना चाहिए कि नेता अपने समूह को प्रभावित करता है, बल्कि अब इस दिशा में सोचना चाहिए कि नेता को समूह प्रभावित करता है। एक-दूसरे को प्रभावित करने की यह प्रक्रिया दोनों ओर से चलती है। जब तक यह प्रवाह निरन्तर चलता है, तब तक नेतृत्व भी प्रभावशाली रहता है, अन्यथा प्रभावशाली नेतृत्व समाप्त हो जाता है। अतः नेतृत्व को समझने के लिए हमें केवल यह नहीं सोचना चाहिए कि नेता, समूह के लिए क्या करता है, बल्कि यह भी सोचना है कि समूह, नेता के प्रति क्या करता है?'' फोलेट ने नेतृत्व के तीन प्रकार बताए हैं, पहला- पद से उपजा नेतृत्व, दूसरा- व्यक्तित्व से उपजा नेतृत्व और तीसरा- कार्य से उपजा नेतृत्व।

फोलेट ने 'पद' से उपजे नेतृत्व को सत्ता से सम्बन्धित नेतृत्व भी बताया है, क्योंकि यह औपचारिक स्थिति का परिचायक है। व्यक्तित्व से उपजे नेतृत्व को वे बाध्य करने वाला नेतृत्व करार देती हैं, क्योंकि ऐसे नेतृत्व में नेता प्रभुत्व स्थापित कर सकता है। चूँकि अनुयायी अपने नेता के गुणों से प्रभावित रहते हैं, अतः वे दबाव में भी कार्य कर देते हैं। तीसरी श्रेणी में कार्य से उपजा नेतृत्व है जो 'स्थिति' पर निर्भर करता है। फोलेट ने कई दशक पूर्व ही यह

कल्पना कर ली थी कि आने वाले समय में ज्ञान नेतृत्व का उदय होगा जो विशेषज्ञों को 'नियंत्रण' की शक्ति मिलने का पर्याय होगा।

नेतृत्व के कार्यों को स्पष्ट करते हुए फोलेट ने तीन मुख्य कार्य बताए हैं, पहला- समन्वय करना, दूसरा - उद्देश्यों का निर्धारण करना, तीसरा- पूर्वानुमान लगाना।

वस्तुतः फोलेट का मानना है कि नेतृत्व के कार्यों की सूची काफी लम्बी है, किन्तु इस सूची में वे संगठन के उद्देश्यों(कार्यों) को परिभाषित करने, पूर्वानुमान लगाने, समूह के अनुभवों को संगठित या एकीकृत करने, अधीनस्थों में नेतृत्व क्षमता विकसित करने, समन्वय करने तथा मेलजोल बढ़ाने को प्रमुख रूप से सम्मिलित करती हैं। 'सभी नेता जन्मजात नहीं होते हैं, बल्कि नेता तैयार किए जा सकते हैं' इस मान्यता की समर्थक फोलेट ने बहु नेतृत्व तथा छोटे नेताओं की कल्पना की है। वे कहती हैं "संगठन में एक नहीं बल्कि कई अरस्तू होने चाहिए।'' इसी प्रकार फोलेट ने संगठन में समूह चिन्तन, मेलजोल या साहचर्यता(Togetherness) तथा सामूहिकता की अवधारणा पर बल देते हुए एक ऐसी संगठनात्मक संरचना की कल्पना की है, जिसमें व्यक्ति पूर्ण गरिमा तथा प्रतिष्ठा के साथ मिलजुल कर संगठन के लिए योगदान कर सकता है।

9.4 फोलेट के अन्य विचार

फोलेट के विचार बहुआयामी, सामूहिकता पर आधारित तथा मानवतावादी मूल्यों के समर्थन में खड़े सशक्त तर्क दिखाई देते हैं। फोलेट के कतिपय अन्य उल्लेखनीय विचार इस प्रकार हैं-

नियोजन के सन्दर्भ में फोलेट का मत है कि यह स्व-व्यवस्थित(Self Adhusting) तथा स्व-समन्वित(Self Co-ordinating) करने की योजना है।

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के मध्य भेद नहीं मानने वाली फोलेट ने प्रबन्ध को एक पेशे के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है "पेशा वह व्यवसाय होता है, जिसका आधार विज्ञान होता है तथा सेवा उसका लक्ष्य होता है।''

फोलेट का प्रारम्भिक चिन्तन लोकतंत्र, विधायिका तथा सरकार से सम्बन्धित रहा है। टॉयनबी की भाँति विश्व सरकार की कल्पना करने वाली फोलेट ने मतदान पेटी पर आधारित लोकतंत्र को 'भीड़ मनोविज्ञान' से सम्बन्धित अवधारणा बताया है। लोकतंत्र को 'सामाजिक चेतना' तथा 'आध्यात्मिक शक्ति' के निकट मानते हुए वे अपनी पुस्तक 'द न्यू स्टेट' में लिखती हैं, "लोकतंत्र की शिक्षा पालने (Cradle), नर्सरी, खेलकूद, स्कूलों तथा जीवन की प्रत्येक गतिविधि से मिलनी चाहिए। नागरिकता की शिक्षा केवल नागरिकशास्त्र से ही नहीं बल्कि सामाजिक चेतना से भी प्राप्त होनी चाहिए। ..... यही हमारी संस्थाओं का लक्ष्य होना चाहिए।''

वैज्ञानिक प्रभावों एवं तकनीकों को संगठन के हित में अपनाने की वकालत करते हुए फोलेट कहती हैं, "हमें स्मरण रखना चाहिए कि हम मानवीय तथा यांत्रिक समस्याओं को पूर्णतया पृथक नहीं कर सकते हैं।''

फोलेट परम्परागत मतपेटी-लोकतंत्र का विरोध करती थी। उनका मानना था कि यह पद्धति 'Law of Crowd' (भीड़ का कानून) पर टिकी है।

फोलेट ने संगठनों की नेटवर्किंग की भी वकालत की है। नेटवर्किंग से तात्पर्य उस व्यवस्था से है जिसमें बहुत सारे अंग, संस्था या संगठन अन्तरसम्बन्धित होते हुए एक-दूसरे से सूचनाऐं तथा सहयोग का आदान-प्रदान करते हैं।

ऐसा माना जाता है कि संगठनों में परम्परागत पदसोपान के बजाय पार्श्वीय (Lateral) प्रक्रियाओं को महत्व देने की हिमायती फोलेट के विचारों को ही कालान्तर में अपनाया गया, जिनसे आव्यूह (Matrix) संगठनों की पद्धति विकसित हुई। फोलेट की 'विशेषज्ञता की सत्ता सम्बन्धी विचार' भी आव्यूह (Matrix) संगठनों का आधार तत्व सिद्ध हुआ।

लोक प्रशासन के पूर्व प्रोफेसर अल्बर्ट लेपावस्की ने फोलेट को 'लोकतांत्रिक राजनीतिक दर्शनशास्त्री' बताया है। फोलेट के विचारों के आधार पर ही लिकर्ट, आर्गिरिस तथा ड्रकर ने कई प्रकार की अवधारणाऐं विकसित की हैं। इसी प्रकार रॉबर्ट फुल्मर का आकलन है कि फोलेट ने वैज्ञानिक प्रबन्ध, मानव-सम्बन्ध तथा प्रशासन की तीन कड़ियों को सही समय एवं सही स्थान पर एक साथ जोड़ा है।

9.5 फोलेट का योगदान

एक समाज सेविका, दर्शनशास्त्री, प्रबन्ध विज्ञानी, समाजशास्त्री, संगठन की नवशास्त्रीय विचारधारा की समर्थक तथा मानवतावादी चिन्तक के रूप में फोलेट का योगदान अविस्मरणीय है। फोलेट के लेखों को एकत्रित एवं निष्पादित करने वाले मेटकॉफ तथा उर्विक ने इस महान विचारक को 'प्रथम श्रेणी की राजनीतिक एवं व्यवसाय दर्शनशास्त्री' नाम दिया है, क्योंकि फोलेट कभी भी व्यावहारिक रूप से ऐसे किसी पद पर नहीं रही जिसमें परम्परागत ढंग से प्रबन्धक जैसे कार्य करने पड़ते हों। लेकिन राजनीति, प्रशासन, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र तथा समाजशास्त्र के क्रम में उनके विचार अत्यन्त उच्चकोटि के प्रतीत होते हैं। प्रशासन तथा प्रबन्ध से सम्बन्धित उनके अधिसंख्य विचार, लेखों तथा व्याख्यानों के रूप में थे, जो उनकी मृत्योपरान्त प्रकाशित दो पुस्तकों में संकलित किए गए हैं।

9.6 आलोचनात्मक मूल्यांकन

नि:सन्देह फोलेट का प्रबन्ध को योगदान अति विशिष्ट है। उनके विचारों में नवीनता और मौलिकता थी। उनके विचार प्रशासन के लिए लाभदायक हैं, परन्तु आलोचनाओं से परे नहीं हैं। फोलेट के विचारों को अति-आदर्शवादी मान कर उनकी आलोचना की जाती है। साथ ही उनके विचार प्रबन्धकीय अनुभव और वैज्ञानिक अध्ययनों के परिणाम ना होना भी प्रमुख आलोचना है। डी0 ग्विशियानी ने लिखा है कि "उनका दृष्टिकोण विशुद्ध रूप से अनुभवमूलक था तथा उन्होंने संगठन के सामाजिक पहलुओं की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत नहीं की।"

कुछ विचारक फोलेट को 'शास्त्रीय विचारक' के रूप में मानते हैं, जबकि अन्य उनकी यह कह कर आलोचना करते हैं कि उनके विचारों में कुछ भी 'शास्त्रीय' नहीं है। फोलेट की यह कहकर भी आलोचना की जाती है कि उन्होंने संगठनों के प्रबन्ध में सामाजिक पहलुओं को नजर-अन्दाज किया है। एकीकरण पर फोलेट के विचारों को भी भ्रामक कहकर ग्विशियानी उनकी आलोचना करते हैं। इन आलोचनाओं के बावजूद प्रशासनिक विचारधारा को उनका योगदान श्रेष्ठ और पूर्वानुमान करने वाला माना जा सकता है। हैनरी मेटकॉफ तथा लिंडल उर्विक लिखते हैं कि "उनकी अवधारणाऐं अपने समय से काफी आगे थी। वे आज की विचारधारा से भी आगे हैं। उनके सुझाव उस व्यक्ति के लिए सोने की खदान के समान हैं, जिनकी रूचि किसी उद्यम को चलाने में मानवीय सहयोग की स्थापना और उसके संधारण (Maintenance) की समस्याओं में होती है।"

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रभुत्व से फोलेट का आशय क्या है?
2. नेतृत्व की फोलेट ने क्या परिभाषा दी?
3. फोलेट ने संगठन में किस बात की वकालत की?
4. स्थिति का नियम क्या है?
5. फोलेट प्रबन्ध की भविष्यवक्ता क्यों कही जाती है?

9.7 सारांश

'प्रबन्ध की भविष्यवक्ता' मानी जाने वाली मेरी पार्कर फोलेट का प्रबन्ध जगत में अपना अलग ही स्थान है। उनके विचार मौलिक थे तथा प्रबन्ध को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करने वाले थे। परन्तु दुर्भाग्य से उनको जीते-जी अधिक ख्याति प्राप्त ना हो सकी। 'क्रिएटिव एक्सपीरियंस' उनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है।
फोलेट पहली प्रबन्ध विचारक थी, जिन्होंने संगठनों के संघर्षों का रचनात्मक उपयोग लेने की वकालत की। उनका आग्रह था कि संगठन में संघर्षों को ना तो बुरा माना जाना चाहिए और ना ही अच्छा, बल्कि इन्हें संगठन की सामान्य स्थिति मानकर उनका रचनात्मक उपयोग लेने का प्रयास करना चाहिए। फोलेट संगठन में संघर्षों को सुलझाने की तीन विधियों की वकालत करती हैं। प्रथम विधि है प्रभुत्व, जिसके अन्तर्गत संघर्ष के निपटारे के लिए एक पक्ष दूसरे पक्ष पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। पर फोलेट इस विधि को स्थाई संघर्ष समाधान की विधि नहीं मानती। दूसरा तरीका है समझौता, जिसके अन्तर्गत दोनों पक्ष अपनी-अपनी मांगों में से कुछ को छोड़कर समझौता कर लेते हैं। यह विधि प्रभुत्व से बेहतर है। एकीकरण को फोलेट सबसे प्रबल विधि मानती है, जिसके अन्तर्गत दोनों पक्ष अपनी-अपनी इच्छाओं को एकीकृत करके संघर्ष का समाधान करते हैं। परन्तु फोलेट इस बात से भी सचेत थी कि हर स्थिति में एकीकरण सम्भव नहीं है। साथ ही वे एकीकरण की बांधाओं की भी चर्चा करती हैं।

9.8 शब्दावली

बॉसिज्म- अमेरिकी राजनीति में प्रचलित शब्द रहा है, जो पार्टी मुख्या के द्वारा सम्पूर्ण पार्टी को नियन्त्रित करने का अर्थ में लिया गया है।
प्रत्यायोजन- जब एक उच्च अधिकारी अपने अधिनस्थ अधिकारी को कार्य सौंपते समय उसे पूरा करने के लिये आवश्यक अधिकार प्रदान करता है, तो प्रशासन की भाषा में इसे 'प्रत्यायोजन' कहते हैं।
समन्वय- संगठन के विभिन्न विभागों के बीच सामजस्य होना, ताकि दोहराव या टकराव की स्थिति न हो।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रभुत्व का आशय एक पक्ष का दूसरे पक्ष पर जीत प्राप्त करना है।
2. नेता वह व्यक्ति होता है, जो अपने समूह को ऊर्जावान कर सकता है।
3. फोलेट ने संगठन में संघर्ष का रचनात्मक उपयोग लेने की वकालत की।
4. फोलेट के अनुसार जैसी स्थिति मांग करती है, उसी के अनुसार निर्णय लेना चाहिए। यही स्थिति का नियम है।
5. फोलेट की अर्न्तदृष्टि इतनी तीक्ष्ण थी कि उन्होंने जो विचार काफी पहले ही प्रकट कर दिये थे वे 1930 के बाद के हार्थोन प्रयोगों से पुष्ट हुए। इसी कारण वह प्रबन्ध की भविष्यवक्ता कहलाती है।

9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्रीराम माहेश्वरी 'एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स', मैकमिलन, 1998, पृ0 143,
2. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2002,
3. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2012

9.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2002
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2012

9.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. फोलेट के रचनात्मक संघर्ष की अवधारणा का मूल्यांकन कीजिए।
2. प्रशासनिक विचारों के इतिहास में फोलेट के योगदान का वर्णन कीजिए।

इकाई- 10 जार्ज एल्टन मेयो

इकाई की संरचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 मेयो- एक परिचय
10.3 मेयो की मानव सम्बन्धी विचारधारा
10.4 मेयो का हाथोर्न प्रयोग
    10.4.1 प्रकाश प्रयोग
    10.4.2 रिले असैम्बली टैस्ट रूम प्रयोग
    10.4.3 साक्षात्कार अध्ययन
    10.4.4 सामाजिक संगठन प्रयोग या बैंक वायरिंग प्रयोग
10.5 हाथोर्न प्रयोग के परिणाम
10.6 मेयो द्वारा किए गये अन्य प्रयोग
    10.6.1 फिलाडेल्फिया की एक टेक्सटाइल मिल में किए गये प्रयोग(1923)
    10.6.2 उद्योगों में अनुपस्थितिवाद(1943)
10.7 आलोचना
10.8 सारांश
10.9 शब्दावली
10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन का सम्बन्ध लोक सेवाओं के प्रबन्धन से है। लोक प्रशासन का सरकार के हर स्तर से सम्बद्ध रहता है, चाहे वह केन्द्र सरकार हो अथवा राज्य सरकार अथवा स्थानीय शासन। यह लोभ पर आधारित नहीं होता। आधुनिक लोक प्रशासन इस बात की मांग करता है कि लोक प्रशासन मूल्यों पर आधारित है तथा लोक कल्याण से सम्बन्धित है। अतः दूसरे विचाराधात्मक पहलू पर ध्यान दिया जाना चाहिए। लोक प्रशासन से सम्बद्ध कई विचारधाराऐं आयी जैसे शास्त्रीय विचारधारा और वैज्ञानिक विचारधारा। इसी क्रम में 'मानव सम्बन्ध विचारधारा' आयी, जिसके जनक जार्ज एल्टन मेयो हैं।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जार्ज एल्टन मेयो के प्रशासनिक विचारों का अध्ययन कर पायेंगे।
- मेयो की मानव सम्बन्ध विचारधारा से परिचित हो पायेंगे।

- मेयो ने किस प्रकार अनेक प्रयोग किए, प्रयोग द्वारा जो निष्कर्ष निकाले, उन से आप उसको परिचित कराना है।
- यह बताना कि मानव सम्बन्ध विचारधारा ने प्रशासनिक सुधारों को किस प्रकार प्रभावित किया है, साथ ही भविष्य के विचारकों को किस प्रकार राह दिखाई, नीति नियन्ताओं को किस प्रकार प्रभावित किया। इन सब के बारे में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे।

10.2 जार्ज एल्टन मेयो- एक परिचय

जार्ज एल्टन मेयो का जन्म सन् 1880 में एडीलेड (आस्ट्रेलिया) में हुआ। इन्होंने एडीलेड विश्वविद्यालय में अध्ययन किया और सन् 1899 में यहीं से तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। इसके पश्चात मेयो ने एडिनबर्ग, स्काटलैण्ड में मेडिकल की पढ़ाई की। इसके पश्चात वे इग्लैण्ड और पश्चिमी अफ्रीका गये। सन् 1905 में मेयो वापस आस्ट्रेलिया आ गए और उन्होंने मनोविज्ञान में पढ़ाई की। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान मेयो ने घायल सैनिकों की चिकित्सा करके काफी प्रसिद्धि पायी। इसके बाद वे सन् 1919 में क्वींसलैण्ड विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र विभाग के अध्यक्ष बना दिए गये। सन् 1922 में मेयो अमेरिका गए और पेनीसिल्वानिवा विश्वविद्यालय के 'वारटन स्कूल ऑफ फाइनेन्स एण्ड कामर्स' के संकाय सदस्य बन गए। यहाँ के बाद मेयो और उनके साथियों ने प्रसिद्ध हाथोर्न प्रयोग किये। मेयो की जीवन की संध्या इग्लैण्ड में बीती और सन् 1949 में 69 वर्ष की आयु में मेयो का निधन हो गया।

मेयो ने अनेक पुस्तकें लिखी और कुछ लेख प्रकाशित करवाये। मेयो की महत्वपूर्ण पुस्तकें और लेख इस प्रकार हैः-

1. The human Problem of an Industrial Civilization(1933)
2. The Social Problem of an Industrial Civilization(1945)
3. The Political Problem of an Industrial Civilization(1947)
4. Changing Methods in Industry (लेख)
5. Supervision and what is means(लेख)

जार्ज एल्टन मेयो उन प्रमुख प्रशासनिक चिन्तकों में हैं, जिनके शोध-कार्यों ने लगभग तीन शताब्दियों तक अपना प्रभाव बनाए रखा और औद्योगिक समाजशास्त्र एवं मनोविज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मेयो का नाम हाथोर्न प्रयोगों के साथ जुड़ा है जो कि मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की आधारशिला थे। इसी कारण मेयो को मानवीय सम्बन्ध विचारधारा का जनक माना जाता है।

10.3 मेयो की मानवीय सम्बन्ध विचारधारा

मानवीय सम्बन्ध विचारधारा प्रशासनिक दर्शन के इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम है। यह विचारधारा कर्मचारी और नियोक्ता के बीच ढ़ाँचागत तथा कानूनी सम्बन्धों को नहीं, वरन् नैतिक मनोविज्ञान पर आधारित सम्बन्धों को प्रोत्साहित करती है। प्रशासन सरकार का क्रियात्मक अंग है। सरकारी कार्यों तथा सेवा को जनता तक पहुँचाने का माध्यम है। मानवीय सम्बन्ध विचारधारा भी प्रशासन में किस प्रकार उत्पादन को बढ़ाया जाय, इसके लिए मानवीय व्यवहार के अध्ययन पर बल देता है। मशीनीकरण से मानसिक तनाव में वृद्धि हो गई थी। 'मानवीय सम्बन्ध विचारधारा' आने के पीछे तीन कारक थे-

1. सन् 1930 में प्रसिद्ध आर्थिक मन्दी, जिसने इस बात को नकारा कि उन्मुक्त अर्थव्यवस्था कार्यकुशलता बढ़ाती है।
2. साम्यवाद का प्रभाव बढ़ गया था, जिसने मजदूरों में राजनीतिक जागृति पैदा की। मजदूर अपने अधिकारों को जानने व समझने लगे। संगठन में उत्पादन बढ़ाने के लिए आवश्यक हो गया था कि श्रमिकों के मनोविज्ञान को समझा जाय। उन मनोवैज्ञानिक तत्वों को समझना आवश्यक हो गया जो नियोक्ता श्रमिक के सम्बन्ध को निर्धारित करते थे।
3. फ्रेडरिक विन्सलो टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के विरूद्ध प्रतिक्रिया। टेलर ने श्रमिकों को निष्क्रिय प्राणी माना, जिनको कि आर्थिक प्रोत्साहन देकर अभिप्रेरित किया जा सकता है। इसके विपरीत मेयो तथा उनके साथियों ने अपने प्रयोगों तथा अध्ययनों में मनोवैज्ञानिक, शारीरिक, आर्थिक आयामों को ध्यान में रखते हुए श्रमिकों के व्यवहारों और उत्पादन क्षमताओं पर ध्यान दिया। मेयो इसे क्लीनिकल एप्रोच कहते हैं। इन्हीं प्रयोगों के पश्चात् औद्योगिक संगठन में मानवीय तत्व को महत्व दिया जाने लगा और श्रमिक को मशीन का पुर्जा ना मानकर एक जीवन्त प्राणी माना जाने लगा जिसे अनौपचारिक साधनों से अभिप्रेरित किया जा सकता है।

यदि हमारे तकनीकी कौशल के साथ-साथ सामाजिक कौशल भी विकसित हो गया होता तो द्वितीय विश्व युद्ध नहीं होता। जार्ज एल्टन मेयो का यह प्रसिद्ध कथन है, जिन्होंने अपने जीवन की संध्या में द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका को भली-भाँति देखा और समझा था। संगठन में सामाजिक सम्बन्ध और अनौपचारिक समूहों की अवधारणा को रेखांकित करने वाले मेयो का मानवीय चिन्तन प्रथम विश्व युद्ध (सन् 1914 से 18) के दिनों में शुरू हुआ तथा द्वितीय विश्व युद्ध के दिनों में अपने चरम पर पहुँचा। इसे महज संयोग ही कहा जा सकता है कि मेयो ने आधुनिक मानव सभ्यता के दोनों विश्व युद्धों को देखा तथा युद्धों के परिणाम का मानव व्यवहार, सभ्यता और संस्कृति पर इसके प्रभावों को विश्लेषित किया। यद्यपि मेयो के सुप्रसिद्ध 'हाथोर्न प्रयोग' औद्योगिक क्षेत्र से सम्बन्धित थे, तथापि उनके प्रयोगों का दौर विश्व इतिहास की वैज्ञानिक, तकनीकी, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक उठा-पटक का साक्षी रहा है।

सामान्यतः एल्टन मेयो को, हाथोर्न प्रयोगों तथा इन प्रयोगों के परिणामस्वरूप सशक्त तरीके से उभरे मानव सम्बन्ध उपागम के प्रबल समर्थक के रूप में पहचाना जाता है। लेकिन मेयो का चिन्तन औद्योगिक मनोविज्ञान, औद्योगिक समाजशास्त्र, लोकतंत्र एवं व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा औद्योगिक क्षेत्र के समग्र पर्यावरण के विश्लेषण से सम्बन्धित रहा है। मेयो का एक कथन बहुत लोकप्रिय रहा है कि ''हमारी संस्कृति के विनाश का खतरा परमाणु बम से नहीं वरन् स्वयं इस सभ्य समाज से है। ..... यदि इसने सहयोग के बहाने तथा असहयोग से सम्बन्धित कारकों (अवरोधों) को दूर करने का प्रयास नहीं किया तो एक दिन स्वयं अपनी विनाश लीला का साक्षी बनेगा।''

10.4 मेयो का हाथोर्न प्रयोग

मानव सम्बन्ध उपागम को भली- भाँति समझने के लिए हाथोर्न प्रयोगों को जानना आवश्यक है, जिनके परिणामस्वरूप मानव सम्बन्ध सिद्धान्त स्थापित हुआ। यह प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो शहर की 'वेस्टर्न इलेक्ट्रिक कम्पनी' के हाथोर्न नामक स्थान पर स्थित विशाल संयत्र में किए गये थे। आस्ट्रेलिया के जार्ज एल्टन मेयो तथा अमेरिका की रोथलिसवर्जर हाथोर्न प्रयोगों से जुड़े हुए प्रमुख शोधकर्ता थे। इन प्रयोगों का विस्तृत विवरण रोथलिसवर्जर तथा विलियम जे0 डिक्सन द्वारा रचित पुस्तक 'Management and the Ubrker'(1939) में उपलब्ध है। हाथोर्न प्रयोगों में निम्न प्रयोग प्रमुख हैं-

10.4.1 प्रकाश प्रयोग

हाथोर्न प्रयोगों की पहली कड़ी में 'प्रकाश प्रयोग' किए गये। ये प्रयोग सन् 1924 में प्रारम्भ किए गये। इस प्रयोग का मुख्य उद्देश्य इस बात का परीक्षण करना था कि प्रकाश व्यवस्था में परिवर्तन का कर्मचारी की दक्षता और उत्पादकता पर क्या प्रभाव पड़ता है। इससे पहले यह माना जाता था कि अधिक प्रकाश होने से उत्पादन बढ़ता है। इस परीक्षण के लिए कर्मचारियों के दो समूह चुने गए। पहला प्रयोगात्मक समूह था, जिसको कि बदलती हुए प्रकाश व्यवस्था के अन्तर्गत काम करना था। दूसरा समूह नियंत्रित समूह था, जिसको सामान्य प्रकाश व्यवस्था के अन्तर्गत काम करना था। प्रारम्भ में बढ़ती हुई प्रकाश व्यवस्था के अन्तर्गत काम करने वाले समूह का उत्पादन बढ़ा, लेकिन दूसरी ओर आश्चर्यजनक रूप से बिना प्रकाश बढ़ाये ही नियंत्रित समूह का उत्पादन बढ़ गया, जिसका अनुमान नहीं था। इससे नये परिणाम सामने आये जैसे-

1. मानवीय कर्मचारी सम्भवतः पूर्णतया मशीनों के समान नहीं है।
2. प्रकाश व्यवस्था के अतिरिक्त अन्य चर भी हैं, जो कर्मचारी को प्रभावित कर रहे हैं।
3. यदि कर्मचारी कमजोर कार्य दशाओं के बावजूद काम कर रहे थे तो यह अर्थ निकाला गया कि कर्मचारी जान रहे थे कि उनको देखा जा रहा है, इससे यह आशय निकाला कि कर्मचारी प्रबन्ध की ओर से उदासीनता नहीं चाहते हैं। यदि प्रबन्ध उनकी ओर ध्यान देता है और उनके कार्यों में रूचि लेता है तो उत्पादन स्वतः ही बढ़ जाता है।

इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि उत्पादन के लिए भौतिक परिस्थितियां ही उत्तरदायी नहीं है।

10.4.2 रिले असैम्बली टेस्ट रूम प्रयोग

प्रकाश प्रयोगों की सफलता प्रबन्धकों को प्रोत्साहित किया कि ऐसी व्यावहारिक कारकों की खोज की जाय जो श्रमिकों के सम्बन्धों को प्रभावित करते हैं। इसके लिए फिर से मेयो और उनके साथियों से कहा गया।

मेयो तथा उनके सहयोगियों ने अपना प्रयोग टेलीफोन के पुर्जे जोड़ने वाली महिला श्रमिकों के समूह के साथ प्रारम्भ किया। महिला श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए कई नई योजनाऐं लागू की गई। विश्राम का समय निश्चित किया गया, दोपहर के भोजन की व्यवस्था की गई तथा कार्य-समूह छोटा कर दिया गया। इससे उत्पादन बढ़ गया। परन्तु थोड़े दिन पश्चात इन सभी सुविधाओं को समाप्त कर दिया गया। यह सोचा जा रहा था कि अब उत्पादन घटेगा। परन्तु आश्चर्य की बात रही कि उत्पादन कम होने के बजाय ऊँचा हो गया।

इस प्रश्न का उत्तर मानवीय आयामों में खोजा गया। प्रयोगकर्ताओं द्वारा महिला श्रमिकों पर जो ध्यान दिया गया उससे महिला श्रमिकों को लगा कि वे भी कम्पनी का महत्वपूर्ण हिस्सा थीं। उन्होंने यह सोचना प्रारम्भ किया कि वे एकान्त व्यक्ति नहीं हैं। इसके विपरीत वे एक सहयोगी और सम्बद्ध कार्य समूह की सहभागी सदस्य थी। उससे उनमें लगाव की भावना पैदा हो गई।

10.4.3 साक्षात्कार अध्ययन

हाथोर्न प्रयोगों की कड़ी में मानवीय भावनाओं और अभिवृत्तियों को जानने के लिए सन् 1927 से 1932 के बीच साक्षात्कार प्रयोग किए गये। इसके लिए कम्पनी के प्रत्येक विभाग के कुल मिलाकर 21 हजार से भी अधिक कर्मचारियों का साक्षात्कार लिया गया। साक्षात्कार का उद्देश्य यह था कि वे कौन सी कार्यदशाऐं हैं जो श्रमिकों की भावनाओं को आहत करती हैं और किस प्रकार इसका असर उनकी उत्पादकता पर पड़ता है? मेयो और उनके साथियों ने पहले संरक्षित प्रश्न तैयार किये। ऐसे प्रश्न पहले से ही बना लिए जाते हैं और कर्मचारियों से उन्हें पूछा जाता है। लेकिन ऐसे प्रश्नों से उन्हें लगा कि जो सूचनाएँ वे प्राप्त करना चाहते हैं, वे नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं।

कर्मचारी बिल्कुल स्वतंत्र होकर पूछना चाहते थे। इसलिए पूर्व निर्धारित प्रश्नों को त्याग दिया गया और साक्षात्कार कर्ताओं को यह छूट दे दी गई कि वे जो चाहे पूछ सकते हैं। इन साक्षात्कारों के उत्साहजनक परिणाम सामने आये-

1. इनसे कर्मचारियों को अपने आपको अभिव्यक्त करने का मौका मिल गया। इसके परिणामस्वरूप अभिवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन आया। इससे कर्मचारी यह महसूस करने लगे कि प्रबन्ध ने उन्हें महत्वपूर्ण माना है। अब वे कम्पनी कार्य परिचालन में भागीदार बन गए थे।
2. मेयो ने पाया कि जब अनौपचारिक समूहों को प्रबन्ध महत्व देना शुरू कर देता है तो उत्पादन बढ़ता है।
3. मेयो ने यह भी पाया कि जब कर्मचारी यह सोचने लगता है कि उसके लक्ष्य और प्रबन्ध के लक्ष्य विरोधी हैं तो उत्पादकता काफी निम्न स्तरीय रहती है। ऐसा उस समय होता है, जब कर्मचारियों के कार्यों का कड़ा पर्यवेक्षण किया जाता है तथा जब उनका कार्य व पर्यावरण पर कोई नियंत्रण नहीं होता है।
4. इन प्रयोगों से उन प्रश्नों को सुलझाने में मदद मिली, जो प्रबन्धकों को सामान्यतया परेशान करते थे कि क्यों कुछ समूह अधिक उत्पादक होते हैं और कुछ नहीं।
5. यह महसूस किया गया कि जब तक कर्मचारियों की भावनाओं और संवेगों को ना समझा जाए तब तक उनकी वास्तविक समस्याओं को नहीं समझा जा सकता।

वस्तुतः कार्मिक के मनोबल को बनाये रखने के लिए उसके कार्य पर्यावरण में व्यक्ति की भावनात्मक तथा आत्मसम्मान की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। मेयो के अनुसार 'यदि ऐसा नहीं होगा तो व्यक्ति में निराशा, कुण्ठा तथा मानकहीनता(Anomie) पैदा हो जायेगी।'

10.4.4 सामाजिक संगठन प्रयोग या बैंक वायरिंग प्रयोग

यह प्रयोग जार्ज एल्टन मेयो द्वारा हाथोर्न संयत्र में किया गया अन्तिम प्रयोग था, जो समूह के व्यवहार के विश्लेषण पर आधारित था। अध्ययन दल ने अवलोकन के द्वारा समूह-व्यवहार को जांचा था। श्रमिकों का चयन तीन ऐसे समूहों से किया गया था, जो एक-दूसरे से कार्य के आधार पर जुड़े थे। ये काम धातु को सोल्डर करना, टर्मिनल लगाना तथा तार लगाना थे। इन श्रमिकों को वेतन, समूह-प्रोत्साहन योजना के अन्तर्गत दिया जाता था, अर्थात् प्रत्येक सदस्य को समूह के कुल उत्पादन के आधार पर उसका अंश मिलता था। प्रयोग के दौरान यह पाया गया कि समूह ने उत्पादन का अपना एक मानक निश्चित कर लिया था जो प्रबन्ध द्वारा निर्धारित मानक से बहुत कम था। समूह अपने किसी भी सदस्य को उत्पादन घटाने या बढ़ाने की अनुमति नहीं देता था। यद्यपि यह समूह(श्रमिक) अधिक उत्पादन में सक्षम था, किन्तु उत्पादन दर को स्थिर बनाए रखने के लिए पूर्ण क्षमता से कार्य नहीं करता था। समूह में अत्यधिक एकता थी तथा समूह ने निम्नांकित नियम बना लिये थे-

1. किसी को भी बहुत अधिक कार्य नहीं करना चाहिए, वरना वह शेखीखोर(Rate Buster) कहलायेगा।
2. किसी को बहुत कम काम नहीं करना चाहिए, वरना वाह कामचोरे या धोखेबाज कहलायेगा।
3. किसी को भी अपने साथियों की चुगली पर्यवेक्षक से नहीं करनी चाहिए, वरना वह चुगलखोर कहलायेगा।
4. किसी को भी साथियों से सामाजिक दूरी नहीं बनानी चाहिए और ना ही कार्यालयी व्यवहार करना चाहिए। अर्थात् यदि कोई निरीक्षक है तो वह निरीक्षक जैसा व्यवहार ना करें।

इस प्रकार ये प्रयोग एक अनोखे समूह व्यवहार पर आधारित थे। समूह के अपने नियम थे, उन्होंने कम्पनी के हित से लेना-देना नहीं था, लेकिन वे श्रमिकों को सुरक्षा तथा आत्मविश्वास का भाव देते थे। मेयो तथा हावर्ड दल ने यह निष्कर्ष निकाला कि समूह के व्यवहार का प्रबन्ध या सम्पन्न की सामान्य आर्थिक परिस्थितियों से कोई लेना-

देना नहीं था। श्रमिकों का मानना था कि विशेषज्ञता तथा कुशलता के तर्क मानवीय एवं सामूहिक गतिविधियों को बाँधित करते हैं।

इस प्रकार सन् 1924 से 1932 के बीच किए गये इन हाथोर्न प्रयोगों को मानवीय सम्बन्ध विचारधारा की आधारशिला माना जाता है। इसका प्रारम्भ प्रकाश प्रयोगों से हुआ, जिन्होंने यह स्पष्ट किया कि उत्पादन केवल भौतिक परिस्थितियों से ही नहीं प्रभावित होता। 'रिले असेम्बली टेस्ट रूम' प्रयोगों से श्रमिकों के सामाजिक कारकों के प्रभावों को आंका गया। तीसरे चरण में साक्षात्कार प्रयोग किए गऐ जिनका उद्देश्य श्रमिकों के प्रबन्धकों तथा अपने कार्यों आदि के बारे में विचार जानना था। अन्तिम चरण के प्रयोग बैंक वायरिंग अवलोकन समूह प्रयोग थे, जिससे पता चलता था कि श्रमिकों की उत्पादकता तथा कार्यकुशलता समूह व्यवहार से संचालित होती है।

10.5 हाथोर्न प्रयोगों परिणाम

हाथोर्न प्रयोगों के पश्चात मानव सम्बन्ध विचारधारा के सम्बन्ध में कतिपय बातें स्पष्ट हुई-

1. मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे मशीन की भाँति नहीं समझा जा सकता है।
2. तकनीकी प्रगति तथा भौतिक पक्ष पर इतना अधिक बल नहीं दिया जाना चाहिए कि सामाजिक मानवीय जीवन ही प्रभावित हो जाये।
3. इन प्रयोगों द्वारा 'भीड़ परिकल्पना' या 'रैबल हायपोथेसिस' का खण्डन किया गया। 'रैबल हायपोथेसिस' के अन्तर्गत मनुष्य को उन असंगठित लोगों का झुण्ड माना जाता है जो केवल अपने स्वार्थों के लिए ही कार्य करते हैं। टेलर का वैज्ञानिक प्रबन्ध आन्दोलन मनुष्य को इसी दृष्टिकोण से देखता है। मेयो ने राबर्ट ओवन की उस मान्यता को पुनः जीवित कर दिया जो उद्योगपतियों से यह अपेक्षा करती थी कि मशीनों से अधिक श्रमिकों पर ध्यान दिया जाय। मेयो ने इसे भीड़ (Herd) परिकल्पना नाम दिया।
4. सहयोग प्राप्त करने के लिए सत्ता तथा विशेषज्ञता की जगह सामाजिक कौशल महत्वपूर्ण है।
5. इन प्रयोगों से औपचारिक संगठनों की महत्ता सिद्ध हुई। ये समूह श्रमिकों की आदतों और अभिवृत्तियों को निर्धारित करते थे।
6. उद्यम में मशीन के पुर्जे के स्थान पर एक व्यक्ति को पहचान मिली, मनुष्य एक आर्थिक प्राणी नहीं अपितु सामाजिक प्राणी है, उसे अभिप्रेरित करने के लिये अनौपचारिक साधनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। कर्मचारियों की भावनाओं, उसकी समस्याओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यह निष्कर्ष निकाला गया कि उसके सुझावों को महत्व देकर उसे अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

10.6 मेयो द्वारा किए गये अन्य प्रयोग

मेयो ने सिर्फ हाथोर्न प्रयोग ही नहीं किये। उससे पहले भी उसने कुछ प्रयोग किये, जिन्होंने मानव सम्बन्धों का बारीकी से अध्ययन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मेयो के द्वारा किए गए प्रयोगों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं-

10.6.1 फिलाडेल्फिया की एक टेक्सटाइल मिल में किए गए प्रयोग (सन् 1923)

मेयो ने सन् 1923 में फिलाडेल्फिया के निकट एक टेक्सटाइल मिल में अपना शोध कार्य प्रारम्भ किया। उस समय मिल काफी अच्छी स्थिति में थी, क्योंकि वह अपने श्रमिकों को काफी अच्छी सुविधाऐं प्रदान कर रही थी। मिल के नियोक्ता काफी खुश थे और मानवीय भी थे। लेकिन मिल दोमुही-बुनाई विभाग (Mule-spinning department) की समस्याओं से परेशान था। चूँकि मिल के अच्छे से चलते रहने के लिए आवश्यक था कि मिल

का यह विभाग ठीक से चलता रहे। जब कोई भी योजना सफल सिद्ध नहीं हुई तो मिल ने यह समस्या हार्वर्ड विश्वविद्यालय को सौंप दी। मेयो उस समय हार्वर्ड विश्वविद्यालय में ही पढ़ाते थे और यह उनका सबसे बड़ा कार्य था जिसे 'प्रथम अन्वेषण' (The First Inquiry) नाम दिया गया। मेयो ने विभाग की समस्या का गहन अध्ययन किया। मेयो ने संरक्षित सहभागी अवलोकन विधि से अध्ययन किया और पाया कि दोमुही-बुनाई विभाग में कार्यरत प्रत्येक कारीगर पैर की तकलीफ से ग्रसित था। उस तकलीफ का तात्कालिक उपचार भी नहीं था। उस तकलीफ का कारण श्रमिकों का गलियारे में चलना भी था। प्रत्येक श्रमिक की निगरानी में 10-14 मशीनें थी। मेयो ने मिल की नर्स से भी बातचीत की। मेयो ने पाया कि मशीनों के शोर-शराबे के कारण कारीगरों के बीच संचार नहीं हो पाता था। साथ ही कर्मचारी इतने थक जाते थे कि शाम को वे सामाजिक कार्यक्रमों में हिस्सा नहीं ले पाते थे। इस समस्या के हल के रूप में मेयो ने प्रबन्धकों से श्रमिकों के लिए आराम का समय निर्धारित करने को कहा। मेयो ने सुबह और दोपहर में 10-10 मिनट के दो बार 'आराम के समय' की व्यवस्था की। प्रबन्धकों ने यह मान लिया। इससे काफी उत्साहजनक परिणाम आये। इससे उदासी के लक्षण गायब हो गये और उत्पादन बढ़ने लगा तथा श्रमिकों का मनोबल ऊँचा हो गया। इसके साथ-साथ बोनस की व्यवस्था भी की गई, जिसके तहत यदि श्रमिक निर्धारित प्रतिशत से अधिक उत्पादन करते हैं तो उत्पादन आधिक्य के अनुपात में बोनस दिया जाएगा। विश्राम और बोनस की व्यवस्था से श्रमिक खुश थे। परन्तु प्रबन्धकों को यह रास नहीं आया। यह व्यवस्था कुछ समय तक तो चलती रही परन्तु वस्तुओं की उच्च मांग को देखते हुये प्रबन्धकों ने नई व्यवस्था लागू कर दी, जिस कारण उत्पादन गिर गया और श्रमिक परेशान रहने लगे। अब पुनः मेयो और उनके साथियों के साथ बातचीत की गई और मिल के अध्यक्ष ने सभी के लिए पुनः आराम के समय की व्यवस्था करवा दी। इससे निराशा मिट गई, उत्पादन बढ़ा और श्रमिक बोनस कमाने लगे। इस प्रकार मेयो ने अपने पहले ही अध्ययन में समस्या की जांच करने और उसके उपचार सुझाने में कामयाबी हासिल की। इस सफलता से भीड़ परिकल्पना का खण्डन किया जाने लगा, जो यह मानती थी कि मनुष्य केवल अपने स्वार्थ के लिए कार्य करते हैं। इसके विपरीत इस प्रयोग से यह सिद्ध हुआ कि आर्थिक लाभ के अतिरिक्त श्रमिक को शारीरिक और मानसिक विश्राम की भी आवश्यकता होती है।

10.6.2 उद्योगों में अनुपस्थितिवाद (सन् 1943)

यह प्रयोग एल्टन मेयो का अन्तिम शोध प्रयोग माना जा सकता है। सन् 1943 में यह प्रयोग हवाई जहाज का सामान बनाने वाली एक काउण्ड्री में किया गया। दरअसल द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मची अफरातफरी से उद्योग भी अछूते नहीं रहे तथा श्रमिकों के अधिकतर संगठन बदल रहे थे या बहुत अधिक अनुपस्थित थे। मेयो ने पाया कि ऐसा अधिकांशतः ऐसे उपक्रमों में हो रहा था, जहाँ श्रमिकों के अनौपचारिक संगठन नहीं थे और ना ही सुलझा हुआ नेतृत्व। एयरक्राफ्ट बनाने वाली तीन फैक्ट्रियों में श्रमिकों के अनुपस्थितवाद का अध्ययन करने के उपरान्त मेयो ने यह निष्कर्ष निकाला कि इस प्रकार की समस्या को रोका जा सकता है, यदि प्रबन्ध अनौपचारिक समूहों के गठन को प्रोत्साहित करे तथा कर्मचारियों की समस्याओं को मानवीय समझ के आधार पर सुलझाये। प्रबन्ध को चाहिए कि वह उद्योग में मानवीय सम्बन्धों का विकास करें और कर्मचारियों को पहल करने के लिए प्रोत्साहित करे।

10.7 आलोचना

इसमें कोई सन्देह नहीं कि हाथोर्न प्रयोगों के परिणामों तथा एल्टन मेयो के विचारों ने 20वीं सदी के तीसरे और चौथे दशक में औद्योगिक मनोविज्ञान तथा औद्योगिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में धूम मचा दी थी, लेकिन इस विचारधारा की पर्याप्त आलोचना हुई, जो निम्न प्रकार से है-

1. डेलबर्ट सी0 मिलर तथा विलियम एच0 फोर्म ने हाथोर्न प्रयोगों की प्रविधि को दोषपूर्ण करार दिया है। इन दोनों विद्वानों का मानना है कि मेयो के प्रयोग वैज्ञानिक प्रविधि पर आधारित नहीं थे, बल्कि वे अनुभववाद तथा अवलोकन के परिणाम थे।
2. डेनियल बेल सहित बहुत से विद्वानों ने मेयोवादियों को भीरू या गाय समाजशास्त्र बताया है जो केवल श्रमिकों को पुचकारने में विश्वास करते हैं तथा मानते हैं कि संतुष्ट गाय अधिक दूध देती है। आलोचकों का मानना है कि इससे वास्तविक समस्याऐं शायद ही कभी हल हो पाती।
3. पीटर एफ0 ड्रकर का कहना है कि मानव सम्बन्ध उपागम में आर्थिक आयाम को छोड़ दिया गया है तथा हाथोर्न प्रयोगों में सारा ध्यान व्यक्तिगत सम्बन्धों पर लगाया गया है, ना कि कार्य की प्रकृति पर।
4. मानव सम्बन्ध उपागम में सहयोग तथा समन्वय को ही महत्वपूर्ण माना गया है, जबकि संघर्षों को खराब मानकर छोड़ दिया गया है। आलोचकों का कहना है कि संघर्ष ही संगठन को नवजीवन प्रदान करते हैं तथा संघर्ष से ही प्रतियोगिता एवं प्रगति का मार्ग खुलता है।
5. यह उपागम ना तो सर्वथा नये विचारों का विकास कर पाया है और ना ही कार्य संस्कृति का विकास कर पाया है, अतः इसकी मान्यताऐं सर्वांगीण नहीं कही जा सकती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद वास्तविकता यह है कि मेयो वह प्रथम वैज्ञानिक थे, जिन्होंने वैज्ञानिक प्रबन्ध विचारधारा से हटकर एक नये दृष्टिकोण से औद्योगिक एवं संगठनात्मक समस्याओं का विश्लेषण किया। उन्होंने नियोक्ता-कार्मिक सम्बन्धों सहित श्रमिकों की मानसिकता, पर्यवेक्षण की महत्ता तथा संचार के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिया है। मेयो के प्रयोग केवल औद्योगिक प्रतिष्ठानों में ही नहीं, बल्कि लोक प्रशासन के सेवा संगठनों तथा नौकरशाही में भी महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। समूह-व्यवहार तथा अनौपचारिक संगठनों की उपादेयता के बारे में मेयो से अधिक तथा मेयो से पहले चिन्तन किसी ने नहीं किया था। निःसन्देह प्रशासनिक चिन्तन, सामाजिक कौशल एवं मानव कल्याण की दिशा में मेयो का नाम आदर से लिया जाता रहेगा।

मनोबल का सम्बन्ध भी उत्पादन से जोड़ा जा सकता है। मेयो के अनुसार अमेरिकी उद्योगों में कार्य करने का मतलब है अपमान या लज्जा, क्योंकि श्रमिकों को एक ऊबाऊ माहौल में कार्य करना पड़ता था, जिसमें उनका नियंत्रण नहीं था। ऐसे में तनाव, चिन्ता तथा निराशा पैदा होती थी। मेयो ने इसे 'एनोमी' कहा। यह वह स्थिति थी जिसमें श्रमिक अपने ही पर्यावरण के शिकार थे। मेयो ने अपने प्रयोगों से निष्कर्ष निकाला कि कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाने के लिए उनको सम्मान और आवश्यकताओं की पूर्ति के अवसर भी प्रदान किए जाने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न-

1. जार्ज एल्टन मेयो प्रशासनिक विचारों के इतिहास में किस विचारधारा के जनक माने जाते है?
2. मेयो के विचार किन प्रयोगों पर आधारित थे?
3. मेयो के प्रयोगों को हाथोर्न प्रयोग क्यों कहा जाता है?

10.8 सारांश

जार्ज एल्टन मेयो 'मानव सम्बन्ध विचारधारा' के जनक माने जाते हैं। यह विचारधारा फ्रेडरिक विन्सलो टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रतिक्रया स्वरूप आयी। टेलर श्रमिक को एक स्वार्थी और आर्थिक प्राणी मानता था। कुछ आर्थिक प्रोत्साहन दिए जाने से उत्पादन कार्य में वृद्धि को बढ़ावा मिलता था। मेयो ने फैक्ट्रियों में कुछ प्रयोग किये जो हाथोर्न प्रयोग के नाम से जाने जाते है। प्रकाश प्रयोग, समूह मनोविज्ञान प्रयोग तथा साक्षात्कार प्रयोग के द्वारा हाथोर्न प्रयोग ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी नहीं बल्कि एक सामाजिक प्राणी

है। मेयो तथा उनके साथियों ने अपने प्रयोगों में मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और आर्थिक आयामों को ध्यान में रखते हुए श्रमिकों के व्यवहारों और उत्पादन क्षमताओं पर ध्यान दिया। मेयो इसे 'क्लीनिकल एप्रोच' कहते हैं। इन्हीं प्रयोगों के पश्चात प्रौद्योगिक संगठन में मानवीय तत्व को महत्व दिया जाने लगा और श्रमिक को मशीन का एक पुर्जा ना मानकर एक जीवन्त प्राणी माना जाने लगा, जिसे अनौपचारिक साधनों से अभिप्रेरित किया जा सकता है। यह विचारधारा कर्मचारी और नियोक्ता के बीच ढ़ाँचागत तथा कानूनी सम्बन्धों को नहीं, वरन् नैतिक मनोविज्ञान पर आधारित सम्बन्धों को प्रोत्साहित करता है।

10.9 शब्दावली

मानव सम्बन्ध विचारधारा- वह विचारधारा जो नियोक्ता तथा कर्मचारी के बीच कानूनी सम्बन्धों की अपेक्षा मानवीय सम्बन्धों को तरजीह देती है।

हार्थोन प्रयोग- जार्ज एल्टन मेयो द्वारा किये गये प्रयोग, जो हार्थोन नाम स्थान पर किये गये है।

रैबल हाइपोथिसिस- जो यह मानती है कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है, उसे सिर्फ आर्थिक लाभ देकर प्रोत्साहित किया जा सकता है।

हर्ड हाइपोथिसिस- यह मानती है कि मनुष्य सिर्फ आर्थिक लाभ से ही प्रभावित नहीं होता, वरन् उसे मानवीय संवेदानाओं से भरपूर माहौल चाहिए।

10.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मानव सम्बन्ध विचारधारा, **2.** हार्थोन प्रयोग, **3.** क्योंकि वो हार्थोन नामक स्थान पर किये गये थे।

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचार, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
3. एल्टन मेयो, साइकोलॉजी एण्ड रिलीजन, मैक्मिलन मेलबार्न, 1922
4. एल्टन मेयो, द सोशल प्रोबलम्स ऑफ इण्डस्ट्रीयल सिविलाइजेशन, हार्बर्ड यूनिवर्सिटी, बोस्टन, 1945
5. एल्टन मेयो, ह्यूमन प्रोबलम्स ऑफ एन इण्डस्ट्रीयल सिविलाइजेशन, मैक्मिलन, न्यूयार्क, 1933
6. एफ0 जे0 रोथालिसबर्जन एण्ड डब्ल्यू0 जे0 डिक्सन, मैनेजमेण्ट एण्ड द वर्कर, हार्बर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1939

10.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचार, आर0बी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

10.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'मानव सम्बन्ध विचारधारा' के उत्पत्ति के कारणों का वर्णन कीजिए।
2. हाथोर्न प्रयोग के अन्तर्गत कौन-कौन से प्रयोग आते है? मेयो ने अपने प्रयोगों द्वारा क्या निष्कर्ष निकाला?
3. मेयो द्वारा किए गए प्रयोगों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. मानव सम्बन्ध विचारधारा का प्रशासन पर पढ़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कीजिए।

इकाई- 11 चेस्टर इरविंग बर्नार्ड

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 चेस्टर इरविंग बर्नार्ड- एक परिचय
11.3 बर्नार्ड के प्रशासनिक विचार
    11.3.1 संगठन: एक सहकारी व्यवस्था के रूप में
    11.3.2 सत्ता
    11.3.3 निर्णयन
    11.3.4 नेतृत्व
    11.3.5 प्रोत्साहन
    11.3.6 कार्यकारी अधिकारियों के कार्य
11.4 बर्नार्ड की आलोचना
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

चेस्टर इरविंग बर्नार्ड की संगठनात्मक विचारधारा काफी महत्वपूर्ण है। चेस्टर इरविंग बर्नार्ड की पद्धति को व्यवहारवादी कहा जाता है, क्योंकि उन्होंने प्रशासन के मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर जोर दिया। उनको संगठन की कार्यप्रणाली का पूरा ज्ञान और गहरी अन्तर्दृष्टि थी। इससे पूर्व हम जार्ज एल्टन मेयो के 'मानव सम्बन्ध विचारधारा' को जान चुके हैं। 'मानव सम्बन्ध विचारधारा' यांत्रिक विचारधारा का विरोध करती है। यांत्रिक विचारधारा व्यक्ति एवं संगठन को पृथक-पृथक इकाई के रूप में देखती है। इसके विपरीत मानव सम्बन्ध विचारधारा संगठन में कार्यरत अनौपचारिक समूहों के मध्य सम्बन्धों पर बल देती है, लेकिन व्यवहारवादी दृष्टिकोण इससे दो कदम आगे की सोचता है। व्यवहारवाद ने व्यक्ति तथा संगठन के मध्य के सम्बन्धों विशेषतः संगठन के कार्यकरण में व्यक्ति के आन्तरिक मूल्यों तथा विचारशीलता पर ध्यान केन्द्रित किया। मानव-सम्बन्ध उपागम व्यक्ति की आवश्यकताओं पर बल देता है, जबकि व्यवहारवादी उपागम, मानव तथा संगठन दोनों की आवश्यकताओं पर बल देता है। एक व्यवहारवादी के रूप में चेस्टर इनविंग बर्नार्ड संगठन को एक जीवन्त सहकारी व्यवस्था के रूप में देखते हैं, जिसमें कार्य करने वाले व्यक्ति परस्पर अन्तर-सम्बन्धित और अन्तनिर्भर हैं।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप -

- बर्नार्ड ने संगठन और व्यक्ति के बीच किस प्रकार के सम्बन्धों पर बल दिया है, इसे जान पायेंगे।

- संगठन किस प्रकार एक सहकारी व्यवस्था के रूप में कार्य करती है, इससे अवगत हो पाओगे।
- सत्ता की व्यापक अवधारणा क्या है, नेतृत्व किस प्रकार का होना चाहिए, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।
- निर्णयन की क्या प्रक्रिया है, इस सम्बन्ध में बर्नार्ड की दृष्टि क्या है, इससे अवगत हो पाओगे।

11.2 चेस्टर इरविंग बर्नार्ड- एक परिचय

बर्नार्ड का जन्म सन् 1886 में अमेरिका में एक गरीब परिवार में हुआ। काम करने के साथ-साथ उनकी पढ़ाई जारी रही। 'माउण्ट हरमन अकादमी' से आरम्भिक शिक्षा लेने के बाद बर्नार्ड ने सन् 1906 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। परन्तु बर्नार्ड को हार्वर्ड विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त नहीं हो पायी और सन् 1909 में बर्नार्ड ने विश्वविद्यालय छोड़ दिया। बाद में उन्होंने अमेरिकी टेलीफोन और टेलीग्राफ सिस्टम के सांख्यिकी विभाग में प्रवेश लिया। वे क्लर्क बनाए गए। सन् 1927 में बर्नार्ड न्यूजर्सी बैल के अध्यक्ष बन गए और अपनी सेवानिवृत्ति तक इसी संगठन में कार्य करते रहे। बर्नार्ड चार वर्षों के लिए 'रोकेफेलर फाउण्डेशन' के अध्यक्ष भी रहे। वे 'न्यूजर्सी रिलीफ एडमिनिस्ट्रेशन' जो कि एक सरकारी संगठन था, के राज्य स्तरीय डायरेक्टर भी बने। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान बर्नार्ड ने 'यूनाइटेड सर्विस आर्गेनाइजेशन्स' में कार्य किया। इस प्रकार अलग-अलग जगहों पर कार्य करने से बर्नार्ड को बड़े-बड़े निगमों, सरकारी संगठनों तथा सेवा संगठनों की आन्तरिक कार्य-प्रणाली का परीक्षण करने का मौका मिला। उन्होंने संगठनात्मक गतिविधियों का अवलोकन किया तथा संगठन में कार्यरत लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों को देखा। यही कारण है कि एक कुशल प्रबन्धक होने के साथ-साथ एक सफल सिद्धान्ताकर भी थे।
सन् 1938 में बर्नार्ड की एक किताब प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था, "The Functions of the Executive" यह किताब संगठनात्मक विचारधारा की शास्त्रीय कृति मानी जाती है। लोक प्रशासन के अनुशासन के विकास चरणों में भी यह किताब काफी महत्वपूर्ण साबित हुई। बर्नार्ड ने अपनी मृत्यु (सन् 1961) तक अपना समय प्रबन्ध के विश्लेषण और उसे समझने में लगाया। बर्नार्ड पर ओलिवर शेल्डन, एल्टन मेयो, फोलेट आदि विचारकों का प्रभाव दिखाई देता है। सक्रिय प्रबन्धक होने के कारण बर्नार्ड को अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाने का मौका मिला, जिसने उनकी संगठनात्मक समझ को और गहरा किया। बर्नार्ड ने कोई प्रयोग नहीं किया। उसके विचार उनके अनुभव का परिणाम थे। वे अनुभव जो उसने संगठन में लम्बे समय तक कार्य करते हुए प्राप्त किए।

11.3 बर्नार्ड के प्रशासनिक विचार

बर्नार्ड ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने संगठन में मानवीय तत्व के प्रभावों की सर्वप्रथम पहचान की। उन्होंने संगठन को एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया। उन्होंने नेतृत्व संचार और निर्णय प्रक्रिया पर मानवीय तत्वों के प्रभावों का विश्लेषण भी किया। उन्होंने कभी कोई औपचारिक प्रयोग नहीं किया। उन्होंने अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर ही लिखा। संगठन में लम्बे समय तक कार्य करने का जो उनका अनुभव था, वही उनके विचारों को मजबूत बनाने में सहायक हुआ। बर्नार्ड के विचारों को निम्नलिखित प्रकार से देखा जा सकता है-

11.3.1 संगठन: एक सहकारी व्यवस्था के रूप में

बर्नार्ड का मानना है कि व्यक्ति के पास सीमित विकल्प होते हैं और वे परिस्थिति द्वारा सीमित होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण है, उसकी अपनी शारीरिक सीमाएँ। इसके अतिरिक्त भौतिक और सामाजिक सीमाएँ भी उसे बांधित करती हैं। इन सीमाओं पर विजय पाने का एक ही तरीका है कि संगठन को एक सहकारी, सामाजिक क्रिया का स्वरूप दिया जाए। अकेला व्यक्ति सभी लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता। अतः वह सहयोग करता है एवं सहयोग चाहता है। बर्नार्ड के संगठन के सिद्धान्त का मूल मंत्र ही यही है कि व्यक्ति परस्पर सहयोग करें। बर्नार्ड संगठन की

परिभाषा इस प्रकार करते हैं "संगठन दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सचेत रूप से समन्वित गतिविधियों या कार्यों की एक व्यवस्था है।'' इस प्रकार बर्नार्ड संगठन को एक सहयोगी व्यवस्था के रूप में देखते हैं। बर्नार्ड संगठन की शास्त्रीय परिभाषा के घोर आलोचक थे, जिसमें सिर्फ सदस्यता पर जोर दिया जाता है। इसके विपरीत उनके लिए संगठन एक सहकारी प्रणाली है। कोई भी संगठन तभी तक अस्तित्व में रहता है, जब तक कि वह निम्न शर्तें पूरी करता रहे-

1. **संचार-** बर्नार्ड के अनुसार संचार के माध्यम से सामान्य उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। संचार का माध्यम मौखिक और लिखित किसी भी प्रकार का हो सकता है। संचार की समस्या बड़े और छोटे संगठन सभी में देखी जाती है। यह संचार है, जिसके माध्यम से ऊपर से नीचे तक सभी कर्मचारियों को संगठन से जोड़ा जा सकता है और संगठन के कार्यों को विस्तार दिया जा सकता है। संचार को परिभाषित करते हुए बर्नार्ड कहते हैं "संचार वह साधन है, जिसके द्वारा किसी संगठन में व्यक्ति को एक समान उद्देश्य की प्राप्ति हेतु परस्पर संयोजित किया जाता है।''
2. **स्वेच्छा से सेवा-** औपचारिक संगठनों का 'स्वेच्छा से सेवा' एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह संगठन के प्रति वफादारी और एकता भी स्थापित करती है। किसी भी संगठन की सफलता तभी सम्भव है, जब उसके सदस्य स्वतःस्फूर्त ढंग से कार्य करें। यदि किसी भी सदस्य पर उसकी इच्छा के विपरीत कार्य सौंपा जाता है तो वह कार्य की गुणवत्ता को प्रभावित करेगा। स्वेच्छा सहकारी कार्य के लिए जरूरी है। संगठन के लिए कार्य करने की इच्छा ही संगठन को जन्म देती है।
3. **सामान्य उद्देश्य-** संगठन का एक सामान्य उद्देश्य होना चाहिए। जब तक संगठन के उद्देश्य को संगठन के सभी सदस्य स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक वह एक सहयोगी या सहकारी व्यवस्था नहीं बन सकती। बर्नार्ड संगठन को एक जीवन्त निकाय के रूप में देखते हैं और उनकी रूचि संगठन के सतही लक्षणों का अध्ययन करने में न होकर संगठन की आन्तरिक कार्य-प्रणाली को जानने में थी।

बर्नार्ड संगठन व व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों का परीक्षण करते हैं। संगठन का निर्माण व्यक्तियों से होता है तथा व्यक्ति ही संगठन को योगदान देते हैं। इसी प्रकार संगठन भी व्यक्ति को पुरस्कार और सन्तुष्टि देकर उस योगदान से साम्य स्थापित करने की कोशिश करता है।

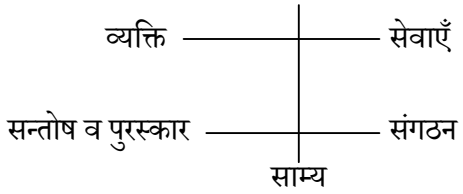

संगठन में कार्यरत विभिन्न व्यक्तियों के बीच पारस्परिक अन्तःक्रियाएँ होती हैं। ये अन्तःक्रियाएँ सतत रूप से जारी रहती हैं और जब ये व्यवस्थित हो जाती हैं तो इसके परिणाम स्वरूप अनौपचारिक संगठन का जन्म होता है। यह अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन को काफी प्रभावित करता है और इन दोनों में लगातार अन्तःक्रियाएँ होती रहती है। ये अनौपचारिक संगठन व्यक्तियों की सोच और क्रियाओं को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। औपचारिक संगठन जहाँ इनके आकार, व्यवस्था को सजकता प्रदान करते हैं, वहीं अनौपचारिक संगठन में संचार तथा सदस्यों की बीच परस्पर सम्बद्धता स्थापित करते हैं। बर्नार्ड की दृष्टि में अनौपचारिक संगठन के कार्य हैं-सदस्यों के बीच संचार, सदस्यों को परस्पर जोड़ना या सम्बद्धता(सम्बन्ध) बनाना, व्यक्तिगत आत्म-सम्मान बरकरार रखना, सम्बन्धों की सामाजिक रिक्तता खत्म करना।

अनौपचारिक संगठन, औपचारिक संगठन की कानूनी संरचना की जकड़न को कम करते हैं। इस प्रकार बर्नार्ड संगठन के विविध पहलुओं पर विचार करते हैं और अनौपचारिक संगठन के महत्व का प्रतिपादन करते हैं। सम्भवत: अनौपचारिक संगठनों को उनके द्वारा महत्व दिया जाना, उन पर मेयो के हाथोर्न प्रयोगों के प्रभाव को दर्शाता है।

11.3.2 सत्ता

बर्नार्ड का सबसे महत्वपूर्ण योगदान सत्ता का सिद्धान्त है। वह उस शास्त्रीय दृष्टिकोण का विरोध करते हैं कि सत्ता का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। सत्ता दो प्रकार की होती है-पहला- वस्तुनिष्ठ और दूसरा- व्यक्तिनिष्ठ। वस्तुनिष्ठ सत्ता यह है कि कर्मचारी स्वेच्छा से अपने वरिष्ठों का सम्मान करता है।

व्यक्तिनिष्ठ सत्ता वह है कि कैसे एक अधीनस्थ कर्मचारी एक आदेश की व्यवस्था करता है। बर्नार्ड की दृष्टि में एक कर्मचारी इसलिए आदेशों का पालन नहीं करता कि वह वरिष्ठों के द्वारा दिया है, बल्कि वह किसी भी आदेश का पालन तभी करता है जब निम्न चार शर्तें पूरी होती हो- 1. वह संचार को समझता है, 2. उसे विश्वास है कि आदेश संगठन के उद्देश्यों से जुड़ा है, 3. वह सदस्य के निजी हितों के विरोध ना करें, 4. संगठन के कर्मचारी उस आदेश को भौतिक तथा मानसिक रूप से पूरा करने में सक्षम हैं।

बर्नार्ड ने सत्ता की नई परिभाषा दी है। उसके अनुसार सत्ता का निर्णय वरिष्ठों से नहीं, अपितु कनिष्ठ के हाथ में होता है। किसी भी आदेश का पालन एक व्यक्ति निम्न परिस्थिति में करता है, पहला- आदेश समझ में आने लायक होने चाहिए, दूसरा- व्यक्ति आदेश स्वीकार करता है जब-

- वह उसे समझ लेता है।
- वह उसे संगठन के उद्देश्यों के अनुकूल मानता है।
- वह उसे अपने हितों के अनुकूल मानता है।
- वह उसकी पालना हेतु शारीरिक व मानसिक रूप से समर्थ होता है।

बर्नार्ड; व्यक्ति आदेश को कब स्वीकार करता है? बर्नार्ड के अनुसार सत्ता, उच्चाधिकारियों में समाहित नहीं है और ना ही यह ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होती है, बल्कि यह तो अधीनस्थों द्वारा स्वीकार करने की स्थिति है। यदि अधीनस्थों ने कोई संचार नहीं स्वीकारा तो यह सत्ता नहीं है। बर्नार्ड सत्ता की स्वीकृति के क्षेत्र में उदासीनता का क्षेत्र प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार उच्चाधिकारियों द्वारा प्रेषित संचार को उनकी स्वीकृति के क्रम में तीन श्रेणियों में रख सकते हैं- पहली श्रेणी में वे आदेश हैं, जो सदस्यों द्वारा एकदम अस्वीकार कर दिए जाते हैं। दूसरी श्रेणी में वे आदेश वे हैं, जो तटस्थता की श्रेणी में हैं, जिन्हें सदस्य स्वीकार भी कर सकते हैं या अस्वीकार भी कर सकते हैं। तीसरी श्रेणी में वे आदेश आते हैं, जिन्हें सदस्य निर्विवाद रूप से पूर्णतः स्वीकार कर लेते हैं। यही उदासीनता का क्षेत्र है, क्योंकि इसमें अधीनस्थ यह नहीं सोचते कि वे ऐसा क्यों करते हैं या आदेश का क्या परिणाम या प्रभाव होगा? इस प्रकार के आदेश दैनिक व्यवहार में आ चुके होते हैं। उदाहरण के लिए प्रातः उठते ही सैनिक को शारीरिक व्यापार करना ही है, वह इस कार्य के लिए उच्चाधिकारियों को चुनौती देने की सोचता ही नहीं है।

बर्नार्ड मानते हैं कि सत्ता नीचे से ऊपर, ग्राहक से नौकरशाह में तथा सन्तान से माता-पिता में जाती है। इस प्रकार बर्नार्ड, फेयोल के विपरीत दिखाई देते हैं।

इस प्रकार सत्ता पर बर्नार्ड के विचार मौलिक हैं। बर्नार्ड ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने इस विचारधारा का प्रतिपादन किया कि सत्ता अधीनस्थों की स्वीकृति या सहमति पर निर्भर करती है।

11.3.3 निर्णयन

निर्णयन को बर्नार्ड एक सामाजिक प्रक्रिया मानते हैं। निर्णयन पर उनके विचार सर्वप्रथम सन् 1936 में दिए गए उनके एक व्याख्यान में देखने को मिलते हैं, जो बाद में उनकी पुस्तक "दि फक्शन ऑफ दि एक्जीक्यूटिव'' में विवेचित किए गये। निर्णयन को परिभाषित करते हुए बर्नार्ड कहते हैं "निर्णयन मुख्यतः विकल्पों को सीमित करने की तकनीक हैं।''

उनके अनुसार निर्णय दो प्रकार के होते हैं, यथा- व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक। संगठनात्मक निर्णय औपचारिक स्वरूप में अधिकारी द्वारा अपनी पद स्थिति के लिए, लिए जाते हैं। जिन्हें प्रत्यायोजित भी किया जा सकता है। व्यक्तिगत निर्णय स्वयं के होते हैं, उनमें कोई हस्तक्षेप नहीं होता तथा उनका प्रत्यायोजन भी नहीं किया जा सकता है।

निर्णयन के अवसर कब उत्पन्न होते हैं? इस क्रम में बर्नार्ड ने तीन परिस्थितियां बतायी हैं-

1. **पर्यवेक्षकों से आदेश मिलने पर-** निर्णयन के अधिकांश अवसर उच्चाधिकारियों से आदेश मिलने पर प्राप्त होते हैं। अधीनस्थ उन आदेशों की व्याख्या करते हैं और इस पर विचार करते हैं कि इन आदेशों को किस प्रकार क्रियान्वित किया जा सकता है, यही पर उन्हें निर्णय लेना पड़ता है।
2. **अधीनस्थों द्वारा निर्णय न लेने पर-** बर्नार्ड के अनुसार प्रशासनिक संगठनों में कई बार अधीनस्थ स्वयं निर्णय नहीं ले पाते हैं। कभी वे आदेश की प्रकृति को नहीं समझ पाते हैं या कभी उन्होंने अपने क्षेत्राधिकार के बारे में अस्पष्टता रहती है। ऐसी स्थिति में उच्चाधिकारी को निर्णय लेना पड़ता है।
3. **सम्बन्धित अधिकारी की स्वप्रेरणा से-** बहुधा संगठन में कार्यरत कार्मिक अपनी स्वप्रेरणा या पहल के द्वारा भी निर्णय लेते हैं। बर्नार्ड की दृष्टि में स्वप्रेरणा से किसी स्थिति विशेष में निर्णय लेने की क्षमता उसकी कुशलता से अधिक महत्वपूर्ण होती है। इस प्रकार के प्रयास सृजनशीलता को बढ़ावा देते हैं। कार्मिक के स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता को भी बढ़ाते हैं।

चेस्टर बर्नार्ड ने निर्णयन के सन्दर्भ में 'अवसरों का सिद्धान्त' भी प्रतिपादित किया है। यह सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि निर्णय उस समय की परिस्थिति पर आधारित होने चाहिए।

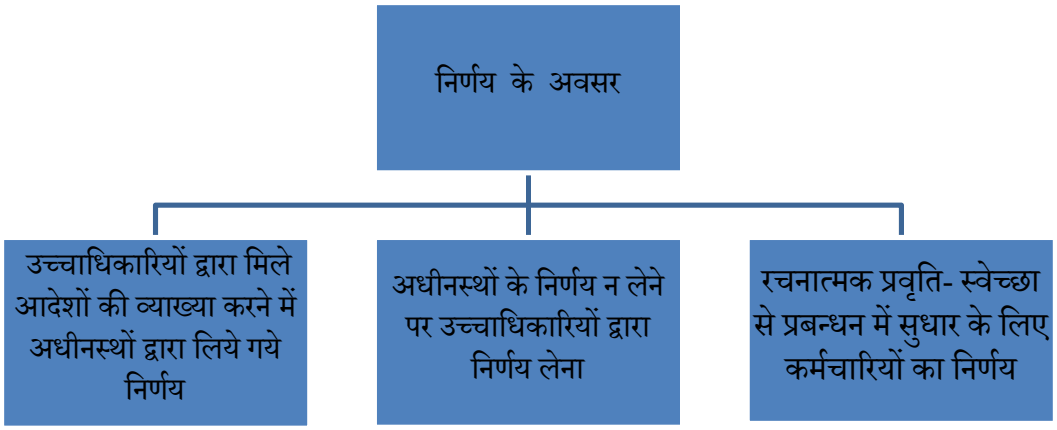

11.3.4 नेतृत्व

चेस्टर बर्नार्ड के अनुसार "नेतृत्व का आशय व्यक्ति के व्यवहार के उस गुण से है, जिसके द्वारा अन्य लोगों को संगठित प्रयासों से सम्बन्धित कार्य करने में मार्गदर्शन करता है।'' बर्नार्ड का कहना है कि जनसंख्या की तुलना में नेताओं का अनुपात बढ़ गया है। वे कहते हैं "सचमुच मैंने ऐसा कोई नेता कभी नहीं देखा जो सचमुच रीति से या

बुद्विमत्तापूर्वक यह बता सकता हो कि वह नेता बनने योग्य क्यों है और ना मुझे उस नेता के अनुयायियों का ही ऐसा कोई कथन मिला है, जिसमें उन्होंने यह प्रकट किया हो कि वे नेता का अनुसरण क्यों करते हैं?'' बर्नार्ड नेतृत्व की परिभाषा की कठिनाई को दर्शाने का प्रयास करते हैं।

बर्नार्ड के अनुसार नेतृत्व तीन बातों पर निर्भर करता है, पहला- व्यक्ति, दूसरा- अनुयायी, और तीसरा- परिस्थितियां।

बर्नार्ड नेता के आवश्यक गुणों की सूची बनाते हैं। उनके मत से नेता में निम्न गुण होने चाहिए- जीवन शक्ति और सहनशीलता, निर्णय लेने की क्षमता, प्रोत्साहित करने की क्षमता और उत्तरदायित्व और बौद्धिक क्षमता।

ये गुण महत्व के क्रमानुसार हैं। बर्नार्ड बौद्धिक क्षमता को बहुत महत्व नहीं देते। उनका कहना है ''नेतृत्व के लिए अत्यधिक बुद्धि व्यर्थ है, यदि वह मामलों में शीघ्र निर्णय नहीं कर पाती।'' निष्पाद के लिए बर्नार्ड विस्तृत हितों, व्यापक समझ की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं। सामान्य शिक्षा पद्धति द्वारा यह क्षमता विकसित की जा सकती है। श्रेष्ठ बौद्धिक क्षमता का विकास भी प्रशिक्षण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। बर्नार्ड कहते हैं कि ''नेतृत्व की योग्यता में सामान्य तथा विशिष्ट ज्ञान सम्मिलित है। औपचारिक प्रक्रियाओं के लिए इस बौद्धिक योग्यता में एक विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।'' बर्नार्ड ज्ञान और कौशल में से कौशल को अधिक महत्व देते हैं। उनके मत से कौशल वह प्रभावशाली व्यवहार है, जिसके द्वारा यथार्थ का असीम जटिलताओं के साथ समुचित समायोजन किया जाता है। यह समायोजन अनुभव पर आधारित होता है। बर्नार्ड नेतृत्व के नैतिक पहलू पर भी जोर देते हैं और सुझाते हैं कि निम्न स्तरीय नैतिकरण से नेतृत्व अधिक समय तक नहीं रह सकता। निष्पादक के लिए आवश्यक है कि वह मानवीय सम्बन्धों का ज्ञान रखे, क्योंकि मानवीय सम्बन्ध ही प्रबन्धकीय कर्मचारियों और सार्वजनिक तथा राजनीतिक सम्बन्ध का सार हैं। दरअसल, बर्नार्ड स्वयं लगभग दस संगठनों में कार्यकारी अधिकारी या मुख्य प्रबन्धक का कार्य कर चुके हैं। अतः वे कहते हैं, किसी भी संगठन में कार्यरत कार्यपालक अधिकारियों को नेता की भूमिका निर्वाहित करते समय निम्न गलतियों से बचना चाहिये-

1. संगठन की अर्थव्यवस्था का अत्यन्त महत्व मान लेना या इसका अति सरलीकरण करना।
2. अनौपचारिक संगठनों के अस्तित्व, उनकी वास्तविकता तथा आवश्यकता को नहीं पहचानना तथा उनका सम्मान नहीं करना।
3. सत्ता के वस्तुनिष्ठ तथा व्यक्तिनिष्ठ आयामों को समझने में भूल करना।
4. उत्तरदायित्व के साथ-साथ नैतिकता की दुविधा से ग्रस्त हो जाना।

इसलिए बर्नार्ड सुझाव देते हैं कि संगठन के नेताओं में व्यापक हितों, गहन विचार तथा समझ की आवश्यकता है। प्रशिक्षण के माध्यम से नेतृत्वकर्ताओं को अपनी समझ व्यापक बनानी चाहिए। उन्हें मानवीय मूल्यों तथा परस्पर सम्मान सहित अनुभव-विनय का महत्व भी समझना चाहिए।

11.3.5 प्रोत्साहन

बर्नार्ड अपने योगदान को सन्तुष्टि मॉडल में दर्शाते हुए कहते हैं कि व्यक्ति संगठन को योगदान देता है तथा बदले में संगठन व्यक्ति को सन्तुष्टि सहित अन्य प्रोत्साहन उपलब्ध कराता है। व्यक्ति तभी योगदान करता है, जब संगठन उसके लिए पर्याप्त प्रोत्साहनों की व्यवस्था करता है।

बर्नार्ड संगठन के लिए भौतिक प्रोत्साहन को ही पर्याप्त नहीं मानते। भौतिक प्रोत्साहन की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण प्रोत्साहन है- विभेद का अवसर, प्रतिष्ठा, व्यक्तिगत शक्ति, प्रभुत्व वाली पद की स्थिति। सहकारी प्रयास के लिए यही प्रोत्साहन अधिक महत्व रखते हैं।

बर्नार्ड ने निम्न प्रोत्साहनों की पहचान की, पहला- भौतिक प्रोत्साहन(धन), दूसरा- अभौतिक प्रोत्साहन- (विभेद का अवसर, प्रतिष्ठा, व्यक्तिगत शक्ति, प्रभुत्व वाला पद आदि), तीसरा- वांछनीय कार्य की दशाएँ, और चौथा- आदर्श परिलाभ।

11.3.6 कार्यकारी अधिकारियों के कार्य

बर्नार्ड ने संगठनात्मक स्तर पर कार्यकारी अधिकारियों के कार्य पर विस्तार से विचार किया है। संगठन में कार्यकारी अधिकारियों(कार्यपालक) के कार्यों में बर्नार्ड तीन प्रक्रियाओं को महत्वपूर्ण मानते हैं, पहला- प्रथमतः संगठन में संचार की स्थापना करना, दूसरा- एकाकी व्यक्तियों से आवश्यक सेवाएँ प्राप्त करना, तीसरा- संगठनात्मक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करना।

बर्नार्ड का मानना है कि संगठन में संचार की व्यवस्था करना सरल कार्य नहीं है। यह कार्य तीन चरणों में किया जाता है। प्रथम चरण में संगठन की योजना को भली-भांति परिभाषित किया जाता है। इसी चरण में सत्ता, उत्तरदायित्व, समन्वय तथा संगठन की संरचना इत्यादि पर भी विचार किया जाता है। बर्नार्ड ने दूसरे चरण में योग्य कार्मिकों की भर्ती को महत्वपूर्ण बताया है। तथा अन्तिम चरण में बर्नार्ड ने अनौपचारिक संगठन की स्थापना को भी संचार के लिए अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इन क्रियाओं से समन्वय का प्रमुख कार्य सम्पन्न हो जाता है।

संगठन में कार्यरत व्यक्तियों से सार्थक योगदान या कार्य या सेवाएँ प्राप्त करना किसी भी कार्यपालक के लिए एक चुनौती है। इसके लिए कार्यपालक को दो कार्य करने होते हैं- प्रथम कार्य है, लोगों को संगठन की सहकारी सम्बन्ध व्यवस्था में लाना तथा दूसरा कार्य है, सम्बन्धों की व्यवस्था में आ जाने के बाद कर्मचारियों से आवश्यक सेवाएँ प्राप्त करना। इसके लिए प्रलोभनों तथा प्रोत्साहनों की व्यवस्था की जाती है। मनोबल को बनाए रखना, प्रेरणाओं, प्रोत्साहन, पर्यवेक्षण, नियंत्रण, शिक्षण, प्रशिक्षण आदि भी इस कार्य हेतु आवश्यक हैं। कहने का आशय यह है कि संगठन केवल व्यक्तियों का एकत्रीकरण नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति के आवश्यक कार्य और भूमिका होती है और कार्यपालिका का कार्य संगठन के संचालन के लिए उसमें कार्यरत व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त करना है।

11.4 बर्नार्ड की आलोचना

बर्नार्ड के विचारों की काफी आलोचना हुई है-

1. कैनथ एन्ड्यूज, जिन्होंने बर्नार्ड की पुस्तक की प्रस्तावना लिखी थी, बर्नार्ड की पुस्तक की निम्न कमियां बताते हैं- ‘‘बर्नार्ड की पुस्तक में तथ्यों का संक्षिप्त प्रस्तुतिकरण किया गया है तथा उदाहरणों की कमी सहित इसमें कई स्थानों पर कठिनता का समावेश दिखाई देता है।’’
2. बर्नार्ड की सहकारी व्यवस्था के रूप में संगठन की आलोचना यह कहकर की जाती है कि संगठन में हर समय और हर स्थिति में सहकारी व्यवस्था नहीं रह सकती। बर्नार्ड ने संगठन के संरचनात्मक परिवर्तनों की उपेक्षा की है।
3. बर्नार्ड ने नेतृत्व के लिए बौद्धिक गुणों की उपेक्षा की है, जो सही नहीं है।
4. ‘उदासीनता का क्षेत्र’ इतनी आसानी से निर्धारित नहीं किया जा सकता, जैसा प्रयास बर्नार्ड ने किया है। सत्ता के आदेश प्राप्त कर अधीनस्थ कब उदासीन रहते हैं, यह पता लगाना कठिन है।

यद्यपि बर्नार्ड स्वयं शालीनतापूर्वक स्वीकारते हैं कि उनके द्वारा पुस्तक में व्यावहारिक उदाहरण ना दे पाना एक कमी रही है। तथापि यह भी कम उपलब्धि नहीं है कि चेस्टर बर्नार्ड की प्रशंसा करते हुए, हरबर्ट साइमन कहते हैं कि, ‘‘क्योंकि संगठनात्मक व्यवहार के विश्लेषण में बर्नार्ड का योगदान अनुपम है। मैंने तो कार्मिक सतुष्टि, सन्तुलन, प्रोत्साहन तथा सत्ता की स्वीकृति क्षेत्र इत्यादि अवधारणाऐं बर्नार्ड से ही ग्रहण की हैं।’’

बर्नार्ड की आलोचना के कारण हैं- उदाहरणों की कमी, नेतृत्व में बौद्धिक गुणों की अवहेलना, 'उदासीनता के क्षेत्र' का निर्धारण सम्भव नहीं, संगठन में संरचनात्मक पहलू की उपेक्षा।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्राधिकार के लिए उदासीनता का क्षेत्र किसने दिया?
2. सत्ता के सम्बन्ध में बर्नार्ड का प्रमुख विचार क्या है?
3. बर्नार्ड की प्रमुख पुस्तक का नाम क्या है?

11.5 सारांश

चेस्टर बर्नार्ड उन कुछेक प्रशासनिक विचारों में से एक हैं जो व्यवहार में कुशल प्रबन्धक होने के साथ-साथ एक सफल सिद्धान्तकार भी थे। ''दि फक्शन्स ऑफ दि एक्जीक्यूटिव'' इनकी प्रशासन को अमूल्य धरोहर है।

बर्नार्ड संगठन को एक सहकारी व्यवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं तथा इसे दो या दो से अधिक व्यक्तियों की सचेत रूप से समन्वित गतिविधियों या कार्यों की एक व्यवस्था मानते हैं। उनके मत में संगठन के लिए निम्न तीन तत्व आवश्यक हैं- लोग परस्पर संचार करते रहें, लोगों में पारस्परिक सहयोग की इच्छा हो तथा कोई सामान्य उद्देश्य हों। इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कि कोई व्यक्ति संगठन को योगदान क्यों करते हैं, बर्नार्ड अपना 'योगदान-संतुष्टि-साम्यता' का विचार प्रतिपादित करते हैं। इसके अनुसार व्यक्ति संगठन को अपना योगदान देता है और संगठन बदले में उसे संतुष्टि प्रदान करता है। जब तक इन दोनों में साम्य बना रहेगा तब तक व्यक्ति का संगठन में योगदान जारी रहेगा।

बर्नार्ड औपचारिक संगठन के महत्व को भी स्वीकार करते हैं। इनके कार्य हैं- संगठन में संचार की व्यवस्था बनाए रखना, व्यक्तियों के आत्म-सम्मान को बरकरार रख सम्बन्धों में सामाजिक रिक्तता को कम करना।

बर्नार्ड के सत्ता पर विचार काफी मौलिक है। वे सत्ता उसी स्थिति को कहते हैं, जब अधीनस्थों द्वारा उसे स्वीकार कर लिया गया हो।

बर्नार्ड ने नेतृत्व के गुणों पर भी प्रकाश डाला है। नेता को मानवीय सम्बन्धों पर ध्यान देना चाहिए। प्रोत्साहन करने की क्षमता होनी चाहिए। व्यक्ति संगठन का कार्य तभी कर पाता है,जब उसे पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। प्रोत्साहन भौतिक ही नहीं वरन् मानवीय भी होना चाहिए।

इस प्रकार चेस्टर इरविंग बर्नार्ड पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने संगठन को एक सहकारी व्यवस्था माना। उन्होंने संगठन के वातावरण से सम्बद्ध नेतृत्व, संचार तथा निर्णयन में मानवीय तत्व के महत्व को स्वीकार किया। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बर्नार्ड के विचार उनके स्वयं के अनुभव पर आधारित थे।

11.6 शब्दावली

सहकारी व्यवस्था- संगठन में व्यक्तियों के सहयोग से मिलकर बनता है, सत्ता- सत्ता वह क्षेत्र है जो अधीनस्थों की स्वीकृति पर आधारित है, उदासीनता का क्षेत्र- जब अधीनस्थ उच्चाधिकारियों द्वारा दिए गए आदेशों का पालन करने में निर्णय लेने की स्थिति में नहीं रहते, निर्णयन- निर्णय लेने की स्थिति।

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. बर्नार्ड, **2.** सत्ता सहमति पर आधारित होती है, **3.** 'दी फंक्शन ऑफ दि एक्सीक्यूटिव'

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चेस्टर बर्नार्ड, द फंक्शंस ऑफ एक्जीक्यूटिव, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
2. चेस्टर बर्नार्ड, द नेचर ऑफ लीडरशिप, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
3. चेस्टर बर्नार्ड, ऑर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेण्ट, हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
4. ओलिवर ई0 विलियमसन, द मैनेजमेण्ट, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड।
5. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

11.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
2. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक, आरबीएसए पब्लिशर्स, 2005

11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उन कारकों की विवेचना कीजिए जिनके आधार पर बर्नार्ड ने संगठन को एक सहकारी व्यवस्था बताया?
2. सत्ता के सम्बन्ध में बर्नार्ड के विचारों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
3. नेतृत्व तथा निर्णयन के सम्बन्ध में बर्नार्ड के विचारों का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 12 हर्बर्ट ए0 साइमन

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 हर्बर्ट ए0 साइमन- एक परिचय
12.3 साइमन की अध्ययन पद्धति
12.4 प्रशासनिक विज्ञान की ओर झुकाव
12.5 शास्त्रीय सिद्धान्तों का विरोध
12.6 निर्णय-निर्माण
12.7 निर्णय-निर्माण और मूल्य-तथ्य विवाद
12.8 प्रशासनिक सिद्धान्त और तार्किकता
12.9 साधन-साध्य और तार्किकता
12.10 प्रशासनिक मनुष्य: एक प्रतिमान
12.11 योजनाबद्ध और गैर-योजनाबद्ध निर्णय
12.12 निर्णय-निर्माण के निर्धारक तत्व
    12.12.1 संगठनात्मक प्रभाव के ढंग
    12.12.2 सत्ता
    12.12.3 संगठनात्मक वफादारियां
    12.12.4 सूचना और परामर्श
    12.12.5 प्रशिक्षण
    12.12.6 प्रशासनिक कुशलता
12.13 मूल्यांकन
12.14 सारांश
12.15 शब्दावली
12.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.19 निबन्धात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

हर्बर्ट साइमन सर्वाधिक प्रभावशाली सामाजिक वैज्ञानिकों में से एक है। उसे सन् 1978 में अर्थशास्त्र का नोबेल पुरस्कार दिया गया।

'तर्क संगत सकारक्तावाद' के आधार पर उसने प्रशासन का एक विज्ञान विकसित करना चाहा और इसके लिये उसने निर्णय-निर्माण को विश्लेषण की इकाई बनाया। उसने संगठन को निर्णय-निर्माणताओं की एक संरचना माना और निर्णय-निर्माण प्रक्रिया के तीन चरण बताये, 1. मेधा-क्रियाशीलता, 2. रूप-रेखा क्रियाशीलता और 3. चयन/चुनाव(Choice) क्रियाशीलता। उसने तथ्यों और मूल्यों में एक अन्तर स्पष्ट किया और अपने विश्लेषण में

तथ्यों को मूल्यों से पृथक रखा। साइमन ने तार्किकता को निर्णय-निर्माण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया और उसको साधन-साध्य के सन्दर्भ में परिभाषित किया। उसने पूर्ण तार्किकता के स्थान पर सीमित तार्किकता का विचार रखा। विशेष, बात यह है कि साइमन ने प्रशासनिक मनुष्य की एक क्रान्तिकारी अवधारणा प्रस्तुत की। यही प्रशासनिक मनुष्य, सीमित तार्किकता के आधार पर निर्णय लेता है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- हर्बर्ट साइमन की बौद्धिक क्षमताऐं क्या हैं, इसे जान पाओगे।
- उसने निर्णय-निर्माण को प्रशासनिक विश्लेषण का विषय क्यों बनाया और उसका महत्व क्या है, इस सम्बन्ध में जान पाओगे।
- निर्णय-निर्माण, व्यवहार और तार्किकता में सम्बन्ध क्या है, इसे जान पाओगे।
- निर्णय-निर्माण के निर्धारक तत्व क्या हैं, ये जान सकोगे।
- तथ्यों और मूल्यों का सम्बन्ध क्या है और साइमन तथ्यों को मूल्यों से पृथक रखना चाहता था। इस विषय में जान पाओगे।

12.2 हर्बर्ट साइमन- एक परिचय

हर्बर्ट ए0 साइमन 1916-2001 आधुनिक जगत का एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिसमें सामाजिक विज्ञान के प्रत्येक पहलू का समान रूप से समावेश देखने को मिलता है। राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन, तर्कशास्त्र, लोक प्रशासन और कम्प्यूटर साइंस जैसे सभी विषयों पर उसका पूरा नियंत्रण था। जिन विषयों के कारण आपको साइमन का अध्ययन करना है वह है, औद्योगिक प्रशासन और प्रबन्धन। यहाँ यह समझाना होगा कि एक राजनीति शास्त्री ने किस तरह गणित और अर्थशास्त्र के मार्ग से गुजर कर एक मनोवैज्ञानिक शोधकर्ता के रूप में अपनी पहचान बनाई।

साइमन एक ऐसा चिन्तक है जिसने संसार के सभी सामाजिक विज्ञानों को स्वयं में समेटने का प्रयास किया है। साइमन किताबी कीड़ा नहीं था। पुस्तकालय में बैठकर अध्ययन करने में उसकी रूचि नहीं थी। उसका ज्ञान अनुभववाद पर टिका हुआ था। वह यथार्थवादी था। पर्यवेक्षण और अनुभव उसके अध्ययन के माध्यम थे, इसी पद्धति को अनुभववाद कहते हैं।

आपको यह पढ़कर आश्चर्य होगा कि एक ही समय में साइमन राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और लोक प्रशासन का प्रोफेसर था। इतना ही नहीं वह कम्प्यूटर सांइस और औद्योगिक अर्थशास्त्र का भी प्रोफेसर बना और अन्ततः 1978 में उसे जो नोबेल पुरस्कार मिला वह विषय था, अर्थशास्त्र। ऐसे विद्वान का बहुआयामी व्यक्तित्व होता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि साइमन अपनी बौद्धिक क्षमता के कारण अपने समय का बौद्धिक सम्राट बन गया था।

साइमन पर मेरी पार्कर फोलेट का गहरा प्रभाव था। फोलेट ने संगठन में मानव समूह की भूमिका को महत्व दिया है। साइमन पर इस दृष्टिकोण ने गहरी छाप छोड़ी। इसीलिए साइमन अपने जिस ग्रन्थ से सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ वह उसका महान शोध प्रबन्ध (पी0एचडी0) था। जिसका शीर्षक है 'प्रशासनिक व्यवहार'(एडमिनिस्टेटिव बिहैवियर) जो 1947 में प्रकाशित हुई। यह ग्रन्थ राजनीति विज्ञान के महानतम ग्रन्थों में से एक है। साइमन के अन्य महत्वपूर्ण

ग्रन्थ हैं- 'आर्गनाइजेशन', 'पब्लिक ऐडमिनिस्टेशन' और 'फन्डामेन्टल रिसर्च इन ऐडमिनिस्टेशन'। ये ग्रन्थ व्यापार शिक्षा, लोक प्रशासन और संगठनात्मक समाजशास्त्र के क्षेत्रों में मील का पत्थर माने जाते हैं।

साइमन ने लगभग एक हजार पुस्तकें और हजारों शोध-पत्र लिखे। उसके इस योगदान के कारण उसे लगभग दो दर्जन विश्वविद्यालयों से मानद उपाधियां प्राप्त हुई।

12.3 साइमन की अध्ययन पद्धति

आपके यह याद रखना होगा कि आज के युग में समाजशास्त्रीय अध्ययन के लिये 'अन्तर-अनुशासनीय उपागम' (Inter-Disciplinary Approach) का बहुत महत्व है। क्या है यह उपागम अथवा पद्धति? इसका स्पष्ट उत्तर है, विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का शोध में सहारा लेना। साइमन ने प्रशासनिक अध्ययन के लिये मनोविज्ञान, मानव विज्ञान और समाजशास्त्र से पूरी सहायता ली। मानव व्यवहार के अध्ययन के लिये यह अनिवार्य है। इस तरह साइमन ने प्रशासन को मनुष्य के व्यवहार से जोड़कर देखा। इस दृष्टिकोण को व्यवहारवाद (Behaviouralism) कहा जाता है।

साइमन की दृष्टि में प्रशासन का सम्बन्ध व्यक्तियों से है, जो एक प्रशासनिक व्यवहार को जन्म देता है। नौकरशाही, मानव सम्बन्ध, उत्प्रेरणा और निर्णय-निर्माण में यह व्यवहार स्पष्ट भूमिका अदा करता है। सारांश यह है कि प्रशासन व्यक्तियों का एक समूह है। यहाँ व्यक्तियों का एक व्यक्तित्व और एक सामूहिक व्यवहार होता है। इसी प्रशासनिक संरचना में निर्णय लिये जाते हैं। इस तरह निर्णय और व्यवहार का सम्बन्ध बनता है। इस सम्बन्ध का अध्ययन व्यवहारवादी (Empirical) दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, जैसा कि साइमन ने किया। इस तरह आप कह सकते हैं कि साइमन की अध्ययन पद्धति अन्तर-अनुशासनीय भी थी और व्यवहारवादी भी। इसी कारण उसकी प्रशासनिक खोजों में यथार्थ भी है और वैज्ञानिकता भी।

12.4 प्रशासनिक विज्ञान की ओर झुकाव

वैज्ञानिकता का अर्थ है- कार्य, कारण और परिणाम का सम्बन्ध। यदि आप प्रश्न करो कि कोई घटनाक्रम क्या है और क्यों है? तब हमें उस घटनाक्रम की प्रकृति और उसके घटित होने के कारण को जानना होगा, यही दृष्टिकोण वैज्ञानिकता है।

साइमन भी प्रशासक का, एक विज्ञान विकसित करना चाहता था। इसके लिये अनिवार्य था कि वह किसी परिकल्पना (hypothesis) का सहारा ले। लेकिन परिकल्पना का भी तो कोई आधार होना चाहिए। इस आधार की खोज के लिये साइमन ने अनुभवात्मक पद्धति का प्रयोग किया। साइमन इस विश्वास के साथ आगे बढ़ा कि मानव व्यवहार किसी घटना का निर्धारण करता है, इसलिये प्रशासन के अध्ययन के लिये साइमन ने अनुभवात्मक उपागम को अपनाने की सिफारिश की। परिकल्पनाओं के क्रम में उसने सक्षमता और मितव्ययीता (Economy) को भी जोड़ा, क्योंकि यह दोनों बातें प्रभावशाली प्रशासन का मापदण्ड हो सकती हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि साइमन का झुकाव प्रशासन को विज्ञान बनाने की ओर अधिक था। इसलिये वह एक ऐसे सिद्धान्त की खोज में था, जो सर्वमान्य हो और सार्वभौमिक हो। आगे चलकर हम देखेंगे कि उसने प्रशासन का एक सिद्धान्त प्रतिपादित करने के लिये किस अवधारणा को तार्किक सिद्ध किया।

12.5 शास्त्रीय सिद्धान्तों का विरोध

प्रशासन के शास्त्रीय सिद्धान्तों का अर्थ है, पारम्परिक सिद्धान्तों से चिपके रहना। साइमन प्रशासनिक सिद्धान्तों के शास्त्रीय दृष्टिकोण को संकुचित और निर्जीव मानता है। उसके अनुसार प्रशासन का पारम्परिक उपागम मात्र कल्पनाओं पर टिका हुआ है, वह अनुपयोगी और अर्थहीन हो चुका है। उसका विश्वास था कि लोक प्रशासन के तत्कालीन सिद्धान्तों और प्रभावशाली व्यवहार में गहरा अन्तर है। मात्र आँखें बन्द करके क्या और क्यों का उत्तर दिये बिना प्रशासन के शास्त्रीय सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेना तर्क-संगत दृष्टिकोण नहीं हो सकता।

साइमन का कहना यह था कि प्रशासन के क्षेत्र में पहले शोध होना चाहिए। प्रशासन में प्रयोग होने वाले एक सामान्य शब्दावली का विकास होना चाहिए। शोध से पहले एक निश्चित परिकल्पना तय होनी चाहिए और उसका विश्लेषण होना चाहिए। क्षमताओं, योग्यताओं, स्वभावों, मूल्यों और इच्छाओं का ज्ञान होना चाहिए। यदि यह सब होता है, तब प्रशासन के सार्थक सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा सकते हैं।

शास्त्रीय विचारधारा के समर्थकों ने अपने प्रशासनिक सिद्धान्तों से 'प्रौद्योगिकी' को क्रियान्वयन से पृथक कर दिया था। साइमन ने शास्त्रीय सिद्धान्तकारों के इस दृष्टिकोण को तो स्वीकार किया कि सम्पूर्ण प्रशासकीय घटनाक्रम (Phenomenon) को समझे बिना प्रशासनिक सिद्धान्तों का निर्माण सम्भव नहीं है। साइमन ने फेयोल के 'पी0ओ0ओ0सी0सी0' (योजना, संगठन, आदेश, समन्वय व नियंत्रण) और गुलिक के 'पोस्डकार्ब' की अवधारणा को नकारा नहीं, बल्कि उनको निर्णय-निर्माण की अवधारणा में समेटने का प्रयास किया है।

साइमन, परम्परावादी नीति को प्रशासन से पृथक रखने के पक्षधर थे। ऐसा वे तथ्यात्मक और मूल्यात्मक दोनों आधारों पर करने के लिये तैयार थे। साइमन ने निर्णय-निर्माण को विश्लेषण का विषय बनाकर तथ्य और मूल्य को एक-दूसरे से प्रथक करने का सुझाव दिया। उसके अनुसार ऐसा करने से प्रशासन का एक विज्ञान विकसित हो सकता है।

साइमन का विश्वास है कि प्रशासन का विज्ञान प्रशासनिक निर्णयों के तथ्यों पर आधारित होना चाहिए, प्रशासनिक विज्ञान की यही माँग है। परम्परावादी सिद्धान्तकार जहाँ मूल्यों पर आधारित अनुमानों और कल्पनाओं को अपने सिद्धान्तों का आधार बनाते हैं, वहाँ साइमन एक व्यवस्थित, अनुभवात्मक खोज और विश्लेषण पर बल देता है। वह आगमनात्मक और पर्यवेक्षणात्मक पद्धतियों पर बल देता है।

साइमन दो प्रकार के विज्ञानों की बात करता है- शुद्ध तथा व्यवहारिक, और विश्वास व्यक्त करता है कि व्यवहारिक विज्ञान निर्णय-निर्माण में प्रशासन की सहायता करता है। साइमन का यह भी विश्वास है कि यदि निर्णय-निर्माण को विश्लेषण का विषय बनाया जायेगा तो वह निजी प्रशासन और लोक प्रशासन दोनों पर लागू होगा।

साइमन ने शास्त्रीय सिद्धान्तकारों के सिद्धान्त- कार्य विभाजन, समादेश की एकता (Unity of Command) और नियंत्रण का विस्तार (Span of Control) को अपनी आलोचना का इसलिये निशाना बनाया, क्योंकि उनमें आन्तरिक अन्तर्विरोध है। ये सिद्धान्त ना केवल उलझे हुये हैं, बल्कि भ्रमित करने वाले हैं। इस तरह साइमन परम्परावादियों के सिद्धान्तों में और कार्यन्वन में एक रिक्तता देखता है।

12.6 निर्णय-निर्माण

पिछले पन्नों में हम कई बार निर्णय-निर्माण (Decision Making) शब्द का प्रयोग कर चुके हैं। तब आप स्वाभाविक तौर पर यह प्रश्न करोगे कि निर्णय-निर्माण की अवधारणा है क्या? लेकिन इससे पहले कि आपके प्रश्न का उत्तर दिया जाये, आपको यह समझना होगा कि प्रत्येक प्रशासनिक चिन्तक ने अपने अध्ययन के लिये

विश्लेषण की एक अवधारणात्मक इकाई चुनी है। उदाहरण के लिये वुडरो विल्सन ने प्रशासन को विज्ञान के जोड़ा, हैनरी फेयोल ने प्रबन्धन को अपना विषय बनाया, मैक्स वेबर ने विधिक-तार्किक नौकरशाही को, लूथर गुलिक ने पोस्डकार्ब को, मैरी पार्कर फालेट ने रचनात्मक द्वन्द्व को और मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष को अपने अध्ययन विश्लेषण का विषय बनाया।

अतः हमें याद रखना होगा कि हरबर्ट साइमन के विश्लेषण की इकाई है, निर्णय-निर्माण। अब इस प्रश्न का सरलता से उत्तर मिल सकेगा कि साइमन की दृष्टि में निर्णय-निर्माण क्या है?

साइमन के अनुसार संगठन, प्रशासन की बुनियादी इकाई है और संगठन निर्णय-निर्माणकर्ताओं की एक संरचना है। संगठन इकाइयों से मिलकर बनता है और निणयों का प्रभाव संगठन के प्रत्येक सदस्य पर पड़ता है। इस तरह एक मनोवैज्ञानिक घटनाक्रम विकसित होता है। साइमन इस घटनाक्रम को बहुत महत्व देता है।

साइमन का कहना है कि प्रत्येक निर्णय अनेक परिसरों पर आधारित होता है। इन परिसरों का निर्धारण कैसे होता है? साइमन इस तथ्य की खोज करता है। शोध के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचता है कि कुछ परिसर तो निर्णय-निर्माणता की वरियता का फल होते हैं; कुछ सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम होते हैं और कुछ संगठन की आवश्यकता के कारण अस्तित्व में आते हैं। साइमन का मानना है कि निर्णय संगठन के प्रत्येक स्तर पर लेना चाहिये। उच्च प्रबन्धन का यह अधिकार नहीं है कि वह निम्न स्तर पर निर्णय लेने में अपनी मर्जी चलाये। हाँ, वह प्रत्येक स्तर के निर्णय को प्रभावित कर सकता है। वह निर्णय लेने के लिये परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है या उनके लिये संरचनाऐं उपलब्ध करा सकता है।

साइमन के अनुसार निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया के तीन चरण होते हैं, पहला- मेधा क्रियाशीलता अर्थात् निर्णय-निर्माण के लिये मेधा या बुद्धि का प्रयोग करके ऐसे अवसरों को खोजना जो निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावशाली बना सके। दूसरा- रूप-रेखा क्रियाशीलता अर्थात् क्रिया के लिये सम्भव रास्ते खोजना, तथा तीसरा-चयन या चुनाव क्रियाशीलता अर्थात क्रिया के किसी एक रास्ते (कोर्स) को चुनना।

जहाँ तक पहले चरण का प्रश्न है, मुख्य कार्यपालक का यह अधिकार है कि वह संगठन की परिस्थितियों और पर्यावरण को पहचाने और इन परिस्थितियों को एक नया आयाम दें। दूसरा चरण अधिक जटिल है। यहाँ क्रिया के सभी सम्भव विकल्प (मार्ग) खोजे और पहचाने जाते हैं। इस प्रक्रिया में समय और क्षमता (सक्रियता) दोंनो बहुत अधिक लगते हैं। अन्त में मुख्य कार्यपालक क्रिया के विभिन्न मार्गों(Courses) से एक सवोत्तम विकल्प चुनता है।

12.7 निर्णय-निर्माण और मूल्य-तथ्य विवाद

राजनीति विज्ञान में वर्तमान समय में मूल्यों और तथ्यों का विवाद एक ऐसा विषय है जो राजनीति विज्ञान के प्रत्येक अनुशासन अथवा शाखा की प्रकृति निश्चित करता है। आधुनिक राजनीति, मूल्यों को तथ्यों से प्रथक रखना चाहती है। यही स्थिति प्रशासन में भी है। आधुनिक प्रशासनिक चिन्तक प्रशासन को विज्ञान का दर्जा दिलाने के लिये उतावले दिखाई देते हैं। साइमन का भी यही दृष्टिकोण है।

उसका कहना है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण तब ही अपनाया जा सकता है, जब मूल्यात्मक फैसलों को अध्ययन या शोध से दूर रखा जाये। अध्ययनकर्ता को अपना पूरा ध्यान तथ्यों पर लगाना चाहिए। जिसका अर्थ होगा शब्दों की संक्षिप्त परिभाषा, कठोर और तार्किक विश्लेषण, प्रशासन से सम्बन्धित तथ्यपरक वक्तव्य। साइमन के अनुसार यदि प्रशासन को विज्ञान बनाना है, तब तथ्यों को ही आधार बनाना होगा। वक्तव्यों का सार कल्पनाऐं ना हों, बल्कि तथ्य हों। यह नहीं कहना है कि 'क्या होना चाहिए' यह देखना है कि 'क्या है' और 'क्या हो सकता है।' विज्ञान के अध्ययन में नैतिकता या मूल्यों का कोई स्थान नहीं है।

साइमन का स्पष्ट मत है कि निर्णय-निर्माण में मूलरूप से दो विकल्पों में से एक को चुनना होता है और यहीं पर यह उलझाव पैदा होता है कि मूल्यों को चुना जाये या तथ्यों को। या फिर स्वाभाविक रूप से चुनाव का फैसला ही मूल्यपरक बन जाता है।

यहाँ साइमन का यह कहना है कि अध्ययन के दौरान मूल्यों से बचना सम्भव नहीं है। लेकिन जहाँ तक सम्भव हो सके तथ्यों का अध्ययन करना चाहिए। तथ्यों के अध्ययन से यथार्थ का पता लगता है। घटना या संरचना के वर्तमान स्वरूप का पता लगता है। उसको देखा जा सकता है, मापा-तोला जा सकता है और उसको सिद्ध किया जा सकता है। दूसरी ओर मूल्य वरीयता की अभिव्यक्ति हैं। अध्ययनकर्ता की पसन्द, नापसन्द मूल्यों का निर्धारण करती है। उचित क्या है? यह तय करना कठिन है, इसीलिये तथ्यात्मक अध्ययन तार्किक होता है और सरल भी।

साइमन का विश्वास है कि तार्किकता, निर्णयों का आधार होना चाहिए। तार्किकता और तथ्यात्मिकता(अर्थात तर्क और तथ्य) का गहरा सम्बन्ध है। मूल्य तार्किक नहीं होते हैं, बल्कि उनका आधार आस्था है। आस्था ना वैज्ञानिक होती है, ना तर्कसंगत, इसलिये मूल्यों पर आधारित निर्णय क्षणिक होते हैं। साइमन मूल्यों के महत्व को नकारता नहीं है। वह केवल यह कहना चाहता है कि प्रशासन के सिद्धान्त तथ्यों पर आधारित हों, भले ही उनका लक्ष्य मूल्यात्मक हो। लक्ष्य की प्राप्ति के लिये साधन तथ्यात्मक होने चाहिए।

समूह व्यवहार, संगठन का एक अनिवार्य घटनाक्रम है। जैसा कि बताया जा चुका है कि संगठन में निर्णय प्रत्येक स्तर पर लिये जाते हैं। इन निर्णयों का एक उद्देश्य होता है। अतः समूह व्यवहार निर्णय-निर्माण में एक अनिवार्य भूमिका अदा करता है। व्यवहार एक तथ्य है, जिसका अनुभवात्मक अध्ययन किया जा सकता है। साइमन का दावा है कि यदि निर्णयों को व्यवहार से जोड़कर देखा जाये तो समझ में आ जायेगा कि निर्णय तर्कसंगत है।

इस बात को साइमन के शब्दों में इस तरह समझिये, प्रत्येक निर्णय का सम्बन्ध एक ध्येय और एक व्यवहार से होता है। यह ध्येय हो सकता है, अन्तिम ध्येय ना हो, बल्कि अन्तिम ध्येय की बीच की एक कड़ी हो। प्रत्येक ध्येय को प्राप्त करने में एक व्यवहार पनपता है। अन्तिम ध्येय तक जो प्रक्रिया चलती है, वह तथ्यों पर आधारित होती है। लेकिन अन्तिम लक्ष्य का निर्धारण मूल्य ही करते हैं। 'मूल्य फैसले'(Value Judgement) का रूप होगा, जबकि उसका क्रियान्वयन 'तथ्यात्मक फैसले'(Factual-Judgement) की परिधि में आयेगा। साइमन 'मूल्य-निर्णय' और 'तथ्य-निर्णय' जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं करता है। वह केवल तथ्य-परिसर और मूल्य-परिसर की बात करता है। वह तथ्य-परिसर को अधिक महत्व देता है, लेकिन तथ्य-परिसर और मूल्य-परिसर के अन्तःसम्बन्धों से इनकार नहीं करता है।

12.8 प्रशासनिक सिद्धान्त और तार्किकता

साइमन के विचारों को समझने में आपको चार बातें याद रखना है- समूह व्यवहार, तथ्यपरकता, तार्किकता और निर्णय-निर्माण। इन चारों घटकों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। लेकिन अब आपको तार्किकता(Rationality) का अर्थ और निर्णय-निर्माण में उसका महत्व समझना होगा।

साइमन के अनुसार चयन या किसी बात का चुनाव करते समय चयनकर्ता को तार्किक होना पड़ेगा। तार्किकता का अर्थ है, किसी मूल्यात्मक सर्वमान्य व्यवस्था के सन्दर्भ में व्यवहार के एक ऐसे विकल्प को चुनना जिसका वैज्ञानिक आधार पर मूल्यांकन किया जा सके। इसे इस तरह समझिये- हमें अनके व्यवहारों में से एक ऐसे व्यवहार का चुनाव करना होता है, जिसके परिणामों का किसी मूल्यात्मक व्यवस्था के सन्दर्भ में मूल्याकंन किया जा सके। ऐसे व्यवहार के आधार पर जो निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ होती है, वह तार्किक या तर्कसंगत (Rational) होती है।

किसी संगठन में निर्णय प्रशासक लेते हैं। निर्णय लेने से पहले उन्हें लिये जाने वाले निर्णयों के परिणामों का ज्ञान होना चाहिए। व्यवहार अनेक हो सकते हैं। उनमें से एक विकल्प को चुनना होगा। यही निर्णय-निर्माण की तार्किकता है।

साइमन ने एक और शब्द का प्रयोग किया है। यह है 'साधन-साध्य' (Means-Address)। साध्य का अर्थ है- अन्तिम उद्देश्य। इस अन्तिम उद्देश्य को पाने के लिये यदि उपयुक्त साधनों से काम लिया जाता है तो कहा जायेगा कि निर्णय तार्किक है। अर्थात् तार्किक निर्णय-निर्माण के लिये साधन-साध्य का उचित सम्बन्ध होना जरूरी है। इस साधनों को साध्य से पृथक नहीं किया जा सकता है।

12.9 साधन-साध्य और तार्किकता

साइमन ने साधन-साध्य अवधारणा को निर्णय-निर्माण की तार्किकता का आधार तो बना लिया, लेकिन वह इस नतीजे पर भी पहुँचा कि साधन-साध्य विश्लेषण कुछ समस्याऐं भी पैदा कर सकता है जो इस प्रकार हैं, पहला- अपूर्ण अथवा त्रुटिपूर्ण ढंग से चुने गये विशिष्ट व्यवहार के विकल्पों के द्वारा प्राप्त उद्देश्य अथवा साध्य आगामी असफल साध्यों की श्रृंखला बना सकते हैं, दूसरा- वास्तविक परिस्थितियों में साधनों को साध्य से अलग करना असम्भव है, तथा तीसरा- साधन-साध्य शब्दावली समय तत्व की भूमिका को पीछे ढकेल सकती है।

साइमन तार्किकता के विभिन्न रूपों मे अन्तर बताता है -

1. एक निर्णय तब वस्तुनिष्ठ तौर पर(Objectively) तार्किक है, जब एक परिस्थिति में उचित व्यवहार का प्रयेाग किया जाये ताकि अधिकतम मूल्यों की प्राप्ति हो सके।
2. एक निर्णय तब व्यक्तिनिष्ठ तौर पर (Subjectively) तार्किक है, जब निर्णय विषय के ज्ञान को बढ़ाता है।
3. एक निर्णय तब सजग तौर पर तार्किक है, जहाँ साधन और साध्य में तालमेल सजगता के साथ बैठाया जाता है।
4. एक निर्णय तब सोच विचार के आधार पर तार्किक है, जहाँ साधन और साध्य के मध्य तालमेल सोच-समझकर बैठाया जाता है।
5. एक निर्णय तब संगठनात्मकता के आधार पर तार्किक होता है, यदि उसका झुकाव संगठन के लक्ष्यों की ओर है।
6. एक निर्णय व्यक्तिक रूप से तार्किक है, यदि निर्णय का झुकाव व्यक्ति के उद्देश्यों की ओर है।

साइमन यथार्थवादी है। वह समझता है कि प्रशासन में या प्रशासनिक व्यवहार में पूर्ण तार्किकता का विचार असम्भव है। उसके अनुसार मानव-व्यवहार ना तो पूर्णतया तार्किक हो सकता है और ना ही पूर्णतया अतार्किक होता है। यहाँ वह सीमित तार्किकता (Branded Rationality) का विचार रखता है। सीमित तार्किकता साइमन की अवधारणात्मक इमारत का मूल खण्ड (Block) है। उसने सीमित तार्किकता को प्रत्येक विषय- प्रशासन, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र सभी का मूल मंत्र माना है। वह बुद्धि में भी सीमित तार्किकता देखता है। उसका यह विचार क्रान्तिकारी है। पूर्ण तार्किकता का दावा है कि निर्णयों को अच्छे से अच्छा बनाया जा सकता है। साइमन इस दावे को खारिज कर देता है। उसका कहना है कि पूर्ण तार्किकता के आधार पर यह कहा जा सकता है कि निर्णय विकल्पों की उपयोगिता जानते हैं और वे सभी विकल्पों को चुनते हैं। लेकिन यह परिकल्पना निराधार है। पूर्ण तार्किकता की अवधारणा निराधार है। साइमन 'अच्छे से अच्छे' के स्थान पर 'संतोषजनक' शब्द का प्रयोग करना उचित समझता है।

12.10 प्रशासनिक मनुष्य: एक प्रतिमान

निर्णय-निर्माण के अनेक प्रतिमान (Model) चलन में रहे हैं। यदि निर्णय-निर्माण को व्यवहार से जोड़ दिया जाये तो अनेक अवधारणाऐं सामने आती हैं, जिनका प्रतिनिधित्व आर्थिक मनुष्य और सामाजिक मनुष्य करता है। आर्थिक मनुष्य को पूर्ण तार्किक कहा गया है, जबकि सामाजिक मनुष्य को पूर्ण अतार्किक माना गया है। यह दो प्रतिमान प्रचलित रहे हैं। साइमन ने प्रशासनिक मनुष्य का प्रतिमान तैयार किया है। यह प्रतिमान आर्थिक मनुष्य के समीप है। अब आपको समझना होगा, प्रशासनिक मनुष्य को। हम निर्णय-निर्माण की बात करते रहे हैं। जो निर्णय लेता है, वह निर्णय-निर्माता या रचियता होता है। साइमन इस व्यक्ति को प्रशासनिक मनुष्य कहता है। प्रशासनिक मनुष्य की विशेषता यह है कि वह सम्भव विकल्पों को देखता है (ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण करता है), लेकिन सभी विकल्पों को नहीं देख सकता है और समस्त परिणामों की भविष्यवाणी भी नहीं कर सकता है। वह किसी तरह 'पर्याप्त अच्छे' से सन्तुष्ट होता है 'अच्छे से अच्छे' से नहीं।

प्रशासनिक मनुष्य का संसार काल्पनिक नहीं होता है, वह यथार्थ के समीप होता है। वह किसी एक स्थिति का एक सरल चित्र सामने रखता है और उन तथ्यों को सामने लाता है जो निर्णय लेने में तार्किक भी हों और अनिवार्य भी। प्रशासनिक मनुष्य अपनी पसन्द के लिये समस्त सम्भव विकल्पों को अपने चुनाव का कारण नहीं बनाता है। वह ऐसा कुछ भी नहीं करता है जो उसकी क्षमता के बाहर की बात हो। एक अर्थ में साइमन का प्रशासनिक मनुष्य प्रयास करता है कि मनुष्य तार्किक बने, लेकिन उसमें इतनी योग्यता नहीं होती है कि वह अच्छे को और अच्छा करें,(Maximise) या पूर्णतया सन्तुष्टि प्रदान करें। यही साइमन का निर्णय-निर्माण प्रतिमान है।

12.11 योजनाबद्ध और गैर-योजनाबद्ध निर्णय

साइमन के अनुसार निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया संगठनों में चलती है। उसने इस प्रक्रिया का विस्तार से अध्ययन किया है। वह दो प्रकार के निर्णयों की बात करता है- योजनाबद्ध निर्णय और गैर-योजनाबद्ध निर्णय (Programmed-NonProgrammed)। जो निर्णय बार-बार लिये जाये या लिये जा सकें और वे अपनी प्रकृति से सामान्य हों, उनको योजनाबद्ध या नियोजित किया गया कहा जायेगा। ऐसे निर्णय लेने में प्रशासक को किसी कठिनाई का सामना करना नहीं होता। प्रशासक के सामने पहले से एक कार्यविधि (Procedure) होती है, या तैयार की जाती है और निर्धारित कार्यविधि के अनुसार निर्णय लिये जाते हैं।

गैर-योजनाबद्ध निर्णय नये होते हैं, उनकी पहले से कोई रूप-रेखा नहीं होती है। उनके बारे में कोई निर्धारित कार्यविधि भी नहीं होती है। इस तरह के प्रत्येक निर्णय को एक प्रथक स्वतंत्र दृष्टि से देखा जाता है। कार्यपालक को प्रत्येक विषय (Case) पर एक नया निर्णय लेना होता है। लेकिन दोनों प्रकार के निर्णयों में अनेक विशेषताएँ सामान्य होती हैं। जैसे स्थिति को परिभाषित करना, साधन और साध्य का विश्लेषण करना, समस्याओं का वर्गीकरण, विकल्पों का चुनाव करना; 'अच्छे से अच्छे' के स्थान पर 'संतोषजनक' को मापदण्ड बनाना इत्यादि। दोनों प्रकार के निर्णयों में साइमन की दृष्टि में अन्तर यह है कि पहले प्रकार के निर्णय के सन्दर्भ में संगठन एक तकनीक के माध्यम से विकल्प सामने रखता है, लेकिन दूसरे प्रकार के निर्णय के बारे में संगठन केवल मापदण्ड प्रदान करता है। जिसके माध्यम से कार्यविधियों को खोजा जा सकता है।

यहाँ प्रश्न यह पूछा जा सकता है कि योजनाबद्ध निर्णयों की तकनीकी क्या है? साइमन के अनुसार स्वभाव, लिपिकीय दिन-प्रतिदिन के कार्य, जानकारी और निपुणता इसकी तकनीकें हैं। दूसरी ओर प्रचलित नियम, कार्यपालकों का चयन और प्रशिक्षण, उच्चतर निपुणता, निर्णय लेने की क्षमता, कुछ नया करने की योग्यता गैर-योजनाबद्ध निर्णयों की तकनीकें हैं।

साइमन की दृष्टि में गणित का बहुत महत्व है। तर्कसंगत चयन के लिये गणितीय प्रतिमान तैयार करने की वह सलाह देता है। निर्णय-निर्माण में गणितीय उपकरणों, क्रियात्मक शोध, इलैक्ट्रानिक डाटा प्रोसेसिंग, व्यवस्था विश्लेषण, कम्प्यूटर अनुकृति (simulation) इत्यादि के प्रयोग पर वह जोर देता है। इस तरह की तकनीकों से मध्य प्रबन्धकीय सेवी-वर्ग पर से निर्भरता कम हो सकती है और निर्णय-निर्माण का केन्द्रीयकरण हो सकता है।

साइमन, कम्प्यूटर को निर्णय-निर्माण की दिशा में एक क्रान्ति मानता है। उसका तर्क है कि कम्प्यूटर का प्रयोग और नवीन गणितीय तकनीकें निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया का पूरी तरह केन्द्रीयकरण कर सकती हैं। नई तकनीकों से हस्तान्तरण और विकेन्द्रीकरण की अवधारणा बदल सकती है। इस तरह निर्णय अधिक तार्किक हो सकते हैं। अतः साइमन परामर्श देता है कि निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को जहाँ तक सम्भव हो सके अधिक से अधिक कम्प्यूटरकृत किया जाना चाहिए। ऐसा करने से संगठनों का माहौल बदलेगा। निर्णय अधिक तर्कसंगत होंगे और कार्यपालक का कार्य सरल और संतोषजनक होगा।

12.12 निर्णय-निर्माण के निर्धारक तत्व

निर्णय-निर्माण को विश्लेषण की इकाई बनाने और उसके घटकों पर बहस के बाद साइमन कुछ ऐसे तत्वों की ओर इशारा करता है, जो निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया का निर्धारण करते हैं। ये हैं- संगठनात्मक प्रभाव के ढंग या तरीके, सत्ता, संगठनात्मक वफादारियां, परामर्श और सूचना, प्रशिक्षण, तथा प्रशासनिक क्षमता। अब हम इन निर्धारक तत्वों की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

12.12.1 संगठनात्मक प्रभाव के ढंग

साइमन 'प्रशासनिक मनुष्य' के साथ 'संगठन मनुष्य' की भी बात करता है। दोनों मनुष्यों से उसका अर्थ एक है। उसके अनुसार 'संगठन मनुष्य' के व्यवहार पर दो प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं। पहला- आन्तरिक प्रभाव और दूसरा - बाहरी प्रभाव। अभिवृत्तियां (सुख) और स्वभाव (आदतें) प्रशासक पर गहरा प्रभाव डालती हैं। वह इन अभिवृत्तियों और आदतों से प्रभावित होकर ऐच्छिक निर्णय लेता है, जिन्हें आन्तरिक प्रभावों का नतीजा कहा जा सकता है। लेकिन यदि संगठन से बाहर निर्णय लिये जायें और प्रशासक या 'संगठन मनुष्य' पर थोपे जायें, किसी सत्ता के द्वारा या परामर्श के माध्यम से। तब वह बाहरी प्रभाव का परिणाम होंगे।

12.12.2 सत्ता

संगठन की कुछ अनिवार्य मांगें होती हैं। सत्ता के माध्यम से 'संगठन मनुष्य' इन मांगों को पूरा करेन के योग्य होता है। आम राय यह है कि सत्ता ऊपर से नीचे (तल की ओर) आती है, साइमन यह तर्क नहीं मानता है। संगठन के प्रत्येक स्तर पर सत्ता हस्तक्षेप करती है। संगठनों में औपचारिक और अनौपचारिक दोनों प्रकार के सम्बन्ध विकसित होते हैं। सत्ता का प्रयोग संगठन में उपजे विवादों को सुलझाने के लिये होता है। एक कर्मचारी, सत्ता का पालन वहीं तक करता है, जहाँ तक उसका आचरण उसकी स्वीकृति देता है। साइमन के अनुसार, स्वीकृति का एक अंचल (Zone) होता है। यदि सत्ता इस अंचल से आगे बढती है तो अधीनस्थ आज्ञा का पालन करने से इनकार कर सकता है।

12.12.3 संगठनात्मक वफादारियां

संगठन परम है। जब संगठन के सदस्य संगठन को अपनी पहचान बना लेते हैं, तो यह संगठनात्मक वफादारी कहलाई जाती है। संगठन के अस्तित्व के लिये ऐसी वफादारी अनिवार्य हैं। लोगों को संगठन में जो जिम्मेदारी मिलती है, वे उसे पूरी निष्ठा से निभाते हैं।

12.12.4 सूचना और परामर्श

संगठन की प्रत्येक दिशा में सूचनाओं का सतत् प्रवाह संगठन की प्रभावशाली क्रयाशीलता के लिये अनिवार्य है। सूचनाओं से सगठन में गतिशीलता बनी रहती है। परामर्श संगठन के सफल संचालन के लिये स्नेहन अथवा चिकनाई का काम करता है। सूचना एवं परामर्श परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं। सटीक सूचनाओं को संग्रहित(इकट्ठा) करके तथा उनका उचित उपयोग निर्णय-निर्माण को प्रभावशाली बना सकता है।

12.12.5 प्रशिक्षण

निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया के दौरान प्रशासनिक मनुष्य को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। प्रशिक्षण एक ऐसा उपकरण है, जो इन चुनौतियों से निपटने में सहायक होता है। निर्णय लेते समय प्रशासनिक मनुष्य के पास अनेक विकल्प होते हैं। सही प्रशिक्षण प्रशासक को औचित्य के प्रयोग में सहायता प्रदान करता है।

12.12.6 प्रशासनिक कुशलता

एक प्रशासक का लक्ष्य क्या होना चाहिए? यह एक गम्भीर प्रश्न है। साइमन का उत्तर है- एक प्रशासक को, कुशलता को अपने प्रशासन का मापदण्ड बनाना चाहिए। सरकारी संगठन व्यवसायी नहीं होते हैं। लोक-कल्याण उनका ध्येय होता है। उनके पास जो संसाधन होते हैं उनका अधिकतम सदुपयोग करके ऐच्छिक परिणाम प्राप्त करना सरकारी संगठन की अनिवार्यता होती है। सरकारी संगठन धन अर्जित नहीं करते हैं, बल्कि धन खर्च करते हैं। ऐसे में न्यूनतम लागत में अधिकतम ऐच्छिक परिणाम प्राप्त करने को साइमन कुशलता की संज्ञा देता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कुशलता ही प्रभावशाली प्रशासन का मापदण्ड है। सत्ता और संगठनात्मक वफादारी व्यक्ति के मूल्य परिसर को प्रभावित करते हैं। लेकिन हाँ, कुशलता का मापदण्ड प्रशासक की क्षमता को प्रभावित करता है। 'कुशल बनो' यह प्रशासनिक मनुष्य के लिये सबसे बड़ा नारा है।

12.13 मूल्यांकन

साइमन ने संगठनों में निर्णय-निर्माण प्रक्रिया के विश्लेषण को अपने अध्ययन का केन्द्रीय विषय बनाया है। उसने निर्णय-निर्माण का सम्बन्ध प्रशासनिक व्यवहार से जोड़ा है। लेकिन यहाँ उसने जिस बात की अनदेखी की है वह है- सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पर्यावरण की। वह यह भूल गया कि ऐसे पर्यावरण का प्रभाव निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया और व्यवहार पर कितना गहरा पड़ता है। इसी तरह उसने अपने विश्लेषण में मूल्यों की भूमिका की भी अवहेलना की है। मूल्य, नीति-निर्माण में एक अहम भूमिका अदा करते हैं। मूल्यों की अवहेलना प्रशासन को मात्र यांत्रिकी बना देती है। सच यह है कि साइमन का तथ्यपरक सिद्धान्त निजी प्रशासन के लिए है, ना कि लोक प्रशासन के लिए।

यह सही है कि निर्णय-निर्माण को प्रशासकीय विश्लेषण का विषय बनाकर साइमन ने प्रशासन को वैज्ञानिकता प्रदान की है। लेकिन उसने व्यक्तिक उत्प्रेरणाओं और भावनाओं को महत्व न देकर एक सच्चाई से मूँह मोड़ लिया है। उसके सिद्धान्त में व्यक्ति की हैसियत संगठन में गुम हो गयी है और तर्क ने भावना को नष्ट कर दिया है।

साइमन का सबसे बड़ा आलोचक चेस्टर बर्नार्ड है। उसके अनुसार ऐसा लगता है साइमन कोई प्रशासन का सिद्धान्त नहीं बल्कि भौतिकी का सिद्धान्त विकसित कर रहा हो और कभी ऐसा लगता है कि वह पूरे ब्रहमान्ड की गुत्थी सुलझा रहा हो। बर्नार्ड के अनुसार साइमन द्वारा प्रयोग किये गये शब्द 'तार्किक' और 'कुशल' विवादास्पद शब्दावली है। दूसरे साइमन निणयों की अनिश्चितता की अनदेखी करता है और राजनीतिक पहलू के महत्व को स्वीकार नहीं करता है।

आलोचकों का सबसे बड़ा तर्क यह है कि साइमन ने भावनात्मक पहलू की अवहेलना की है। साथ ही उसने राजनीति और प्रशासन को एक-दूसरे से पृथक रखने का प्रयास किया है। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है कि निर्णय-निर्माण की अवधारणा एक क्रान्तिकारी खोज है।

अभ्यास प्रश्न-

1. हर्बर्ट साइमन के शोध प्रबन्ध का क्या नाम है?
   क. लोक प्रशासन ख. फन्डामेंटल रिसर्च इन ऐडमिनिस्ट्रेशन
   ग. ऐडमिनिस्ट्रेटिव बिहैवियर घ. आर्गनाइजेशन
2. साइमन पर किस प्रशासनिक चिन्तक का गहरा प्रभाव पड़ा?
   क. मेरी पार्कर फालेट ख. उर्विक ग. अब्राहम मैस्लो घ. फ्रेडरिक हर्जबर्ग
3. हर्बर्ट साइमन के प्रशासनिक विश्लेषण की इकाई है?
   क. नौकरशाही ख. निर्णय-निर्माण ग. पोस्डकार्ब घ. समूह व्यवहार
4. साइमन ने जो प्रतिमान तैयार किया है उसका मनुष्य है?
   क. राजनीतिक ख. आर्थिक ग. सामाजिक घ. प्रशासनिक
5. साइमन का प्रमुख आलोचक है?
   क. मैक्स वेबर ख. चेस्टर बनार्ड ग. अब्राहम मैस्लो घ. फ्रेडरिक हर्जबर्ग

12.14 सारांश

1. हर्बर्ट साइमन महानतम समाजशास्त्रियों में से एक है। संगठनों में निर्णय-निर्माण प्रक्रिया उसका विश्व प्रसिद्ध सिद्धान्त है जिसके लिये (अर्थशास्त्र) उसे सन् 1978 में नोबेल पुरस्कार मिला।
2. निर्णय-निर्माण को केन्द्रीय विन्दु बनाकर साइमन प्रशासन का एक विज्ञान विकसित करना चाहता था।
3. उसने संगठन को निर्णय-निर्माताओं की एक संरचना बताया। उसके अनुसार निर्णय-निर्माण के तीन चरण होते हैं- मेधा क्रियाशीलता, रूपरेखा क्रिया-शीलता, तथा चयन क्रियाशीलता।
4. साइमन तथ्यों और मूल्यों में अन्तर देखता है और निर्णय-निर्माण के सन्दर्भ में वह एक-दूसरे से पृथक रखता है। लेकिन मूल्यों के महत्व को स्वीकारता है।
5. तार्किकता को साइमन निर्णय-निर्माण का आधार मानता है और वह तार्किकता को साधन-साध्य प्रतिमान के सन्दर्भ में स्पष्ट करता है।
6. लेकिन पूर्ण तार्किकता असम्भव है। इसलिये वह सीमित या 'परिसीमित तार्किकता' का विचार रखता है।
7. उसके अनुसार निर्णयों का आधार 'अच्छे से अच्छा' ना होकर संतोषजनक' होना चाहिए।
8. निर्णय-निर्माण के अनेक प्रतिमान अस्तित्व में हैं। लेकिन साइमन ने 'प्रशासनिक मनुष्य का प्रतिमान' तैयार करके सबको चौंका दिया। प्रशासनिक मनुष्य के निर्णय परिसीमित तार्किकता पर आधारित होते हैं।
9. साइमन ने योजनाबद्ध और गैर-योजनाबद्ध निर्णयों का विचार रखा। निर्णय-निर्माण में उसने आधुनिक तकनीकों के प्रयोग को (जिनमें कम्प्यूटर भी सम्मिलित है) बहुत महत्व दिया।

10. संगठनात्मक प्रभावों के सन्दर्भ में साइमन ने 'स्वीकारीय अंचल' का विचार रखा। सत्ता के हस्तक्षेप की यही सीमा है।

संक्षेप में, साइमन ने प्रशासन में व्यवहार को मान्यता दी और यही उसका सबसे बड़ा योगदान है।

12.15 शब्दावली

अनुभवात्मक उपागम- अंग्रेजी में अनुभवात्मक को 'एमपिरीकल' कहा जाता है। वह ज्ञान जो पर्यवेक्षण तथा प्रयोग से प्राप्त किया जाये, अनुभवात्मक कहलाता है। अनुभवात्मकवाद कल्पनाओं तथा परिकल्पनाओं को अध्ययन की पद्धति के रूप में अस्वीकार करता है।

तार्किक सकारात्मकतावाद- अंग्रेजी में तार्किक सकारात्मकतावाद को 'लॉजिकल पॉजिटिब्जिम' कहा जाता है। इसका अर्थ है, मात्र सकारात्मक तथ्यों और घटनाक्रम को स्वीकार करना और कार्य और कारणों की अनदेखी करना। अर्थात् जो सामने है वही वास्तविकता है और वही तर्कसंगत है।

प्रशासनिक मनुष्य- प्रशासनिक मनुष्य वह व्यक्ति है (कार्यपालक) जो विभिन्न तार्किक विकल्पों को सामने रखकर एक विकल्प को चुनता है और उसके आधार पर संगठन में निर्णय लेता है। लेकिन साइमन का यह भी विश्वास है कि प्रशासनिक मनुष्य विकल्प चुनने के लिये कोई संघर्ष नहीं करता है। वह संतुष्ट व्यक्ति है। 'पर्याप्त अच्छा' उसको संतोष देता है।

सीमित तार्किकता- अंग्रेजी में इसे 'बाउन्डेड रैशनेलिटि' कहा जाता है। कोई बात या घटना या तो तार्किक होती है या अतार्किक। पूर्ण तार्किकता का विचार निराधार है। इसलिये साइमन ने सीमित तार्किकता का विचार रखा। इसका अर्थ है, वह तार्किकता जिससे संतोष मिले। प्रशासनिक मनुष्य द्वारा निर्णय-निर्माण का आधार सीमित तार्किकता होना चाहिए, ताकि उसे निर्णय के बाद संतोष मिल सके।

स्वीकृति का अंचल- अंग्रेजी में इसे 'जोन ऑफ ऐक्सेप्टेन्स' कहते हैं। इसका अर्थ है कि संगठन में 'प्रशासनिक मनुष्य' के लिये सत्ता के हस्तक्षेप की स्वीकृति की एक सीमा होती है। अगर सत्ता का हस्तक्षेप उस सीमा को पार करता है तो अधीनस्थ अवज्ञा कर सकता है।

12.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग, **2.** क, **3.** ख, **4.** घ, **5.** ख

12.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. साइमन, ए0 हर्बर्ट: ऐडमिनिस्ट्रेटिव बिहैवियर, 1947, न्यूयार्क, दि फ्री प्रेस।
2. साइमन ए0, हर्बर्ट: आर्गनाइजेशन, 1958, दि फ्री प्रेस।
3. एन0 उमापाथी: हर्बट साइमन (लेख), ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिंर्कस (सम्पादन) डी0 रविन्द्र प्रसाद, स्टरलिंग, नई दिल्ली।
4. अवस्थी एवं अवस्थी: लोक प्रशासन, आसपेक्ट्स ऑफ ऐडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मी नारायण, आगरा।

12.18 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 अशोक कुमार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।
2. प्रशासनिक विचारक, आर0 पी0 जोशी एवं अंजु पारीक, रावत पब्लिकेशन।

3. Hunter, Crodhar Hayak : Harbert A. Symeon : The Bounds of Region in Modern America.
4. Symeon, Harbert : The New Science of Management Decision
5. Barker, R.J. S. : Administrative Theory and Public Administration.

12.19 निबन्धात्मक प्रश्न

1. साइमन का प्रशासन के लिये वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या था?
2. किस आधार पर साइमन ने शास्त्रीय सिद्धान्तों का विरोध किया?
3. साइमन को बहुआयामी चिन्तक क्यों कहा जाता है?
4. निर्णय-निर्माण का क्या अर्थ है? तथा निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया के कौन-कौन से चरण होते हैं?
5. साइमन की दृष्टि में निर्णय-निर्माण में तथ्यों और मूल्यों का क्या महत्व है?

इकाई- 13 अब्राहम एच0 मैस्लो

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 अब्राहम एच0 मैस्लो- एक परिचय
13.3मैस्लो की अभिप्रेरणा विचारधारा: आवश्यकता-क्रमिकता/सोपानिकता विचार
13.3.1 दैहिक एवं शारीरिक आवश्यकता
13.3.2 सुरक्षा की आवश्यकता
13.3.3 सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता
13.3.4 सम्मान की आवश्यता
13.3.5 आत्मसिद्धि की आवश्यकता
13.4 स्वस्थ व्यक्तित्व: आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास
13.5 व्यक्तित्व का मापन एवं शोध
13.6 मैस्लो की आलोचना
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

अब्राहम मैस्लो मानवतावादी मनोविज्ञान के आध्यात्मिक जनक माने गए हैं। व्यक्तित्व के अध्ययन के प्रति उनका मानवतावादी दृष्टिकोण था, जो सचमुच में मानवतावादी आन्दोलन का एक विशेष भाग था। मानवतावादी आन्दोलन की शुरूआत 1960 के दशक में हुई थी। इस आन्दोलन में व्यवहारवाद तथा मनोविश्लेषण दोनों ही विचारधाराओं की आलोचना की गयी और कहा गया कि इन दोनों में ही व्यक्तित्व का एक संक्षिप्त एवं सीमित अर्थ बतलाया गया है तथा इसका अध्ययन संकीर्ण दृष्टिकोण से किया है। मैस्लो ने मानवीय व्यवहार के अध्ययन और विश्लेषण को समझने के लिए अभिप्रेरणा को महत्वपूर्ण घटक माना। उन्होंने कुछ आवश्यकताओं को पहचाना और फिर उनका एक पदसोपान बनाया। मानव 'आनन्द' चाहने वाला प्राणी होता है और उनकी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करके उसे अभिप्रेरित किया जा सकता है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- अब्राहम मैस्लो के प्रशासनिक विचारों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- मैस्लो के आवश्यकता क्रमिकता/सोपानिकता सिद्धान्त के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

- मैस्लो का प्रशासनिक क्षेत्र में दिए गये योगदान के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

13.2 अब्राहम एच0 मैस्लो- एक परिचय

अब्राहम मैस्लो का जन्म 1 अप्रेल, 1908 में संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। वे मूलतः एक मनोवैज्ञानिक थे। मैस्लो ने मैक्स वर्थेमेर तथा कुर्ट कोफका के अधीन अपना अध्ययन कार्य किया। मैस्लो ने अपना अधिक ध्यान 'व्यक्तित्व' के अध्ययन पर लगाया। उनका मत था कि मनोविज्ञान ने अब तक अपना अधिक ध्यान मानवीय कमजोरियों पर लगाया है और मानवीय शक्तियों (स्ट्रैन्थ) को नजर अन्दाज किया है। उनका मत था मानवीय प्रकृति स्वभावतः अच्छी होती है। जैसे-जैसे व्यक्ति परिपक्व होता जाता है, उसकी रचनात्मक क्षमताएँ स्पष्ट होती जाती हैं। उनका स्पष्ट मत था कि मानवीय व्यवहार विध्वंसात्मक या हिंसात्मक नहीं होता। मैस्लो ने मानवीय मनोविज्ञान पर आधारित अपनी अभिप्रेरणा की विचारधारा का विकास किया। वे अब्राहम मैस्लो ही थे, जिन्होंने वर्ष 1943 में इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की, जब जुलाई 1943 के 'साइकोलोजिकल रिव्यू' में 'ए थ्योरी ऑफ ह्यूमन मोटिवेशन' शीर्षक से उनका लेख छपा। इस लेख में मैस्लो ने मानवीय आवश्यकताओं की क्रमिकता (हायरार्की) के विचार का प्रतिपादन किया। मैस्लो की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक 'मोटिवेशन एण्ड पर्सनालिटी' है जो सन् 1954 में प्रकाशित हुई थी। इसके अलावा उन्होंने कुछ और पुस्तकें तथा लेख लिखे। 'दि साइकॉलोजी ऑफ बियींग' आदि उनकी अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। यद्यपि मैस्लो ने अपनी पुस्तकों में कई महत्वपूर्ण अवधारणाओं और विचारों का उल्लेख किया है, तथापि वर्तमान प्रयोजन की दृष्टि से अभिप्रेरणा के क्षेत्र में दिया गया उनका योगदान ही उल्लेखनीय है।

13.3 मैस्लो की अभिप्रेरणा विचारधारा:आवश्यकता-क्रमिकता/सोपानिकता विचार

मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका अभिप्रेरणा सिद्धान्त है। मैस्लो का विश्वास था कि अधिकांश मानव व्यवहार की व्याख्या कोई ना कोई व्यक्तिगत लक्ष्य पर पहुँचने की प्रवृति से निर्देशित होता है। वास्तव में उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त में यही अभिप्रेरणा प्रकियाओं का मूल सार तत्व है। मैस्लो का अभिप्रेरणा सिद्धान्त ''आवश्यकताओं की क्रमिकता/सोपानिकता'' या 'Need Hierarchy Theory' कहलाता है।

व्यक्ति के व्यवहार पर उसकी आवश्यकताओं का बहुत अधिक असर होता है। चिकित्सा विज्ञान ने स्पष्ट कर दिया है कि व्यक्ति के क्रिया-कलाप उसके मन के आधार पर तय होते हैं और मन आवश्यकताओं के हिसाब से तय होता है। व्यक्ति की जरूरतें क्या हैं? कौन सी चीज वह पहले चाहता है तथा कौन सी आवश्यकता को वह उसके बाद चाहता है? मानव व्यवहार विज्ञान में इसे ''हायरार्की ऑफ नीड'' की संज्ञा दी जाती है। इस सम्बन्ध में अनेक लोगों ने अध्ययन किया और अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। लेकिन इस सम्बन्ध में सबसे ज्यादा चर्चित रहे अब्राहम मैस्लो, उन्होंने कहा कि व्यक्ति पहले अपनी मूल जरूरतों को पूरा करता है, इसके बाद अन्य जरूरतों की ओर बढ़ता है। मैस्लो ने वर्ष 1943 में इस सम्बन्ध में प्रकाश डाला। मैस्लो ने कहा कि व्यक्ति की मौलिक जरूरतों में भोजन, आवास और प्रजनन है, लेकिन ये आवश्यकताऐं हमारे भौतिक शरीर को ही सन्तुष्ट कर पाती हैं। जिन व्यक्तियों की सांसारिक जरूरतें पूरी हो जाती हैं, वे अपनी मानसिक जरूरतों को पूरा करने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। मैस्लो ने आवश्यताओं को एक पिरामिड के माध्यम से समझाया था। मैस्लो ने आवश्यकताओं को पांच भागों में बांटा है। इस पिरामिड के चार स्तरों को शारीरिक आवश्यकताओं के रूप में परिभाषित किया है, एवं पांचवें स्तर को मानसिक आवश्यकता के रूप में परिभाषित किया है। मैस्लो के अध्ययन से स्पष्ट है कि पहले चार स्तरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद ही व्यक्ति का ध्यान पांचवें या सबसे उपरी स्तर की आवश्यकता की ओर जाता है। ये आवश्यकताएँ निम्न हैं- **1.** दैहिक एवं शारीरिक आवश्यकता, **2.** सुरक्षा की

आवश्यकता, **3.** सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता, **4.** सम्मान की आवश्यकता, **5.** आत्मसिद्धि की आवश्यकता।

इनमें से दो आवश्यकताओं अर्थात शारीरिक एवं दैहिक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता को निचले स्तर की आवश्यकता तथा अन्तिम तीन आवश्यकताओं अर्थात संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता तथा आत्मसिद्धि की आवश्यकता को एक साथ मिलकर उच्च स्तरीय आवश्यकता कहा है। इस पदानुक्रम मॉडल में जो आवश्यकता जितनी ही नीचे है, उसकी प्राथमिकता या शक्ति उतनी ही अधिक मानी गयी है। इस प्रकार व्यक्ति में सबसे प्रबल आवश्यकता शारीरिक या दैहिक आवश्यकता होती है, जिसकी सन्तुष्टि तत्कालिक होना अनिवार्य है तथा सबसे कम प्रबल या कमजोर आवश्यकता आत्मसिद्धि की आवश्यकता होती है।

इस मॉडल की प्रमुख बात यह है कि मॉडल के किसी भी स्तर की आवश्यकता को उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि उसे नीचे वाले स्तर की आवश्यकता की सन्तुष्टि पूर्णतः नहीं तो कम से कम अंशतःअवश्य ही हो जाये। मैस्लो ने यह भी स्पष्ट किया है कि हम इस पदानुक्रमिक मॉडल में जैसे-जैसे नीचे से ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं, प्रत्येक स्तर पर आवश्यकताओं की सन्तुष्टि का प्रतिशत भी धीरे-धीरे कम होता जाता है। मैस्लो के अनुसार शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि लगभग 85 प्रतिशत, सुरक्षा आवश्यकता की सन्तुष्टि लगभग 50 प्रतिशत, संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की सन्तुष्टि 50 प्रतिशत, सम्मान की आवश्यकता की सन्तुष्टि 40 प्रतिशत तथा आत्मसिद्धि की आवश्यकता की सन्तुष्टि लगभग 10 प्रतिशत ही होती है। पांचों स्तरों की आवश्यकताओं का वर्णन निम्निलिखित है-

13.3.1 दैहिक या शारीरिक आवश्यकता

इस श्रेणी की आवश्यकता में भोजन करने की आवश्यकता, पीने के लिए पानी की आवश्यकता, सोने की आवश्यकता, यौन सन्तुष्टि की आवश्यकता तथा सीमान्त तापक्रम से बचने की आवश्यकता आदि को सम्मिलित किया गया है। ये सारे जैविक प्रणोदन (Biological propulsion) का सीधा सम्बन्ध प्राणी की जैविक संपोषण (Biological sustenance) से होता है। इस श्रेणी की आवश्यकता की प्राथमिकता या प्रबलता सबसे अधिक है। इसके फलस्वरूप व्यक्ति को इससे ऊपर के स्तर की आवश्यकता की ओर बढ़ने से पहले इन जैविक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि एक न्यूनतम स्तर पर करना अनिवार्य है। जब कोई व्यक्ति जैविक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं कर पाता है तो वह अन्य उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की बात ही नहीं सोचता है। जैसे जो व्यक्ति भूख, प्यास से तड़प रहा है; उसके मन में सुरक्षा, आत्मसम्मान जैसी अन्य उच्च स्तरीय आवश्यकता का ख्याल नहीं आ सकता है। व्यक्ति में जैविक अभिप्रेरक इतना अधिक प्रबल होता है कि इसकी सन्तुष्टि करने के लिए व्यक्ति सामाजिक मूल्यों तथा सामाजिक मानकों की भी कभी-कभी अवहेलना करने से पीछे नहीं हटता है।

13.3.2 सुरक्षा की आवश्यता

जब व्यक्ति की जैविक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो जाती है तो वह सोपान के दूसरे स्तर की आवश्यकता अर्थात सुरक्षा की ओर अग्रसर होता है और उसका व्यवहार इस आवश्यकता से काफी प्रभावित होने लगता है। इस श्रेणी की आवश्कयता में शारीरिक सुरक्षा, स्थिरता, निर्भरता, बचाव, डर, चिन्ता आदि की अनुभूतियों से मुक्ति आदि सम्मिलित हैं। मैस्लो ने नियम-कानून बनाये रखने की आवश्यकता, विशेष क्रम आदि बनाये रखने की आवश्यकता को भी इस श्रेणी में सम्मिलित किया है। इस तरह की आवश्यकता बच्चों में अधिक प्रबल होती है, क्योंकि वे अन्य लोगों की अपेक्षा अपने आप को अधिक नि:सहाय एवं दूसरों पर आश्रित समझते हैं। एक स्वस्थ एवं परिपक्व व्यस्क में सुरक्षा की आवश्यकता होती है। मैस्लो के अनुसार सुरक्षा की आवश्यकता कुछ खास तरह

के तन्त्रिकातापी व्यक्ति जैसे- मनोग्रसित बाध्यता के रोगियों में अधिक सुस्पष्ट होती है। ऐसे लोग इर्द-गिर्द के हालातों को खौफनाक एवं खतरनाक समझकर अपने में सुरक्षा की आवश्यकता पर अधिक जोर डालते हैं तथा अधिक समय एवं शारीरिक ऊर्जा की खपत करते हैं और यदि उसके बावजूद भी इन्हें अपने प्रयास में सफलता नहीं मिलती है तो इससे उनमें एक विशेष तरह की चिन्ता, जिसे मैस्लो ने मूल चिन्ता कहा है, की उत्पत्ति होती है।

13.3.3 सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता

मैस्लो के पदानुक्रमिक मॉडल में यह तीसरे स्तर की आवश्यकता है, जब व्यक्ति की दैहिक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता की पूर्ति बहुत हद तक हो पाती है तो उसमें सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है। सम्बद्धता (Connectivity) की आवश्यकता से तात्पर्य अपने परिवार या समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान पाने की इच्छा से तथा किसी सन्दर्भ समूह की सदस्यता प्राप्त करने से तथा अपने पड़ोसी से सन्दर्भ बनाये रखने से होता है। स्नेह की आवश्यकता से तात्पर्य दूसरों को स्नेह देने एवं दूसरों से स्नेह पाने की आवश्यकता से होती है। सम्बद्धता की आवश्यकता तथा स्नेह की आवश्यकता एक-दूसरे से काफी जुड़े हैं। अतः मैस्लो ने इसे एक ही श्रैणी में रखा है। स्नेह की आवश्यकता में मैस्लो ने यौन को भी रखा है, परन्तु उस आवश्यकता को यौन आवश्यकता के तुल्य नहीं माना है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि यौन, स्नेह की इच्छा को अभिव्यक्त करने का मात्र एक तरीका है। मैस्लो ने यह स्पष्ट किया कि स्नेह की आवश्यकता की सन्तुष्टि नहीं होने से व्यक्ति में कुसमायोजन या अपसमायोजन (Maladjustment) होता है। मैस्लो ने इस बिन्दु पर टिप्पणी करते हुए कहा है, स्नेह पाने की भूख एक तरह का रोग है।

13.3.4 सम्मान की आवश्यकता

सम्मान की आवश्यकता सोपानिक मॉडल में चौथे स्तर की आवश्यकता है। सम्मान की आवश्यकता व्यक्ति में तब उत्पन्न होती है, जब उससे नीचे की तीनों श्रेणियों की आवश्यकताऐं अर्थात जैविक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता तथा सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की पूर्ति सन्तोषजनक ढंग से हो जाती है। सम्मान की आवश्यकता में मैस्लो ने दो प्रकार की आवश्कताओं को सम्मिलित किया है- आत्मसम्मान की आवश्यकता तथा दूसरों से सम्मान पाने की आवश्यकता। पहले प्रकार की आवश्यकता में उत्तम क्षमता प्राप्त करने की इच्छा, आत्मविश्वास, व्यक्तित्व वर्धन(Personality enhancement), उपलब्धि, स्वतन्त्रता आदि की भावना सम्मिलित होती हैं। दूसरे से सम्मान प्राप्त करने की आवश्यकता में दूसरों से सम्मान, पहचान, प्रसन्नसा, ध्यान तथा स्वीकृति आदि पाने की इच्छा से होती है। आत्मसम्मान की आवश्यकता की पूर्ति होने से व्यक्ति से आत्म-विश्वास, शक्ति, पर्याप्तता एवं श्रेष्ठता के गुण विकसित होते हैं। इन गुणों के परिणामस्वरूप व्यक्ति सभी क्षेत्रों में अपने आपको अधिक योग्य समझने लगता है। दूसरी तरफ यदि व्यक्ति में आत्मसम्मान की पूर्ति नहीं होती है तो व्यक्ति अपने आपको लाचार, कमजोर, हतोत्साहित तथा समस्याओं से निपटने की पर्याप्त क्षमता की कमी आदि गुणों से युक्त मानता है। मैस्लो ने यह भी स्पष्ट किया है कि सही अर्थ में आत्म-सम्मान व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं का वास्तविक मूल्याकंन कर तथा साथ ही साथ दूसरों से प्राप्त वास्तविक सम्मान पर आधारित होता है। यह आवश्यक है कि व्यक्ति को दूसरों में मिलने वाला मान-सम्मान अवास्तविक या छिछला ना होकर उनके अर्जित योग्यताओं एवं क्षमताओं पर आधारित हो।

13.3.5 □त्म-सिद्धि की आवश्यकता

मैस्लो के सोपानिक मॉडल का यह सबसे अन्तिम चरण होता है। यहाँ व्यक्ति तब पहुँचता है, जब इसके नीचे की चारों आवश्यकताओं अर्थात जैविक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता, सम्बद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता तथा सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति सन्तोषजनक ढंग से हुई हो। आत्म-सिद्धि से तात्पर्य आत्म-उन्नति की ऐसी

अवस्था से है, जहाँ व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं अन्तः क्षमताओं से पूर्णरूपेण अवगत होता है तथा उसके अनुरूप अपने आप को विकसित करने की इच्छा करता है। संक्षेप में आत्म-सिद्धि से तात्पर्य अपनी अन्तः क्षमताओं के अनुरूप अपने आप को विकसित करना होता है।

मैस्लो ने यह स्पष्ट किया कि आत्म-सिद्धि की आवश्यकताओं की अवस्था सोपानिक मॉडल के अन्य अवस्थाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि इसके ठीक निचली अवस्था अर्थात सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर व्यक्ति अन्य अवस्थाओं के समान स्वतः ही इस अवस्था में अर्थात आत्म-सिद्धि की अवस्था में नहीं आ जाता है। मैस्लो द्वारा व्यक्तियों पर किये गये शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि इस अन्तिम अवस्था में वही लोग आ पाते हैं, जिनमें सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति हुई हो तथा साथ ही साथ जिनमें मूल्यों की परिपूर्णता हो। अगर व्यक्ति ऐसा है जिन्हें सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति तो हुई है, परन्तु मूल्यों की कमी है, तो वैसे लोग आत्म-सिद्धि के इस अन्तिम अवस्था में नहीं आ पाते हैं।

मैस्लो ने अपने शोध के आधार पर निम्नलिखित चार कारण बतलाये हैं, जिनके चलते व्यक्ति इस अन्तिम अवस्था पर पहुँचने से वंचित रह जाता है, वे चार कारण है-

1. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता एक कमजोर या सबसे प्रबल आवश्यकता है। फलतः यह अन्य आवश्यकताओं से आसानी से दब जाती है। व्यक्ति इस अवस्था तक पहुँचने की तमन्ना खो देता है।
2. जिन व्यक्तियों में अपनी अतःक्षमताओं एवं अन्तःशक्तियों को उन्नत करने पर एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने की आवश्यकता हो जाती है, जिसके साथ उनका निपटना सम्भव नहीं हो सकता है, तो वैसे लोग भी इस अन्तिम अवस्था तक पहुँचने से वंचित रह जाते है। इस तरह की मनोग्रन्थि को मैस्लो ने 'जोहान मनोग्रन्थि' कहा है।
3. जिन व्यक्तियों को बाल्यावस्था में अत्यधिक स्नेह एवं स्वतन्त्रता या फिर अत्यधिक तिरस्कार एवं नियन्त्रण का सामना करना होता है, वे इस अवस्था तक नहीं पहुँच पाते हैं।
4. जिन व्यक्तियों में पर्याप्त अनुशासन, आत्म-नियन्त्रण एवं आत्म-साहस की आवश्यकता पूर्ण नहीं होती है, वे इस अन्तिम अवस्था तक पहुँचने से वंचित रह जाते है।

मैस्लो ने अपने सिद्धान्त में प्राणी के अनूठेपन का उसके मूल्यों के महत्व पर तथा व्यक्तिगत और आत्म-निर्देश की क्षमता पर सर्वाधिक बल डाला है। इस बल के कारण ही मैस्लो का मानना था कि सम्पूर्ण प्राणी का विकास उसके भीतर से संग्रहीत ढंग से होता है। इन आन्तरिक कारणों की तुलना में बाह्य कारकों का जैसे- अनुवांशिकता तथा गत-अनुभूतियों का महत्व नगण्य होता है। व्यक्तित्व विकास में आन्तरिक बलों पर इतना अधिक बल दिये जाने के कारण उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को व्यक्तित्व का सम्पूर्ण गत्यात्मक सिद्धान्त भी कहा गया है।

मैस्लो का मानना था कि व्यक्ति की जो आवश्यकता है, उसे पहचान कर उसकी सन्तुष्टि कर व्यक्ति को अभिप्रेरित किया जा सकता है। वही प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को बेहतर तरीके से प्रेरित कर सकता है जो उनकी आवश्यकताओं को पहचानने की क्षमता रखता है।

13.4 स्वस्थ्य व्यक्तित्व: आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास

मैस्लो के व्यक्तित्व सिद्धान्त की मुख्य विशेषता यह है कि यह सिद्धान्त मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के अध्ययन पर आधारित है। मैस्लो ने इन व्यक्तियों का अध्ययन करके आत्मसिद्ध व्यक्तियों की पहचान करने के लिए 16 प्रकार की विशेषताओं का वर्णन किया है।

1. ऐसे व्यक्तियों का प्रत्यक्षण (Perception) वास्तविक होता है अर्थात उनमें पूर्वाग्रह, अनियमितता आदि नहीं होती है।

2. इस प्रकार के व्यक्ति अपने आप का, दूसरे व्यक्तियों का तथा वातावरण की अन्य वस्तुओं का प्रत्यक्षण ठीक वैसे ही करते हैं, जैसे कि वे होते हैं।
3. ऐसे लोगों में सरलता स्वभाविकता तथा सहजता का गुण होता है।
4. ऐसे लोग समस्या केन्द्रित व्यवहार करते हैं, ना कि आत्म केन्द्रित व्यवहार करते हैं।
5. ऐसे लोगों में अनाशक्ति का भाव होता है तथा वे गोपनीयता को पसन्द करते हैं।
6. ऐसे लोग स्वतत्रता एवं स्वायत्ता को पसन्द करते हैं।
7. ऐसे लोगों में अन्य लोगों को एवं घटनाओं को नवीनतम दृष्टिकोण से ना कि घिसे-पिटे ढंग से अवलोकन करने की विशेष शक्ति होती है।
8. ऐसे लोग प्रजातन्त्रात्मक मूल्य एवं मनोवृत्ति अधिक दिखलाते हैं।
9. ऐसे लोग साधन एवं साध्य में स्पष्ट अन्तर रखकर उस पर पहल करते हैं।
10. ऐसे लोगों में मनोविनोद का भाव विद्वेषी ना होकर दार्शनिक होता है।
11. ऐसे लोग सृजनात्मक प्रवृत्ति के होते हैं।
12. ऐसे लोग संस्कृति के प्रति अनुरूपता नहीं दिखलाते हैं।
13. ऐसे लोग अपने वातावरण के साथ समायोजन ही नहीं करते हैं, बल्कि उत्कृष्टता को भी समझने की कोशिश करते हैं।
14. ऐसे लोग में मानवीयता के भाव की प्रधानता होती है, अर्थात ऐसे लोगों में सामाजिक अभिरूचि की प्रधानता होती है।
15. ऐसे लोग में कुछ विशेष आलौकिक शक्ति एवं अनुभूतियां होती हैं, जिनसे व्यक्ति अपने आप को काफी आशक्त, साहसी एवं निर्णायक समझता है। इसे मैस्लो ने शीर्ष अनुभूति कहा है।
16. ऐसे लोगों का सम्बन्ध कुछ विशेष महत्वपूर्ण लोगों के साथ अधिक घनिष्ठ होता है। तथा ऐसे लोगों में बहुत सारे लोगों के साथ सतही सम्बन्ध बनाये रखने की बुरी आदत नहीं होती है।

मैस्लो ने अपने व्यक्तित्व के सिद्धान्त में यह भी बतलाया है कि व्यक्ति में आत्मसिद्धि को किस तरह से प्रोत्साहित किया जा सकता है। उन्होंने आत्मसिद्धि को बढाने के लिए स्कूल को सबसे उत्तम स्थान बतलाया है और कहा है कि लोगों को अपनी पहचान बनाने में, रूचियुक्त व्यवसाय की खोज करने तथा उत्तम मूल्यों को समझने के लिये किये गये प्रयासों से आत्मसिद्धि का विकास होता है।

13.5 व्यक्तित्व का मापन एवं शोध

वैसे तो स्वयं मैस्लो ने व्यक्तित्व मापन के लिए कोई प्रविधि का प्रतिपादन नहीं किया है। लेकिन एबरेट फोस्ट्रोम ने आत्मसिद्धि को मापने के लिए एक विशेष प्रश्नावली का निर्माण किया है। जिसे 'पर्सनल ऑरियन्टेशन इन्वेन्ट्री' की संज्ञा दी गयी है। इस परीक्षण में कथनों के 150 युग्म होते हैं और उनमें से व्यक्ति को यह बतलाना होता है कि युग्म का कौन सा कथन उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। पर्सनल ऑरियन्टेशन इन्वेन्ट्री में दो मुख्य मापनी हैं- समय सामर्थ्यता मापनी तथा आन्तरिक निर्देशन मापनी। समय सामर्थ्यता मापनी द्वारा इस तथ्य का मापन होता है कि व्यक्ति की गतिविधियां कहाँ तक अपने वर्तमान समय के अनुरूप होती हैं। तथा आन्तरिक निर्देशन मापनी इस तथ्य का मापन करता है कि कहाँ तक व्यक्ति महत्वपूर्ण निर्णय एवं मूल्यों के लिये अपने उपर ना की दूसरों के उपर निर्भर करता है। बाद में फोस्ट्रोम ने पर्सनल ऑरियन्टेशन इन्वेन्ट्री को अधिक उन्नत बताया और उसका नाम 'पर्सनल ऑरियन्टेशन डाइन्मेशन' रखा। इसमें 240 एकांश हैं और पर्सनल ऑरियेन्टेशन इन्वेन्ट्री में इसका सह-सम्बन्ध धनात्मक पाया जाता है। जोन्स एवं कैण्डला ने आत्मसिद्धि को मापने के लिए 15 एकांश वाला एक

परीक्षण विकसित किया है। आत्म-सम्मान के दो महत्वपूर्ण तत्व अर्थात विश्वास तथा लोकप्रियता को मापने के लिए उण्डर्लिक ने एक अविष्कारिका विकसित की, जिसे आत्म-मनोवृत्ति अविष्कारिका कहा गया। स्वयं मैस्लो ने व्यक्तित्व मापन के लिए साक्षात्कार स्वतन्त्र सहचर्य, प्रेक्षपण प्रविधियां एवं जीवन सम्बन्धी समाग्रियों का उपयोग करने पर अधिक बल डाला था।

स्वयं मैस्लो अपने सिद्धान्त के किसी पहलू पर विशेष शोध तो नहीं किये, परन्तु अन्य मनोवैज्ञानिकों ने 'पर्सनल ऑरियेन्टेशन इन्वेन्ट्री' की मदद से कुछ शोध किये हैं। अधिकतर ऐसे शोध सह-सम्बन्धात्मक हैं, जिनसे पर्सनल ऑरियेन्टेशन इन्वेन्ट्री पर आये प्राप्तांकों को व्यक्तित्व या व्यवहार के अन्य मापकों के साथ सह-सम्बन्धित किया गया है। मैक्लैन ने पर्सनल ऑरियेन्टेशन इन्वेन्ट्री प्राप्तांक तथा सांवेगिक स्वास्थ्य के बीच और लीसे एवं डाम ने पर्सनल ऑरियेन्टेशन इन्वेन्ट्री प्राप्तांक तथा सर्जनात्कता के बीच धनात्मक सह-सम्बन्ध पाया जाता है।

13.6 मैस्लो की आलोचना

मैस्लो का अभिप्रेरणा का 'आवश्यकता-क्रमिकता सिद्धान्त' मानवीय व्यवहार की अति सरल व्याख्या है। ना तो व्यक्तियों की आवश्यकताओं को इतनी आसानी से पहचाना जा सकता है और ना ही आवश्यकताओं का यही क्रम सदैव रहता है।

आलोचकों के मत में मैस्लो द्वारा प्रतिपादित अवधारणा, शोध पर आधारित ना होकर केवल मनोवैज्ञानिक तथ्यों का एकत्रिकरण है। आत्म-विश्लेषण पर मैस्लो के विचार अस्पष्ट और अति-सरलीकरण के दोषी माने गए हैं।

बर्नार्ड, बास और गैराल्ड बैरेल्ट के मत में मैस्लो का सिद्धान्त सत्य होने के बजाय रूचिकर और लोकप्रिय अधिक है। वाभा और विरडवैल का मत है कि "ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है कि मानव आवश्यकताओं को पांच भिन्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है और ये श्रेणियां एक विशिष्ट क्रमिकता में संरचित की जा सकती है।'' कॉफर और एपलवी का मत है कि "आत्म-विश्लेषण पर उनका बल, अवधारणा की अस्पष्टता, भाषा के ढीलेपन और प्रमुख मामलों से मिलने वाले सबूतों की अपर्याप्तता से प्रभावित है।'' माइकल नैश भी मानते हैं कि मैस्लो का सिद्धान्त रूचिकर अधिक और वैध कम है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद मैस्लो का अभिप्रेरणा सिद्धान्त इस क्षेत्र में सदैव मार्गदर्शक बना रहेगा। उनकी आवश्यकता क्रमिकता की विचारधारा आधुनिक प्रबन्ध के अभिप्रेरणात्मक दृष्टिकोण पर गजब का प्रभाव रखता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. आवश्यकता सोपान सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया?
2. मैस्लो की आवश्यकता पद सोपानिक सिद्धान्त के अनुसार सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण आवश्यकता कौन सी है?
3. मैस्लो की पुस्तक 'मोटिवेशन एण्ड पर्सनालिटी' का प्रथम प्रकाशन कब हुआ?

13.7 सारांश

मैस्लो यद्यपि एक मनोवैज्ञानिक थे, फिर भी अभिप्रेरणा की उनकी अवधारणा इतनी महत्वपूर्ण है कि प्रशासन का हर विद्यार्थी इससे परिचित है। मैस्लो ने मानवीय आवश्यकताओं की पहचान कर उनको एक सोपानिक रूप से व्यवस्थित किया। वे मानव की पांच आवश्यकताओं की पहचान करते हैं- शारीरिक, सुरक्षात्मक, सामाजिक, सम्मान तथा आत्म-प्रबोधन। मैस्लो आत्म-प्रबोधन की आवश्यकता को आवश्यकताओं के सोपान में सर्वोच्च

स्थान देते हैं। मैस्लो के अनुसार व्यक्ति की सर्वप्रथम आवश्यकताऐं शारीरिक हैं- जिनमें भोजन, वस्त्र, आराम आदि शामिल हैं, जब व्यक्ति की शारीरिक आवश्यकताऐं सन्तुष्ट हो जाती हैं तो उसकी सुरक्षात्मक आवश्यकताऐं आती हैं। इनके भी सन्तुष्ट हो जाने के पश्चात सामाजिक और फिर सम्मान की आवश्यकताऐं आती हैं। सबसे अन्त में आत्म-प्रबोधन की आवश्यकता आती है।

मैस्लो का आग्रह था कि यदि कोई प्रबन्धक अपने अधीनस्थों को अभिप्रेरित करना चाहता है तो सर्वप्रथम उसे उनकी आवश्यकताओं का पता लगाना होगा और फिर उनकी पूर्ति करके उसे सन्तुष्टि प्रदान करके उसे अभिप्रेरित किया जा सकता है। मैस्लो की आवश्यकता-क्रमिकता विचारधारा और हर्जबर्ग की द्वि-घटकी विचारधारा में काफी समानता है। हर्जबर्ग के 'आरोग्य घटक' मैस्लो की प्रथम तीन और कुछ भाग चौथी आवश्यकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। तथा अभिप्रेरक घटक आत्म-प्रबोधन तथा कुछ हद तक सम्मान की आवश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि मैस्लो की विचारधारा रोचक और प्रासंगिक है, पर इसने मानवीय अभिप्रेरणा की अति-सरलीकृत व्याख्या प्रस्तुत की है।

13.8 शब्दावली

क्रमिकता- आवश्यकताओं को क्रम में रखना, सोपानिक- आवश्यकताओं को सीढ़ीनुमा आकार में व्यवस्थित करना या सबसे आधारभूत आवश्यकता को सबसे पहले रखना, आत्मप्रबोधन- व्यक्ति जो है उससे अधिक बनने की इच्छा या क्षमता के अनुसार से अधिक बनने की इच्छा रखना, व्यक्तित्व वर्धन- व्यक्तित्व में वृद्धि, प्रत्यक्षण- अनुभव या अनुभूति, कुसमायोजन- एक तरह की अव्यव्स्था

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मैस्लो ने, **2.** स्वयं को पहचानना, **3.** 1954 में

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. निकोलस हैनरी, 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पब्लिक अफेयर्स', प्रैन्टिस हॉल, 2001
2. अब्राहम मैस्लो, 'मोटीवेशन एण्ड पर्सनलिटी', श्रीराम माहेश्वरी द्वारा, 'एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स', मैकमिलन, 1998
3. नरेन्द्र कुमार थोरी, 'प्रमुख प्रशासनिक विचारक', आर0वी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
4. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

13.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नरेन्द्र कुमार थोरी, 'प्रमुख प्रशासनिक विचारक', आर0वी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर।
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मैस्लो के आवश्यकता-क्रमिकता सिद्धान्त का विस्तार से विवेचन कीजिए।
2. प्रशासनिक विचारधारा के इतिहास में मैस्लो के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई- 14 डगलस मैकग्रिगोर

इकाई की संरचना

14.0 प्रस्तावना
14.1 उद्देश्य
14.2 डगलस मैकग्रिगोर- एक परिचय
14.3 मैकग्रिगोर का योगदान
    14.3.1 'एक्स'(X) तथा 'वाई'(Y) सिद्धान्त का योगदान
14.4 मैकग्रिगोर के अन्य विचार
    14.4.1 मैकग्रिगोर द्वारा मैस्लो के आवश्यकता की क्रमबद्धता सिद्धान्त का क्रियान्वयन
    14.4.2 विशेषज्ञों की भूमिका
    14.4.3 प्रबन्ध दल या टीम के साथ कार्य पर जोर
    14.4.4 परम्परागत नौकरशाही के स्थान पर खुली व्यवस्था का समर्थन
    14.4.5 प्रबन्धकों के लिए मानवीय दृष्टिकोण की आवश्यकता
    14.4.6 सत्ता-सहमति पर आधारित
    14.4.7 मनमुटावों के प्रबन्ध
    14.4.8 श्रमिक संगठन तथा प्रबन्ध के बीच सहयोग
14.5 आलोचना
14.6 सारांश
14.7 शब्दावली
14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

14.0 प्रस्तावना

इस इकाई में डगलस मैकग्रिगोर के प्रशासनिक विचारों का अध्ययन किया जायेगा। प्रबन्ध जगत में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रशासनिक चिन्तक डगलस मैकग्रिगोर को मुख्यतः उनकी प्रबन्धात्मक प्रवीणता और विज्ञान के क्षेत्र में उनके सकारात्मक योगदान को लेकर जाना जाता है। मैकग्रिगोर को एक मनोवैज्ञानिक चिन्तक के रूप में स्वीकार किया जाता है, जिन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एक क्रान्ति बनकर आये व्यवहारवादी आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है। उन्होंने 'मैसाच्युसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी' (एम0आई0टी0) में प्रबन्ध के एक प्रसिद्ध प्रोफेसर के रूप में अपनी प्रतिभा से लोगों को परिचित कराया है। मानवीय व्यवहार विषयक शोध संचालन समिति के रूप में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- डगलस मैकग्रिगोर के विचारों से परिचित हो पायेंगे।

- उनकी 'एक्स' तथा 'वाई' सिद्धान्त क्या है, इसके बारे में जान पायेंगे।
- प्रशासनिक जगत में उनके योगदान के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

14.2 डगलस मैकग्रिगोर- एक परिचय

मैकग्रिगोर का जन्म 1906 में डेट्रोइट, संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ। मैकग्रिगोर प्रतिष्ठित, ''मेसाच्युसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी'' में औद्योगिक प्रबन्ध के प्रोफेसर थे। मैकग्रिगोर अपने कार्यों में काफी निपुण थे तथा मानवीय प्रकृति और मनोविज्ञान को समझने में उनकी बड़ी रूचि थी। 58 वर्ष की अल्पायु में ही उनकी मृत्यु हो गई और प्रबन्ध जगत को एक अपूर्णीय क्षति हुई।

मैकग्रिगोर ने कुछ पुस्तकें लिखी और कई लेख प्रकाशित करवाये। सन् 1960 में मैकग्रिगोर की पुस्तक "The Human Side of Enterprize" प्रकाशित हुई। यह पुस्तक प्रबन्ध साहित्य की अमूल्य धरोहर है। इस पुस्तक में मैकग्रिगोर ने प्रबन्ध की परम्परागत अवधारणा को चुनौती दी और यह दर्शाया कि किस प्रकार प्रबन्धकीय हस्तक्षेप और समझ से उद्यम में मानवीय पक्ष का विकास किया जा सकता है।

14.3 मैकग्रिगोर का योगदान

अब्राहम मैस्लो के अभिप्रेरणा सम्बन्धी विचारों से प्रभावित होकर डगलस मैकग्रिगोर ने प्रबन्ध तथा संगठन के सन्दर्भ में मानवीय प्रकृति को समझने, विश्लेषण करने तथा इसके अनुसार उन्हें सिद्धान्त में अभिप्रेरित करने के लिए अपना प्रसिद्ध 'एक्स' और 'वाई' सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। मैकग्रिगोर के योगदान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नवत् हैं-

14.3.1 'एक्स'(X) एवं 'वाई'(Y) सिद्धान्त

मैकग्रिगोर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "The Human Side of Enterprize" में 'एक्स' व 'वाई' नाम के दो सिद्धान्त बताये। यह सिद्धान्त नेतृत्व के सन्दर्भ में भी लागू होते हैं। 'एक्स' सिद्धान्त के अनुसार एक औसत व्यक्ति कार्य के प्रति अरूचि रखता है, जहाँ तक हो सके कार्य को टालता है। उदासीनता का व्यवहार करता है, बहुत कम महत्वाकांक्षी होता है। अतः यह आवश्यक है कि संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु कार्मिकों पर आवश्यक नियंत्रण एवं दबाव बनाये रखा जाये। मैकग्रिगोर ने स्वीकार किया है कि 'एक्स' विचारधारा से सभी कार्मिकों को कार्य के प्रति अभिप्रेरित नहीं किया जा सकता है, अतः उन्होंने 'वाई' सिद्धान्त प्रतिपादित किया।

'वाई' सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य कार्य करना चाहता है। दायित्वों का निर्वहन करना भी सीख सकता है, उसमें पहल की क्षमता भी होती है। अतः संगठन में सहयोग, मार्गदर्शन तथा सकारात्मक प्रयासों से कार्मिकों को अभिप्रेरित करना चाहिये। मैकग्रिगोर के अनुसार ''एक प्रभावी संगठन वह है, जिसमें निर्देशन एवं नियंत्रण के स्थान पर सत्यनिष्ठा एवं सहयोग हो तथा निर्णयन में प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को सहभागी बनाया जाये।'' इस प्रकार 'वाई' विचारधारा मनुष्य को अच्छे व्यक्ति के रूप में देखती है तथा यह मानती है कि कार्मिकों को यदि कार्य में संतुष्टि दी जायेगी तो वे अधिक बेहतर कार्य करेंगे। मैकग्रिगोर का मुख्य ध्यान संगठन में छिपी प्रतिभाओं के सदुपयोग तथा सद्-भावपूर्ण वातावरण की स्थापना पर था।

एक्स सिद्धान्त	वाई सिद्धान्त
1. कार्य अधिकांश लोगों के लिए अरूचिकर होता है।	**1.** कार्य उतना ही स्वाभाविक है, जितना कि खेलना, यदि स्थितियां अनुकूल हों।
2. अधिकांश लोग महत्वाकांक्षी नहीं होते,	**2.** संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए स्व-नियत्रंण

उत्तरदायित्व लेने की कम इच्छा होती है तथा निर्देशित होना अधिक पसन्द करते हैं।	आवश्यक होता है।
3. अधिकांश लोगों में संगठनात्मक समस्याओं के समाधान के लिए रचनात्मक क्षमता की कमी होती है।	**3.** संगठनात्मक समस्याओं के समाधान की रचनात्मक क्षमता लोगों में व्यापक रूप से वितरित होती है।
4. अभिप्रेरणा केवल शारीरिक और सुरक्षात्मक आवश्यकता स्तरों पर ही होती है।	**4.** अभिप्रेरणा केवल शारीरिक और सुरक्षात्मक स्तर पर ही नहीं, बल्कि सामाजिक सम्मान व आत्मविश्लेषण पर भी घटित होती है।
5. संगठनात्मक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अधिकांश लोगों पर कड़ा नियत्रंण रखा जाता है व दण्डात्मक होना पड़ता है।	**5.** लोगों को यदि ठीक से अभिप्रेरित किया जाय तो वे स्व-निर्देशित हो सकते हैं और कार्य के लिए अधिक रचनात्मक हो सकते हैं।

ऐसा लगता है कि सिद्धान्त 'एक्स' बुरा सिद्धान्त है और सिद्धान्त 'वाई' अच्छा सिद्धान्त है। लेकिन यह केवल प्रबन्धकों का लोगों के प्रति पूर्वानुमान दर्शाता है। यह इस बात का प्रतीक है कि अगर प्रबन्धकों का दृष्टिकोण 'वाई' सिद्धान्त पर आधारित है, परन्तु कुछ समय के लिए वह कर्मचारियों पर प्रतिबन्ध तथा नियत्रंण 'एक्स' सिद्धान्त रख सकता है। जब तक कि वे 'वाई' सिद्धान्त के अनुरूप तैयार ना हो पायें। इसी प्रकार अगर प्रबन्धक आलसी और अविश्वसनीय कर्मचारी पाता है तो वह उनके साथ सहयोगी और प्रोत्साहन देने वाला रूख अपनाता है, क्योंकि अनुभव से प्रबन्धक ने सीखा है कि ऐसा दृष्टिकोण उत्पादन को बढ़ाता है।

मैकग्रिगोर का कहना है कि मानवीय कार्यों को दो प्रकार से किया जाता है, पहला- नियंत्रण द्वारा और दूसरा- प्रोत्साहन द्वारा। पहला तरीका 'एक्स' सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है, दूसरा तरीका 'वाई' सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है। सिद्धान्त 'एक्स' एक पारम्परिक तरीका है, जो इस बात पर विश्वास करता है कि बहुत सारे लोग कार्य करने के इच्छुक नहीं होते हैं। वे चाहते हैं कि उनका निर्देशन हो, उनको जो कार्य दिया है, वही करें और अन्तिम रूप से वे सुरक्षा चाहते हैं। इस सिद्धान्त को मानने वाले इस बात पर विश्वास करते हैं कि अगर व्यक्ति को आर्थिक लाभ दिया जाय तो वह कार्य करने लगता है। इस प्रकार की धारणा को प्रोत्साहित करने वाला वर्ग यह मानता है कि मनुष्य एक आर्थिक प्राणी है।

इसके विपरीत मैकग्रिगोर ने एक विकल्प रखा और प्रतिपादित किया कि यदि व्यक्तियों को उचित रूप से प्रोत्साहित किया जाय तो वे स्वयं निर्णय लेने में सक्षम होते हैं और कार्य स्थल पर रचनात्मक होते हैं। इसलिए यह प्रबन्धन पर निर्भर हैं कि वे कर्मचारियों के प्रति कैसा रूख अपनायें।

'वाई' सिद्धान्त व्यक्ति की विवेकशीलता, सृजनात्मक एवं पहल क्षमता, एकीकरण, लोकतांत्रिक मूल्यों, आत्मनियंत्रण, व्यक्ति की प्रतिष्ठा एवं एक सहयोगी इंसान की प्रकृति में विश्वास करता है। अतः प्रबन्धकों को 'वाई' सिद्धान्त का पालन करना चाहिये। 'वाई' सिद्धान्त लोकतांत्रिक और सहभागी प्रबन्धन का प्रतिनिधित्व करता है। जिसमें प्रबन्धक कमाण्डर की भूमिका के स्थान पर काउन्सलर की भूमिका का निर्वहन करते हैं। इसके लिए कर्मचारी शिक्षित होने चाहिए, उन्हें पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए, उन्हें संगठन में स्वतः भाग लेने की योग्यता हो। अमेरिका तथा इंग्लैण्ड में प्रबन्धन में ऐसे ही सम्बन्ध है। वस्तुतः मैकग्रिगोर द्वारा वर्णित 'एक्स-वाई' सिद्धान्त केवल कार्मिकों की मनःस्थिति या अभिप्रेरणा सिद्धान्त की ही व्यवस्था नहीं करता है, बल्कि यह प्रबन्धकों के उस दृष्टिकोण या शैली का भी विवेचन करता है जो वे प्रबन्ध एवं कार्मिक के प्रति रखते हैं। मैकग्रिगोर जोर देकर कहते

हैं "संगठन में कार्मिक भारी योगदान दे सकता है, बशर्ते उसे जिम्मेदार तथा महत्वपूर्ण व्यक्ति के रूप में देखा जाय।''

14.4 मैकग्रिगोर के अन्य विचार

मैकग्रिगोर के विचारों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं-

14.4.1मैकग्रिगोर द्वारा मैस्लो के आवश्यकताओं की क्रमबद्धता सिद्धान्त का क्रियान्वयन

मैकग्रिगोर ने मैस्लो की आवश्यकताओं की क्रमबद्धता सम्बन्धी विचारधारा को गहराई से विश्लेषित किया तथा यह पता लगाने का प्रयत्न किया कि "आखिर अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग प्रकार के उत्प्रेरकों से अभिप्रेरित क्यों होते हैं।''

मैकग्रिगोर का मानना है कि परम्परागत प्रबन्ध में इस तथ्य की उपेक्षा कर दी गई है कि 'एक संतुष्ट आवश्यकता, व्यक्ति के व्यवहार की अभिप्रेरक नहीं हो सकती है।' जबकि वास्तविकता यह है कि व्यक्ति कदम दर कदम संतुष्टि एवं अभिप्रेरणा चाहता है। कोई भी प्रबन्धक यह सोच कर निश्चित नहीं हो सकता है कि उसने अपने कार्मिकों को बहुत सारी सुविधाऐं दे रखी हैं। प्रबन्ध को अन्य कारकों को भी ध्यान में रखना होगा। केवल कार्मिक 'संतुष्टि' को 'अभिप्रेरणा' मान लेना पूर्णतया सही नहीं होगा। औद्योगिक संगठनों में श्रमिकों की स्थिति आश्रित की होती है। इसलिए उन्हें शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के साथ-साथ स्वाभिमान जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति की आवश्यकता भी होती है। प्रबन्धकों को यह नहीं समझना चाहिए कि प्रेम, स्नेह और अपनत्व देने से श्रमिक संगठन के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं। मैकग्रिगोर कहते हैं कि 'यदि कार्मिक की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होगी तो वे संगठन क लिए बांधक, विरोधी एवं असहयोगी बन जायेंगे।' चूँकि परम्परागत संगठनों में कार्मिकों की स्वाभिमान सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति या संतुष्टि के बहुत कम अवसर विद्यमान रहते हैं। अतः प्रबन्ध को इस दिशा में सोचना चाहिए, अन्यथा कार्मिक मानसिक रूप से रूग्ण (बीमार) हो सकते हैं। वह विश्वास करता है कि जब एक संगठन पारस्परिक विश्वास और सहयोग पर आधारित होता है, वहाँ शक्ति के प्रयोग का स्थान नहीं रहता।

14.4.2 विशेषज्ञों की भूमिका

मैकग्रिगोर प्रबन्धकों को कर्मचारियों के प्रति 'सहभागी दृष्टिकोण' के समर्थक है। इसके लिए आवश्यक है कि संगठन के पास पेशेवर प्रबन्धक व विशेषज्ञों की टीम हो। मैकग्रिगोर मानते हैं कि प्रौद्योगिक जटिलता, उद्योगों में बढ़ती विशेषज्ञता, उद्योगों और समाज के बीच बढ़ते अन्तर-सम्बन्धों ने तथा कर्मचारियों की परिवर्तित होती संरचना ने प्रबन्ध के क्षेत्र में विशेषज्ञों की भूमिका बढ़ा दी है। यह विशेषज्ञ ना केवल नीति-निर्माण, समस्या समाधान, निर्णयन, नियोजन तथा प्रशासनिक क्रियाओं में विशेष योगदान देते हैं, बल्कि वे आर्थिक पुरस्कारों को न्यायोचित बनाने में तकनीकी सहयोग भी देते हैं। इन पेशेवर प्रबन्धकों में योगदान एवं कौशल बढ़ाने हेतु प्रशिक्षण महत्वपूर्ण भूमिका है। मैकग्रिगोर का मानना है कि कार्मिकों का मूल्यांकन पदोन्नति या स्थानान्तरण संगठन की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में हो ना हो, बल्कि वे कर्मचारियों के कैरियर विकास के लिए सहयोगी बनें।

14.4.3 प्रबन्ध दल या टीम के साथ कार्य पर जोर

मैकग्रिगोर की यह दृढ़ मान्यता है कि "आज के दौर में व्यक्तिगत प्रयासों के बजाय समूह या दल के साथ कार्य करना अधिक महत्वपूर्ण है।'' मैकग्रिगोर व्यक्तिगत प्रयासों के विरूद्ध नहीं है, लेकिन उनका मानना है कि दल निर्माण एवं इसका कार्य संचालन बेहतर विकल्प है। मैकग्रिगोर ने एक ऐसी टीम की कल्पना की है जो लचीलेपन, पारस्परिक नियंत्रण, सहयोगी सम्बन्ध तथा समुचित कार्य-कौशल इत्यादि विशेषताओं से परिपूर्ण हो। यह टीम

तभी प्रभावी बन सकती है जब सदस्यों में खुला संचार हो, आपस में विश्वास हो, कर्मचारी एक-दूसरे का सम्मान करते हों, निर्णय सर्वसम्मति से लिये जाते हों, मूल कार्य की समझ हो तथा प्रबन्धकों में नेतृत्व करने की क्षमता हो। मैकग्रिगोर की मान्यता है कि इस प्रकार के प्रबन्धक दलों के निर्माण से प्रबन्धन में मानवीय वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। मैकग्रिगोर यह भी सुझाव देते हैं कि कार्मिकों को अपना निष्पादन मूल्यांकन स्वयं करना चाहिए।

14.4.4 परम्परागत नौकरशाही के स्थान पर खुली, सहज, सामाजिक व्यवस्था का समर्थन

मैकग्रिगोर मानते हैं कि परम्परागत सिद्धान्तों का मुख्य आधार चर्च तथा सैन्य संगठन रहे हैं। अतः उनमें सामाजिक, मानवीय तथा व्यावहारिक तत्वों का अभाव पाया जाता है। औपचारिक व परम्परागत संगठन कठोर नौकरशाही को बढ़ावा देता है, जबकि संगठन व्यवहार को समझने के लिए नई सोच, नया दृष्टिकोण तथा नई मान्यताऐं आवश्यक हैं जो संगठन को एक खुली, सजीव सामाजिक-तकनीकी व्यवस्था के रूप में स्वीकार कर सकें।

14.4.5 प्रबन्धकों के लिए मानवीय व व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता

प्रत्येक प्रबन्धक को जो पद कार्य दिया जाता है, वह प्रायः आर्थिक निष्पादन से सम्बन्धित होता है। जबकि एक सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे बहुत से मानवीय एवं बाह्य दबावों का भी सामना करना पड़ता है। अतः प्रबन्धक को चाहिए कि वह मानव व्यवहार सांख्यिकी, प्रशासन, समाजशास्त्र तथा राजनीति विज्ञान का भी नवीनतम ज्ञान प्राप्त करे। मैकग्रिगोर ने माना है कि "परम्परागत रूप से प्रबन्धक से संगठन को लाभ में ले जाने, श्रमिकों को सन्तुष्ट रखने, मशीनों तथा संयन्त्र को सुचारू बनाए रखने तथा उत्पादक कार्य-क्षमता बनाये रखने की अपेक्षा की जाती है। किन्तु आज के समय में उसे एक विकासकर्ता तथा सहजकर्ता की भूमिका निभानी पड़ेगी।'' उसे ध्यान देना पड़ेगा कि संगठन में प्रत्येक कर्मचारी का विकास हो रहा है या नहीं। उसे संगठन में कर्मचारियों के बीच सहज माहौल बनाने का भी प्रयास करना चाहिये। प्रबन्धक की योग्यता इस बात पर निर्भर करती है कि वह मानवीय क्षमता का कितना अधिक से अधिक उपयोग कर सकता है। प्रबन्धन की यह समस्या नहीं है कि तकनीकी विशेषज्ञता बढ़ाई जाय, बल्कि प्रबन्धकों को सीखाया जाना चाहिये कि किस प्रकार प्रतिभाओं का संगठन के लाभ के लिए प्रयोग हो सकता है और किस प्रकार संगठन को मानवीय विकास से सम्बद्ध किया जा सकता है।

14.4.6 सत्ता सहमति पर आधारित

मैकग्रिगोर के सत्ता सम्बन्धी विचार साइमन तथा बर्नार्ड से मेल खाते हैं। सत्ता में वैधता या औचित्य का होना आवश्यक है। सत्ता उसी स्थिति में प्रभावी मानी जायेगी जब इसे अधीनस्थ उचित या वैध मान लेंगे। सत्ता का रूप 'प्रभाव' जैसा होना चाहिए। प्रभाव कभी भी एकतरफा नहीं होता है, यह पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित होता है। यदि सम्पूर्ण व्यवस्था के ज्ञान को प्राप्त कर सत्ता का सीमित प्रयोग किया जाये तो अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। सत्ता के प्रयोग में संचार का महत्वपूर्ण स्थान है। एक संसाधन के रूप में संचार सत्ता में वृद्धि करता है। मैकग्रिगोर परम्परागत विचारधारा का विरोध करता है जो सत्ता को अत्यधिक नियंत्रण से जोड़ते हैं। सत्ता या प्रभाव को संगठन में प्रयुक्त करने के चार रूप हैं, यथा- अधिकार की वैधता, पुरस्कार एवं दण्ड का नियंत्रण, सत्ता की अस्मिता तथा विश्वासोत्पादक संचार।

14.4.7 मनमुटावों के प्रबन्ध

किसी भी संगठन में मनमुटाव या मतभेद होने स्वाभाविक हैं। यह संघर्ष वांछित या अवांछित तथा अच्छे या बुरे हो सकते हैं। मनमुटावों का प्रबन्ध करने के लिए मैकग्रिगोर ने प्रबन्धक के सम्मुख तीन विकल्प रखे हैं: पहला- फूट डालो एवं राज करो, दूसरा- मतभेदों को दबाओ और तीसरा- मतभेदों के साथ ही कार्य करो।

पहली दो रणनीति 'एक्स' सिद्धान्त से सम्बद्ध है। एक प्रबन्धक को ऐसी रणनीति नहीं अपनानी चाहिये। उसके द्वारा कर्मचारियों के बीच जिन मुद्दों पर मतभेद हैं उन पर विचार किया जाना चाहिये। इससे समूह के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं और कार्य के प्रति प्रतिबद्धता में वृद्धि होती है। विकेन्द्रीकरण, सत्ता के प्रत्यायोजन, सहयोगी तथा सलाहकारी प्रबन्धन के द्वारा कर्मचारियों के बीच स्वतः निर्णय की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया जा सकता है। यह श्रमिक को अधिक उत्तरदायित्व लेने के लिए प्रोत्साहित करेगा और उसे संगठन से जोड़ेगा।

14.4.8 श्रमिक संगठन तथा प्रबन्ध के बीच सहयोग

मैकग्रिगोर का मानना है कि यह सम्बन्ध सिर्फ आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक जैसी बाह्य परिस्थितियों से ही प्रभावित नहीं होता है बल्कि लोगों की मनोवृत्ति, मूल्य तथा संगठन की कार्य संस्कृति से भी प्रभावित होते हैं। मैकग्रिगोर ने इस सम्बन्ध में तीन अवस्थाएँ वर्णित की हैं-

प्रथम अवस्था- संघर्ष की अवस्था, द्वितीय अवस्था- तटस्थता की अवस्था, तृतीय अवस्था-सहयोग की अवस्था। मैकग्रिगोर ने इस क्रम में सुझाव दिया कि ''सामुहिक सौदेबाजी के स्थान पर आपसी वार्ता तथा सहयोग पर बल दिया जाना चाहिए।'' एमआईटी में फ्रेडरिक लिसायर के साथ मैकग्रिगोर ने जोसफ स्केनलोन द्वारा निरूपित स्केनलोन योजना पर भी कार्य किया था। यह कार्य मूलतः श्रमिक संगठन तथा प्रबन्ध सहयोग के लिए 'वाई' सिद्धान्त पर आधारित था। इसकी दो मुख्य मान्यताऐं थी, एक तो मिलजुल कर अपने संगठन की लागतें कम की जाये तथा दूसरी प्रभावी सहभागिता निभायी जाये। संगठन के भीतर प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाकर प्राप्त लाभ को आपस में बांटने की योजना 'स्केनलोन योजना' में सम्मिलित थी। इससे टीम भावना तथा आर्थिक लक्ष्यों की प्राप्ति में वृद्धि होती है।

14.5 आलोचना

डगलस मैकग्रिगोर की इस बात का श्रेय दिया जाता है कि उन्होंने औद्योगिक एवं प्रबन्धकीय क्षेत्र में सामाजिक विज्ञानों की उपादेयता सिद्ध की तथा उद्यम के मानवीय पक्ष से लोगों को अवगत कराया। तथापि उनकी निम्न आधार पर आलोचना की जाती है-

1. मैकग्रिगोर का 'एक्स और वाई' सिद्धान्त मात्र मान्यताओं पर आधारित है, ना कि किसी आनुभाविक शोध कार्य पर।
2. मैकग्रिगोर की थ्योरी 'एक्स' तथा थ्योरी 'वाई' मानवीय प्रकृति की सही व्याख्या नहीं कर सकती, क्योंकि मानवीय व्यवहार काफी जटिल होता है तथा यह परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहता है।
3. मैकग्रिगोर की यह कहकर भी आलोचना की जाती है कि वे प्रबन्धकों के कन्धों पर आवश्यकता से अधिक भार डालते हैं।
4. पीटर डकर कहते हैं, मैकग्रिगोर का यह कहना गलत है कि उनके सिद्धान्त मानव प्रकृति से सम्बन्धित हैं। वास्तव में उनके सिद्धान्त कार्य की उस संरचना से जुड़े हैं जो यह निर्धारित करती है कि व्यक्ति कैसे कार्य करेंगे तथा उनसे कार्य-निष्पादित कराने के लिए कौन सी प्रबन्धकीय(नेतृत्व) शैली उपयुक्त रहेगी।

5. इस सबके बावजूद इतना तो निश्चित है कि मैकग्रिगोर ने संगठन में मानवीय मुद्दों को प्रमुखता दिलवाने में अहम् भूमिका का निर्वहन किया। साथ ही मैकग्रिगोर का यह पूर्वानुमान भी सत्य सिद्ध हुआ कि "भविष्य में महत्वपूर्ण विकास भौतिक या प्राकृतिक विज्ञानों में नहीं, बल्कि सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में होंगे।''

अभ्यास प्रश्न-

1. 'एक्स' सिद्धान्त क्या है?
2. 'वाई' सिद्धान्त क्या है?
3. मैकग्रिगोर की प्रमुख पुस्तक का नाम क्या है?

14.6 सारांश

प्रबन्ध के हर विद्यार्थी के लिए मैकग्रिगोर का नाम काफी सामान्य है। मैकग्रिगोर मानवीय प्रकृति के बारे में प्रबन्धकों की मान्यताओं के अधार पर थ्योरी 'एक्स' तथा थ्योरी 'वाई' का प्रतिपादन करते हैं। थ्योरी 'एक्स' मानव के नकारात्मक आयामों पर ज्यादा ध्यान देती है तथा यह मानती है कि एक औसत मनुष्य कार्य नहीं करना चाहता तथा काम से बचने में उसे मजा आता है। वह कम महत्वाकांक्षी होता है, उत्तरदायित्व से बचना चाहता है तथा निर्देशन को पसन्द करता है। उसमें संगठन की समस्याओं को सुलझाने की रचनात्मक क्षमता की कमी पाई जाती है और वह अपनी निम्न स्तरीय आवश्यकताओं से ही अभिप्रेरित होता है। इस प्रकार की मानसिकता रखने वाले कर्मचारियों से काम लेने के लिए उन्हें डराना, धमकाना तथा दण्ड देना पड़ता है। इस प्रकार थ्योरी 'एक्स' पूर्णतया निराशावादी दर्शन पर आधारित है।

मैकग्रिगोर थ्योरी 'एक्स' का परीक्षण करते हैं तथा उसे कम प्रासंगिक पाते हैं। इस कारण वे विकल्प के रूप में थ्योरी 'वाई' का प्रतिपादन करते हैं जो सकारात्मक और आशावादी दर्शन पर आधारित होती है। नई थ्योरी यह मानती है कि कार्य करना व्यक्ति के लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना कि खेलना तथा आराम करना। व्यक्ति आत्म-नियंत्रण की क्षमता रखता है तथा संगठन की समस्याओं के समाधान हेतु उसमें रचनात्मक क्षमता पायी जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को सभी तरह की आवश्यकताओं से प्रेरित किया जा सकता है, ना सिर्फ निम्न स्तरीय आवश्यकताओं से। व्यक्ति स्व-निर्देशन की क्षमता रखता है तथा साथ ही उत्तरदायित्वों को भी सहर्ष स्वीकार करता है।

इस प्रकार मैकग्रिगोर को अभिप्रेरणा की थ्योरी 'एक्स' तथा थ्योरी 'वाई' मानवीय प्रकृति की विपरीत मान्यताओं पर आधारित है। आज प्रशासन थ्योरी 'वाई' की ओर बड़ रहा है, ऐसा होना भी चाहिए।

14.7 शब्दावली

'एक्स' थ्योरी- जो व्यक्ति के नकारात्मक पहलू पर ध्यान देता है और मानता है कि व्यक्ति में कार्य करने की इच्छा नहीं होती।

'वाई' थ्योरी- जो व्यक्ति के सकारात्मक पहलू पर ध्यान देता है और यह मानता है कि व्यक्ति उसी प्रकार कार्य में आनन्द लेता है जिस प्रकार खेलने में।

अभिप्रेरणा- संगठन में व्यक्ति को प्रेरित करने वाली भावना।

आत्म निर्देशन तथा आत्म नियंत्रण- कर्मचारियों को अपना मूल्यांकन स्वयं करना चाहिए।

14.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 'एक्स' सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति कामचोर, आलसी व शिथिल होता है।

2. 'वाई' सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति कार्य से उसी प्रकार आनन्द लेता है, जिस प्रकार खेलने से।
3. 'द ह्यूमन साइड ऑफ इण्टरप्राइज'

14.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डगलस मैकग्रिगोर, द ह्यूमन साइड ऑफ एण्टरप्राइज, मैक्ग्रा हिल बुक कं0, न्यूयार्क।
2. वरेन जी वेनिस, एडगर एच0 शीन एण्ड कैरोलीन।
3. मैकग्रिगोर(सं0), लीडरशिप एण्ड मोटिवेशन, एश्येज ऑफ डगलस मैकग्रिगोर, एम0आई0टी0 प्रेस, क्रैम्ब्रिज, 1966.
4. द प्रोफेशनल मैनेजर, मैग्ग्रा हिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क, 1967
5. डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0 एस0 प्रसाद एण्ड पी0 सत्यनारायण, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स, स्टलिंग पब्लिशर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1990
6. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
7. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आरबीएसए पब्लिशर्स, जयपुर।

14.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डॉ0 रवीन्द्र प्रसाद, वी0 एस0 प्रसाद एण्ड पी0 सत्यनारायण, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स, स्टलिंग पब्लिशर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1990
2. डॉ0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर।
3. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आरबीएसए पब्लिशर्स, जयपुर।

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मैकग्रिगोर द्वारा प्रतिपादित 'एक्स' सिद्धान्त तथा 'वाई' सिद्धान्त का तुलनात्मक विवेचन कीजिये। मैकग्रिगोर ने इनमें से किस थ्योरी को सही ठहराया है और क्यों?
2. संगठन, टीम दल, विशेषज्ञों की भूमिका आदि तथ्यों पर मैकग्रिगोर के दृष्टिकोण की विवेचना कीजिए।
3. मैकग्रिगोर ने संगठन में मानवीय मुद्दों को प्रमुखता दिलवाने में किस प्रकार अहम् भूमिका निभाई?

इकाई- 15 क्रिस अर्गिरिस एवं फ्रेडरिक हर्जबर्ग

इकाई की संरचना

(भाग- 1 क्रिस अर्गिरिस)

15.0 प्रस्तावना
15.1 उद्देश्य
15.2 क्रिस अर्गिरिस- एक परिचय
15.3 अर्गिरिस और औपचारिक संगठन
15.4 व्यक्ति और समूह अनुकूलन
15.5 प्रबन्धन की प्रबल धारणाऐं
15.6 संगठनात्मक विकास की रणनीतियां
    15.6.1 परिपक्वता-अपरिपक्वता सिद्धान्त
    15.6.2 अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य में सुधार
    15.6.3 नई व्यवस्था की संगठनात्मक संरचनाऐं
    15.6.4 योजनाबद्ध ज्ञानार्जन की तकनीकें
15.7 टी-समूह अथवा संवेदनशीलता प्रशिक्षण
15.8 टी-समूह और लोक प्रशासन
15.9 संगठनात्मक ज्ञानार्जन
15.10 आर्गिरिस की आलोचना
15.11 समालोचना

(भाग- 2 फ्रेडरिक हर्जबर्ग)

15.12 फ्रेडरिक हर्जबर्ग- एक परिचय
15.13 अभिप्रेरणा पर हर्जबर्ग का अध्ययन
15.14 द्वि-कारक सिद्धान्त
    15.14.1 संतुष्टिदायक कारक
    15.14.2 असन्तुष्टिदायक कारक
15.15 अभिप्रेरण-स्वास्थ्य सिद्धान्त
15.16 स्वास्थ्य और प्रेरणा के अन्वेषी
15.17 स्वास्थ्य एवं अभिप्रेरण अन्वेषियों की विशेषताऐं
15.18 कार्य समृद्धि की अवधारणा
    15.18.1 कार्य समृद्धि में अवसर
    15.18.2 कार्य समृद्धि प्रक्रिया
15.19 सारांश
15.20 शब्दावली
15.21 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.22 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.23 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

15.24 निबन्धात्मक प्रश्न

15.0 प्रस्तावना

इस इकाई में दो अमरीकी प्रशासनिक चिन्तकों को लिया गया है- क्रिस अर्गिरिस और फ्रेडरिक हर्जबर्ग को। कारण यह है कि यह दोनों विचारक मूलरूप से मनोवैज्ञानिक हैं और उन्होंने संगठन और कर्मचारियों के पारस्परिक रिश्तों का अध्ययन मनोवैज्ञानिक आधार पर अनुभावात्मक पद्धति के माध्यम से किया है। दोनों का दृष्टिकोण व्यवहारवादी है और दोनों ही निपुणता की प्राप्ति के लिये प्रबन्धन और कर्मचारियों के मध्य सहयोग और समन्वय की बात करते हैं।

क्रिस अर्गिरिस के अध्ययन का क्षेत्र औपचारिक संगठनात्मक संरचनाऐं और उनका प्रभाव, नियत्रंण व्यवस्था, व्यक्तियों पर प्रबन्धन का प्रभाव, संगठनात्मक परिवर्तन, कार्यापालक आचरण, समाजशास्त्रियों की भूमिका विशेष रूप से शोध के क्षेत्र में और व्यक्तिगत ज्ञानार्जन है। अर्गिरिस को संगठनात्मक विकास के क्षेत्र का एक महान विचारक माना गया है। उसके लेखों का सार यह है कि व्यक्ति का निजी विकास संगठनात्मक स्थिति से प्रभावित होता है। वह व्यक्ति की उठान(Growth) को प्रशासन का लक्ष्य मानता है।

दूसरी ओर, फ्रेडरिक हर्जबर्ग के अध्ययन का क्षेत्र काम समृद्धि अवधारणा (Job enrichment), अभिप्रेरणा स्वास्थ्य (motivation hygion) सिद्धान्त, द्वि-कारक सिद्धान्त जैसे मनोवैज्ञानिक और पर्यावरणात्मक शोधों से सम्बन्धित हैं। फ्रेडरिक हर्जबर्ग 'काम समृद्धि अवधारणा' का जनक माना जाता है। उसकी अध्ययन पद्धति भी मनोवैज्ञानिक और अनुभावात्मक है और उसके अध्ययन का पूरा जोर व्यक्ति और प्रबन्धक के आचरण पर है। दोनों विचारकों ने महान ग्रन्थों की रचना की है और उनके लेखों का प्रभाव आज के प्रबन्धन और प्रशासन पर अमिट हैं।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संगठनात्मक संरचनाओं और व्यक्तियों के पारस्परिक रिश्तों पर अर्गिरिस और हर्जबर्ग के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को जान पाओगे।
- अर्गिरिस का प्रशासकीय दृष्टि से अध्ययन क्या है, यह समझ सकोगे।
- अर्गिरिस संगठनात्मक विकास पर क्यों जोर देता है, यह जान सकोगे।
- अर्गिरिस की परिपक्वता-अपरिपक्वता की परिकल्पना क्या है, यह समझ सकोगे।
- हर्जबर्ग की काम-समृद्धि अवधारणा को समझ सकोगे।
- हर्जबर्ग ने द्वि-कारक सिद्धान्त का प्रतिपादन क्यों किया, यह जान सकोगे।
- दोनों विचारकों के सिद्धान्तों की किस आधार पर आलोचना की गई, इसकी जानकारी ले सकोगे।

15.2 क्रिस अर्गिरिस- एक परिचय

प्रशासनिक चिन्तक की हैसियत से क्रिस अर्गिरिस (1923- 2002) के विचारों को समझने से पहले हमें यह समझना चाहिये कि प्रशासनिक अथवा संगठनात्मक दृष्टि से क्रिस अर्गिरिस के समय में यूरोप की स्थिति क्या थी? सच यह है कि इस समय पश्चिमी जगत मशीनीकरण तथा तकनीकीकरण की आत्माविहीन निर्जीवी परिस्थितियों से

गुजर रहा था। इस स्थिति ने लोगों में असंतोष को इतना अधिक बढावा दिया था कि लोगों में अलगाव और अकेलेपन की भावना पनपने लगी थी। वास्तव में वैयक्तिक अस्तित्व के लिये मशीनीकरण एक चुनौती बन गया था।

इन परिस्थितियों में विचारकों का एक ऐसा वर्ग सामने आया जिसने खुलकर तत्कालीन हालात की आलोचना की। इन विचारकों ने सबसे पहले जन-वेदना और पीड़ा को महसूस करके मशीनीकरण और तकनीकी सिद्धान्तों की अप्रसांगिकता पर चोट की। उन्होंने यह बताने का प्रयास किया कि यांत्रिकी जीवन ने व्यक्ति की स्वतंत्रता को छीनकर उसे मात्र एक पुर्जा बना दिया है।

क्रिस अर्गिरिस नव-वामपंथी नहीं था। वह शुद्ध रूप से एक बुद्धिजीवी था। मनोविज्ञान उसका विषय था और व्यवहारवाद उसके अध्ययन का आधार था। उसे औद्योगिक प्रशासन और संगठनात्मक व्यवहार पर महारत हासिल थी और वह विश्वविद्यालयों में इन्हीं विषयों का प्रोफेसर रहा था। प्रबन्धक और संगठनात्मक व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में उसने अनेक ग्रन्थों की रचना थी। 'पर्सनैलिटी एण्ड आर्गेनाइजेशन'(1957) उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। अन्य रचनाऐं हैं- 'मैनेजमेन्ट एण्ड आर्गनाइजेशनल, डेवलपमेंट नॉलिज फॉर ऐक्शन'। यद्यपि अर्गिरिस ने एम0 ए0 की डिग्रीयां मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र में ली और पीएच0डी0 उसने संगठनात्मक व्यवहार में की। अत: अर्गिरिस का व्यक्तित्व बहु-आयामी था। अध्ययन के क्षेत्र में वह 'अन्तर अनुशासनीय उपागम' में विश्वास करता था। इसी कारण उसका दृष्टिकोण विस्तृत था। अर्गिरिस ने चार क्षेत्रों में शोध कार्य किये हैं-

1. औपचारिक संगठनात्मक संरचनाओं का प्रभाव;
2. व्यक्तियों पर नियत्रंण, व्यवस्थाओं और प्रबन्धन का प्रभाव;
3. संगठनात्मक परिवर्तन, विशेष रूप से कार्यपालक आचरण; तथा
4. एक शोधकर्ता की हैसियत से समाजशास्त्रियों की भूमिका (एक अभिकर्ता या ऐक्टर और व्यक्ति के रूप में भी) और संगठनात्मक अध्ययन।

वैसे अर्गिरिस एक व्यवहारवादी विचारक था। उसे संगठनात्मक विकास के क्षेत्र में योगदान के लिये याद रखना चाहिये। उसने व्यक्ति और संगठनात्मक विकास दोनों को ना केवल स्पष्ट रूप से परिभाषित किया, बल्कि उनसे सम्बन्धित सिद्धान्तों और रणनीतियों का भी विकास किया। उसने अपना पूरा ध्यान, व्यक्ति के संगठन से सम्बन्धों पर ही नहीं लगाया, बल्कि उस टकराव को भी समझाने का प्रयास किया जो व्यक्ति की सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं और संगठन की अत्यावश्यकताओं (अनिवार्यताओं) के मध्य होता है। उसके लेखों का सार यह है कि व्यक्ति का वैयक्तिक विकास संगठनात्मक स्थिति से प्रभावित होता है। उसका विश्वास था कि यदि व्यक्ति की वास्तविक क्षमता का सही ढंग से दोहन कर लिया जाये तो उसका लाभ कर्मचारियों को भी मिलेगा और संगठन को भी।

15.3 अर्गिरिस और औपचारिक संगठन

क्रिस अर्गिरिस इस विश्वास के साथ अपने विचारों को आगे बढ़ाता है कि तत्कालीन संगठनात्मक व्यवस्थाएँ व्यक्ति के विकास में बांधा पहुँचाती हैं, उसकी मनोवैज्ञानिक सफलता को रोकती हैं और कर्मी के वैयक्तिक विकास से जो लाभ मिल सकते हैं, उनसे संगठन को वंचित करती है।

अर्गिरिस इस परिकल्पना के साथ अपना तर्क प्रस्तुत करता है कि किसी संस्थान में संगठन का स्वरूप या चरित्र औपचारिक (Formal) होता है, अर्थात संगठन सिद्धान्तों पर टिका होता है। संगठन की संरचना का आधार व्यक्ति (कर्मचारी) होते हैं। अर्गिरिस का तर्क यह है कि परिपक्व व्यक्तित्व की आवश्यकताओं और औपचारिक संगठन की अपेक्षाओं (जरूरतों) के मध्य एक आमूल विसंगति होती है। औपचारिक संगठन का व्यक्ति पर गहरा प्रभाव

पड़ता है और जब व्यक्ति और संगठन की जरूरतों के मध्य टकराव आरम्भ होता है, तब दोनों को हानि होती है। स्वस्थ व्यक्तित्व के विकास और औपचारिक संगठन की अनिवार्यताओं में सामंजस्य और पारस्परिक समाधान हो। इसके लिये जरूरी है, एक का दूसरे को समझना।

जैसा कि आपने पढ़ा है कि औपचारिक संगठन का अर्थ है, सिद्धान्तों पर आधारित संगठन की संरचना और क्रयाशीलता। अर्गिरिस के अनुसार जब औपचारिक संगठन के सिद्धान्तों को लागू किया जाता है, तब ऐसी स्थितियां पैदा होती हैं जिनमें, पहला- कर्मचारियों को उनके कार्य-दिवसों पर उनका न्यूनतम नियंत्रण मोहय्या कराया जाता है। दूसरा- उनसे निष्क्रिय, निर्भर और अधीनस्थ बने रहने की अपेक्षा की जाती है। तीसरा- उससे एक अल्पकालिक नजरिए की अपेक्षा की जाती है तथा चौथा- उन्हें कुछ सतही क्षमताओं के निरन्तर प्रयोग करने और उनको महत्व देने की महारत के लिये प्रेरित किया जाता है। अर्गिरिस का मानना है कि उक्त सारी विशेषताएँ व्यस्क मनुष्यों की आवश्यकताओं के लिये अनुपयुक्त हैं। वास्तव में जहाँ तक पाश्चात्य संस्कृति का सवाल है, ये विशेषताऐं वहाँ के बच्चों की जरूरतों के अनुकूल हो सकती हैं। नतीजा यह होता है कि जब परिपक्व व्यस्क (कर्मचारी) कम परिपक्व ढंग से काम करते हैं, तब संगठन उनको ऊँची मजदूरी और उचित वरिष्ठता प्रदान करने को तैयार हो जाते हैं।

सवाल यह है कि औपचारिक संगठन और परिपक्व वयस्क के मध्य विसंगति का कारण क्या है? अर्गिरिस के अनुसार यह विसंगति इसलिये बढ़ती है, क्योंकि (अ) कर्मचारियों में परिपक्वता निरन्तर बढ़ती रहती है, (ब) औपचारिक संगठन की प्रभावशीलता को बनाये रखने के लिये औपचारिक संरचना को अधिक स्पष्ट और तार्किक तौर पर कठोर बनाया जाता है, तथा (स) जब व्यक्ति आदेश के अर्न्तगत रहता है।

वास्तव में अर्गिरिस यह समझाना चाहता है कि औपचारिक संगठन में प्रबन्धकीय नियत्रणों पर जोर देना इसलिये जरूरी है, ताकि कर्मचारी अपने वरिष्ठों पर पूरी तरह निर्भर रहें और उनमें नियत्रंणों के कारण डर बना रहे और वे सक्रियता बनाये रखें। ऐसे नियंत्रण दक्षता का प्रतीक नहीं सजा के प्रतीक होते हैं और अधीनस्थ तथा वरिष्ठ इस सत्य को स्वीकार करते हैं। इसी तरह कार्यों की जाँच-पड़ताल के लिये, जब मूल्यांकन तकनीकें अपनाई जाती हैं और जब वे असफलताओं को उजागर करती हैं तो कर्मचारी उनको अनुचित समझते हैं, बिना यह सोचें कि असफलताऐं क्यों अनिवार्य हैं? नतीजा यह होता है कि असफलता की मनःस्थिति की सम्भावना बढ़ जाती है और सफलता की मनोवृत्ति की सम्भावना कम हो जाती हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता हैं कि प्रबन्धकीय नियंत्रण मात्र यह देखता है कि संगठन पर वित्तीय भार (कीमत) कितना है और इसकी परवाह नहीं करता है कि मानवीय कीमत क्या है?

15.4 व्यक्ति और समूह अनुकूलन

आपको यह समझ में आ गया होगा कि अर्गिरिस व्यक्ति (कर्मचारी) और संगठन (औपचारिक) के सम्बन्धों को स्पष्ट करना चाहता है। जैसा कि लिखा जा चुका है कि औपचारिक संगठन का अर्थ है स्थापित सिद्धान्तों पर टिके रहना। प्रायः ये सिद्धान्त हैं- कार्य विशिष्टीकरण, निर्देशन की एकता, आदेश की लड़ी (Chain) और नियंत्रण का विस्तार (Spain of Control)। अब यदि संगठन में इन सिद्धान्तों का सही तरीके से पालन किया जाये, तब इसका अर्थ होगा कि कर्मचारी एक ऐसी स्थिति में हैं जहाँ पर वे निर्भर हैं, अधीनस्थ हैं और अपने नेता (वरिष्ठ) के सामने निष्क्रय हैं। यह दुखद स्थिति है। ऐसे में वे अपनी कुछ ही क्षमताओं का प्रयोग करते हैं। नतीजा यह होता है कि जैसे-जैसे कर्मचारी आदेश के नीचे दबता जाता हैं और कार्य का स्वरूप अत्याधिक उत्पादन के चरित्र (Mass Production) जैसा होता जाता है, निष्क्रियता, पर-निर्भरता और आज्ञाकारिता (दब्बूपन) की मात्रा बढ़ती जाती है। संक्षेप में अर्गिरिस की परिकल्पना यह है कि औपचारिक संगठन एक स्वस्थ व्यक्ति में विफलता और निराशा

की भावना पैदा करता है। उसका सोचने का नजरिया कम हो जाता है। वह द्वन्द्व (टकराव) के मार्ग पर चलने के लिये मजबूर हो जाता है।

अर्गिरिस की यह परिकल्पना उसके मनोवैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित है। उसने कर्मचारियों और प्रबन्धक के पारस्परिक व्यवहार को समझने का प्रयास किया है और अथक शोधों के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा है कि औपचारिक संगठन कर्मचारियों की उच्चकोटि की आवश्यकताओं का पूरा करने में असफलत रहता है। नतीजा यह होता है कि कर्मचारियों में उदासीनता, विमुखता, अरूचि और गैर-भागीदारी ऐसे आत्मरक्षा के उपकरण बन जाते हैं जो आखिरकार संगठनात्मक घटनाक्रम के एक भाग बन जाते हैं। अर्गिरिस के अनुसार प्रतिरक्षाओं का कारण वो हताशा, टकराव और विफलता है, जिसको एक कर्मचारी सहन करता है।

अब सवाल यह है कि व्यक्ति और समूह अनुकूलन का अभिप्राय क्या है? अर्गिरिस के अनुसार व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह संगठन के प्रभाव के अनुरूप स्वयं को ढालता है। दूसरे शब्दों में वह (वे) संगठन से पैदा होने वाली नई परिस्थितियों से परिचित होकर उनके अनुकूल आचरण करता है, कैसे? कभी संगठन को छोड़कर, कभी संगठनात्मक सीढ़ी पर चढ़कर, कभी प्रतिरक्षा उपकरणों का प्रयोग करके और कभी उदासीनता और विमुखता का प्रदर्शन करके। अर्गिरिस के अनुसार यह सब अनुकूलन के यांत्रिकी-उपकरण (Adaptive Mechanism) हैं। इनकी पूर्ति अनिवार्य है।

व्यक्ति (कर्मचारी) अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष करता है और इसके लिये उसे समूह स्वीकृति और सहमति की आवश्यकता पड़ती है। औपचारिक कार्य समूहों को अनुकूलित प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के लिये संगठित किया जाता है, ताकि वे उन कर्मचारियों को पुरस्कृत करें, जिन्होंने औपचारिक नियमों का पालन किया हो और उन्हें दण्ड दें, जिन्होंने नहीं किया। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति के अनुकूलन कृत्यों को समूह द्वारा स्वीकृति मिल गई और इस तरह अनुकूलन आचरण की निरन्तरता बनी रहती है।

15.5 प्रबन्धन की प्रबल धारणाऐं

प्रायः प्रबन्धन कुछ ऐसी धारणाओं से ग्रस्त रहता है, जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है। बिना सबूत के प्रशासक यह मानकर चलते हैं कि ऐसा है या ऐसा होता है। आर्गिरिस के अनुसार शीर्ष प्रशासकों में मान लेने की बीमारी बहुत गहरी होती है। दुःख की बात यह है कि कर्मचारियों के बारे में उनकी धारणा यह होती है कि काम के समय वे (कर्मचारी) सुस्त, विमुख, अरूचिकर और उदासीन रहते हैं, वे पैसे के पीछे भागते हैं, गलतियां करते हैं और बर्बादी करते हैं। प्रशासक सारा दोष कर्मचारियों पर मढ़ते हैं और उनमें गैर-वफादारी और अरूचि देखते हैं। इसलिये प्रबन्धन की सोच यह बनती है कि यदि कोई परिवर्तन आना है तो वह कर्मचारियों में आना चाहिए। प्रबन्धन स्वयं को नहीं बदलेगा।

अर्गिरिस के अनुसार लोगों (कर्मियों) के रूख या मानसिकता को बदलने के लिये और कर्मियों की संगठन में और दिलचस्पी बढ़ाने के लिये प्रबन्धन अनेक प्रोग्राम शुरू करता है। अर्गिरिस इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि औपचारिक संगठन के तर्क और औपचारिक नेतृत्व की भूमिका समस्या के समाधान की नीति को तय करती है। यह सब कुछ मात्र धारणाओं पर आधारित होता है।

संगठन और व्यक्ति के सम्बन्ध पर किये गये अधिकांश शोधों से अर्गिरिस ने यह नतीजा निकाला कि स्वेच्छाचारी और निर्देशात्मक नेता (प्रशासक) कर्मचारियों को एक ऐसी स्थिति में पहुँचा देते हैं, जहाँ वे पर-निर्भर और दब्बू बन जाते हैं। संगठन और प्रशासन पर ध्यान अधिक है तथा कृपादृष्टि पाने के लिये वे आपसी मुकाबला करते हैं।

यहाँ दो बातें सामने आती हैं, पहली- संगठन का आचरण और दूसरी- नेता (अधिकारी) का आचरण। निर्देशात्मक नेतृत्व का प्रभाव अधीनस्थों पर वैसा ही पड़ता है जैसा कि औपचारिक संगठन का प्रभाव अधीनस्थों पर पड़ता है।

विशेष बात यह है कि संगठनात्मक संरचना को जो क्षति पहुँचाती है, उसको और बढ़ावा देने का काम सर्वाधिकारिक नेतृत्व निरन्तर करता रहता है।

15.6 संगठनात्मक विकास की रणनीतियां

अर्गिरिस संगठनात्मक संरचनाओं में परिवर्तन लाकर व्यक्ति और संगठन या कर्मचारी और अधिकारी के रिश्तों को सुधारना चाहता है, ताकि संगठन का विकास हो। इसके लिये चार क्षेत्रों को चुनकर एक रणनीति के तहत काम किया जाये। इन चार क्षेत्रों से सम्बन्धित सिद्धान्त हैं-

15.6.1 परिपक्वता-अपरिपक्वता सिद्धान्त

अर्गिरिस बार-बार इसी धारणा पर जोर देता हैं कि संगठन की औपचारिक संरचना और परिपक्व व्यस्कों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं के मध्य एक सतत् टकराव जारी रहता है। जब परिपक्व व्यस्कों की हैसियत से कर्मचारियों को काम नहीं करने दिया जाता है तो वे निराश हो जाते हैं और हताशा उन्हें जकड़ लेती है। अर्गिरिस के परिपक्वता-अपरिपक्वता सिद्धान्त का सार यह है कि जैसे-जैसे लोग बढ़ते जाते हैं, वे परिपक्व और विकसित होते जाते हैं। अर्गिरिस के अनुरूप परिपक्वता की प्रक्रिया सात चरणों से गुजरती है जो इस प्रकार हैं-

1. शिशु अवस्था की निष्क्रियता से प्रौढ़ सक्रियता की ओर;
2. निर्भरता से सम्बन्धात्मक स्वतंत्रता की ओर;
3. सीमित व्यवहार से अधिक भिन्न व्यवहार की ओर;
4. अस्थिर, उथले और संक्षिप्त हितों से अधिक स्थिर, गहन हितों की ओर;
5. अल्प समयी दृष्टिकोण से दीर्घ समयी दृष्टिकोण की ओर;
6. एक अधीनस्थ सामाजिक हैसियत से एक समान या उच्चतर सामाजिक हैसियत की ओर; तथा
7. आत्मचेतन के कमी से आत्म-चेतन और आत्म नियंत्रण की ओर।

उक्त सातों बिन्दुओं का सार यह है कि यदि एक कर्मचारी पर एक निश्चित और सीमित काम के करने का दबाव डाला जाये तो उसमें विमुखता और हताशा पनपेगी। इसी तरह अगर कर्मचारी को नीति-निर्माण में भागीदारी की स्वतंत्रता नहीं दी गई तो उसमें काम के प्रति उत्साह कम हो जायेगा और उत्पादन पर बुरा असर पड़ेगा। अगर प्रबन्धन ने कर्मचारी को अपनी आजादी काम करने या निर्णय लेने के लिये प्रोत्साहन नहीं दिया तो उसका मनोबल टूट जायेगा और स्वयं प्रबन्धन उसकी स्वाभाविक क्षमताओं से वंचित रह जायेगा।

इसलिये अर्गिरिस का सुझाव है कि क्योंकि कर्मचारी व्यस्क होते हैं, उनको परिपक्व व्यक्ति समझना चाहिये। यह स्वीकार करना चाहिये कि उनमें उत्तरदायित्व निभाने की क्षमता है। वे संगठन के दूरगामी हितों और आवश्यकताओं की पूर्ति करने के योग्य हैं।

अर्गिरिस 'व्यक्तित्व के सिद्धान्त' का प्रतिपादक है। इस सिद्धान्त के अनुसार परिपक्व व्यक्ति मनोवैज्ञानिक ऊर्जा रचनात्मक कार्यों में खर्च करना चाहता है। इस मान्यता के साथ अर्गिरिस इस नतीजे पर पहुँचता है कि व्यैक्तिक व्यवहार का एक विश्लेषणात्मक ढाँचा तैयार किया जाना चाहिये, जिसमें मनोवैज्ञानिक ऊर्जा, व्यक्तित्व जरूरतें और क्षमताऐं सम्मिलित हों।

15.6.2 अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य में सुधार करना

इसका अर्थ है कि व्यक्तियों में बौद्धिक और यांत्रिकी क्षमता होती हैं। संगठनों का कर्तव्य है कि इन क्षमताओं में सुधार करें और उन्हें विकसित करें। अर्गिरिस ने देखा कि हर जगह चाहे वे शोध संस्थान हों, अस्पताल हों,

व्यापारिक प्रतिष्ठान या नागरिक सेवाऐं हों, अन्तर्वैयक्तिक (Interpersonal) क्षमताओं की अनदेखी की जाती है। जबकि सच यह है कि संगठन अधिक बेहतर ढंग से कार्य कर सकते हैं, यदि उनके सदस्यों में अधिक सामर्थ्य हो। अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य का अर्थ क्या है? अर्गिरिस के अनुसार अन्य मानव प्राणियों की मौजूदगी एक पर्यावरण तैयार करती है। इस पर्यावरण से प्रभावशाली ढंग से बर्ताव करने को अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य कहा जाता है। अर्गिरिस अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य के लक्ष्य को प्राप्त करने की सबसे अधिक वकालत करता है। उसके अनुसार अन्तर्वैयक्तिक विकास की तीन शर्तें हैं- आ**त्मस्वीकृति-** इसका अर्थ है, व्यक्ति का एक हद तक सकारात्मक ढंग से अपना मूल्यांकन करना। **पुष्टिकरण-** इसका अर्थ है, व्यक्ति को अपनी वास्तविक छवि का स्वयं परीक्षण करना। **अनिवार्यता-** अनिवार्यता या अपरिहार्यता का अर्थ है, एक ऐसा अवसर जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी केन्द्रीय क्षमताओं का सदुपयोग करता है और अपनी केन्द्रीय (मूल) आवश्यकताओं को अभिव्यक्त करता है।

अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य के क्रियान्वयन के लिये अर्गिरिस ने अनेक विशेष प्रकार के व्यवहारों को चुना है, जिनको वह अन्तर्वैयिक्तक सामर्थ्य व्यवहार का एक ठोस साक्ष्य मानता है। ऐसे चार प्रकार के व्यवहार होते हैं-

1. अपने विचारों और भावनाओं की जिम्मेदारी को स्वीकार करना अर्थात् यह मानना कि यह प्रवृत्तियां उसी की हैं।
2. दूसरों के विचारों और भावनाओं को सहृदय स्वीकार करना और अपने विचारों को भी महत्व देना।
3. नये विचारों और भावनाओं को साथ प्रयोग करना।
4. जिम्मेदार बनने, खुलापन अपनाने और अपने विचारों और भावनाओं के साथ प्रयोग करने में सहायता करना।

15.6.3 नई व्यवस्था की संगठनात्मक संरचनाऐं

अर्गिरिस के अनुसार भविष्य के संगठन नई परिस्थितियों में पुराने और नये संगठनों के स्वरूपों के मिश्रण होंगे। पुराने स्वरूपों का अपना महत्व होगा, क्योंकि वे दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को चलाने में सक्षम होते हैं। यहाँ कुछ नया नहीं करना पड़ता है, इसलिए कर्मचारियों की प्रतिबद्धता भी कम होती है। लेकिन जैसे-जैसे लीक से हटकर निर्णय लिये जाने लगते हैं, उनमें जब नयापन होता है और अधिक प्रतिबद्धता की आवश्यकता पड़ती है, तब संगठन के नये स्वरूप के पंक्तिबद्ध (Matrix) संगठन अधिक प्रभावशाली होते हैं। संगठनात्मक संरचनाओं से सम्बन्धित अर्गिरिस का विस्तृत नुस्खा निर्णय-निर्माण की प्रकृति और क्रिया की मांग पर आधारित है। अतः अर्गिरिस ने संगठन के अनेक मिश्रणों की ओर इशारा किया। वास्तव में यह मिश्रण संगठन की संरचनाऐं हैं, जो निम्न प्रकार की हैं-

1. **त्रिभुजीय (पिरामिडल) संरचना-** अर्गिरिस के अनुसार दिन-प्रतिदिन के कामों में त्रिभुजीय रूप का प्रयोग होना चाहिये। दूसरे शब्दों में यदि पुराने ढर्रों पर चलना है और कर्मचारी को निष्क्रिय और विमुख रहना है तो त्रिभुजीय रूप काम का है।
2. **परिवर्तित औपचारिक संगठनात्मक संरचना-** इसका अर्थ है कि एक अधीनस्थ कर्मचारी वरिष्ठ द्वारा लिये गये निर्णय में भागीदार होता है। ऐसी संरचना बहुत प्रभावशाली होती है, क्योंकि अधीनस्थ की भागीदारी से वरिष्ठ समूह, लिये गये निर्णयों की अनदेखी कर सकता है।
3. **कार्यात्मक योगदान के अनुरूप शक्ति-** इस संरचना के अर्न्तगत प्रत्येक कर्मचारी को सूचना, शक्ति और नियंत्रण हासिल करने का समान अवसर मिलता है। इसका आधार वह समस्या के समाधान में कर्मचारी का योगदान है। यह रणनीति ऐसी स्थिति में अपनाई जाती है, जहाँ समूह गतिविधियां संचालित होती है।

4. **पक्तिबद्ध (Matrix) संगठन-** 'Matrix' के लिये हिन्दी में उपयुक्त शब्द नहीं है, हमने पक्तिबद्ध शब्द का प्रयोग किया है। मैटरिक्स एक व्यवस्था है, जिसमें पंक्तियां होती हैं। अर्गिरिस का कहना यह है कि मैटरिक्स संगठन एक ऐसी संरचना है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति समान शक्ति और उत्तरदायित्व का मालिक है। मूल गतिविधियों की प्रकृति को प्रभावित करने के लिये उसके पास असीमित अवसर होते हैं। इस संरचना में वरिष्ठ-अधीनस्थ का रिश्ता समाप्त हो जाता है। व्यक्ति को किसी क्रिया को चुनने की आजादी होती है। मैटरिक्स संगठन में आन्तरिक अधिपत्य की गुंजाईश नहीं होती है। ऐसे संगठन के तहत प्रोजेक्ट टीमें बनाई जाती हैं जो समस्याओं का समाधान खोजती हैं। इन टीमों के सदस्य प्रबन्धन, निर्माण (उत्पादन), इन्जीनियरिंग, व्यापार और वित्त में माहिर होते हैं। वे सब एक संयुक्त इकाई के रूप में काम करते हैं। एक औद्योगिक संस्थान में जितने विभाग होते हैं, उतनी ही टीमें बनाई जाती है।

   मैटरिक्स संगठन में कार्यपालकों (प्रबन्धकों) की भूमिका बड़ी अहम है। उन्हें कई पहलुओं को सीखना होता है। सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की होती है कि वे वास्तविक नेतृत्व के व्यवहार का प्रशासनिक स्थिति से मेल बैठाये। वे उत्पादकीय तनाव को नियंत्रित रखें। जोखिम उठायें, कर्मचारियों की क्षमता का विस्तार करें। नेता का यह कर्तव्य है कि वह कर्मचारियों की आन्तरिक पर्यावरण को समझने में सहायता करें। उसे यह भी सीखना चाहिए कि वह किस तरह अर्न्तसमूह टकराव को सकारात्मक पहलुओं की दृष्टि से रोकता है। कार्यपालक शिक्षा का उद्देश्य व्यवस्था की प्रभावशीलता को बनाये रखना है।

   'मैटरिक्स' संरचना का सम्बन्ध रोजी के लिए काम या जॉब (job) से होता है। रोजी (job) के अवसर बढें, यह लक्ष्य होना चाहिए। जॉब का विस्तार होना चाहिये। ऐसा व्यक्ति की बौद्धिक और अन्तर्वैयक्तिक क्षमताओं को बढ़ाकर किया जा सकता है। यदि प्रत्येक कर्मचारी का अपने क्षेत्र की गतिविधियों पर अधिक नियंत्रण होता है और यदि उसकी नीति-निर्माण में अधिक भागीदारी होती है तो जॉब विस्तार होगा।

15.6.4 योजनाबद्ध ज्ञानार्जन की तकनीकें

आप पढ़ रहे हैं कि अर्गिरिस ने किस तरह संगठन और व्यक्ति (कर्मी) का सम्बन्ध जोड़ा है। लक्ष्य है, संगठन और व्यक्ति दोनों का विकास। उसका मानना है कि संगठनात्मक विकास के लिये शिक्षा की एक योजना तैयार करना अनिवार्य है। ज्ञानार्जन का विस्तार हर तरफ होना चाहिये; व्यक्तियों में, व्यक्तियों की टीमों में, सगंठनात्मक व्यवस्था में, समस्या निदान में या फिर प्रभावशीलता लाने में। इसके लिये नई तकनीकों का प्रयोग करना होगा। इनमें एक टी-समूह (T-Group) तकनीक या संवेदनशील प्रशिक्षण है, जिसका अर्गिरिस ने सुझाव दिया है। इस तकनीक से कर्मचारियों की व्यक्तिक प्रभावशीलता बढ़ सकती है।

15.7 टी-समूह (T-Group) अथवा संवेदनशीलता प्रशिक्षण

टी-समूह का विचार अर्गिरिस ने कर्मचारी के व्यवहार को मापने के लिये दिया है। यहाँ 'टी' का अर्थ अंग्रेजी के 'T' से है और प्रशिक्षण (Training) के लिये प्रयोग किया गया है। अर्गिरिस टी-समूह को संवेदनशीलता प्रशिक्षण भी कहता है,क्योंकि वह इस तकनीक से कर्मचारी की संवेदनशीलता को जानना चाहता है।

अब आपको टी-समूह तकनीक को समझना होगा। अर्गिरिस के अनुसार टी-समूह तकनीक एक प्रयोगशाला पर आधारित कार्यक्रम है। इसको इस तरह तैयार किया गया है कि यह कर्मचारियों को अपने आचरण को व्यक्त करने या दिखाने के अवसर देता है। उदाहरण के लिये स्वयं द्वारा किये गये व्यवहार के नतीजों को देखने या अपने साथ हुये व्यवहार को परखने अथवा नये व्यवहार को प्रयोग करने और स्वयं की तथा दूसरों की संवेदनशीलताओं को

स्वीकार करने के अवसर कर्मचारियों को व्यक्तियों की हैसियत प्रदान करता है। टी-समूह तकनीक से प्रभावशाली समूह कार्यात्मकता को सीखने की सम्भावनाऐं भी मिलती हैं। इस पद्धति को इस तरह तैयार किया गया है ताकि यह वो अनुभव प्रदान करें; जिनसे मनोवैज्ञानिक सफलता, आत्म-प्रोत्साहन और अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य को बढ़ाया जाये और पर-निर्भरता तथा नियंत्रण को घटाया जाये।

प्राय: यह देखा गया है कि टी-समूह सत्रों में भागीदार पदसोपानीय पहचानों को भूल जाते हैं और वियोजनीय नेतृत्व और सहमत नीति-निर्माण का विकास होने लगता है। पारम्परिक संगठनात्मक व्यवस्था में कर्मचारी अन्याय को सहन करता है (जैसे- उत्पीडन या हिंसा), लेकिन टी-समूह में वह अन्याय या आक्रमण का उत्तर आक्रमणकारी प्रतिक्रिया के रूप देकर एक प्रयोग कर सकता है।

अर्गिरिस ने देखा है कि टी-समूह तकनीक से अनेक सकारात्मक नतीजे देखने को मिले। उदाहरण के लिये निम्न स्तर कर्मियों को अधिक उत्तरदायित्व प्राप्त हुये। अधिक विश्वसनीय सूचनाएँ मिली, नीति-निर्माण में अधिक स्वायत्ता देखने को मिली। तनाव, टकराव और घटिया राजनीति भी सामने आयी, लेकिन बैठकों में उनका निदान भी कर लिया गया।

टी-समूह प्रशिक्षण का उद्देश्य क्या है? इसका उत्तर देते हुये अर्गिरिस ने बताया कि टी-समूह प्रशिक्षण का उद्देश्य व्यक्तिक उठान (Groth) है या आत्मज्ञान (Self-knowledge) का विकास है। वास्तविक उद्देश्य व्यक्तियों को बदलना है ना कि उनके माहौल को। इस तरह व्यक्ति तो सुधरेगा ही, संगठन का भी सुधार होगा। लेकिन अर्गिरिस के अनुसार ध्यान, व्यक्ति पर देना टी-समूह तकनीक का वास्तविक लक्ष्य है।

15.8 टी-समूह और लोक प्रशासन

क्रिस अर्गिरिस का सुझाव है कि टी-समूह तकनीक या संवेदनशीलता प्रशिक्षण का लोक प्रशासन में खुलकर प्रयोग होना चाहिये। उसके अनुसार सरकारी संगठनों में सुधार का उद्देश्य कर्मचारियों की उच्चस्तरीय आवश्यकताओं की संतोषजनक पूर्ति होना चाहिये। इसके लिये विस्तृत परिवर्तन कार्यक्रम की आवश्यकता होगी। यहाँ पर वरिष्ठ भागीदारों (प्रशासकों) के व्यवहार और नेतृत्व की शैली पर ध्यान देना होगा और उन्हें अधिकारियों के ऐसे संगठनात्मक परिवर्तनों से परिचित कराना होगा, जिनसे उत्तरदायित्वों का विस्तार हो और वे नवकरणीय (Innovative) आचरण को अपना सकें। अर्गिरिस के सुझाव एक विशिष्ट शोध का नतीजा है और वे सभी सरकारी संगठनों पर सटीक बैठते हैं।

15.9 संगठनात्मक ज्ञानार्जन

अर्गिरिस के योगदानों में एक महत्वपूर्ण योगदान संगठनात्मक ज्ञानार्जन (Organizational Learning) के क्षेत्र में है। उसने 'डोनाल्ड शोन' के साथ मिलकर संगठनों में ज्ञानार्जन प्रक्रियाओं का ना केवल अध्ययन किया, बल्कि उनको अवधारणात्मक रूप भी दिया। दोनों का तर्क यह है कि संगठन मात्र व्यक्तियों का संग्रह नहीं है, वरन् बिना ऐसे संग्रहों के कोई भी संगठन नहीं हो सकता है। इसी तरह यह स्वीकार करना होगा कि संगठनात्मक ज्ञानार्जन मात्र व्यक्ति का ज्ञानार्जन नहीं है, बल्कि संगठन भी व्यक्तियों के अनुभव और कृत्यों से सीखते हैं। यहाँ यह याद रखना होगा कि व्यक्ति सीखते भी हैं और सिखाते भी हैं, यही स्थिति संगठन की भी है। इस तरह व्यक्ति समूह और संगठन का रिश्ता ज्ञानार्जन के सन्दर्भ में बनता है। इस प्रक्रिया से माहौल में परिवर्तन आता है। सीखने की प्रक्रिया त्रुटियों का पता लगाती है और उनको ठीक करती है।

15.10 अर्गिरिस की आलोचना

अर्गिरिस के सिद्धान्त की तीन आधारों पर आलोचना की जाती है, प्रथम- संगठन के सन्दर्भ में व्यक्ति के प्रति उसका दृष्टिकोण बहुत दयालुतापूर्ण है। उसने आत्म-यर्थाथवाद की अवधारणा प्रस्तुत की है जो काल्पनिक है। उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। साइमन के अनुसार आत्म-यथार्थवाद का अर्थ है, अराजकता। साइमन इस तर्क से भी सहमत नहीं है कि संगठन सब कुछ है, स्वयं में साधन भी है और साध्य भी। आत्म-यथार्थवाद एक मिथ्या है। संगठन का यथार्थ स्वरूप तभी सामने आयेगा, जब वह काम के घंटों को कम कर सकेगा और कर्मचारियों को फुर्सत का समय देगा, ताकि वे आत्म-यथार्थवाद को पा सकें। द्वितीय- अर्गिरिस सत्ता के प्रति उदासीन है। वह संरचना को शैतान मानता है, जिसका अर्थ है कि वह शक्ति के प्रति पूर्वाग्रहों से ग्रस्त है। जबकि शक्ति या सत्ता संगठनात्मक प्रभावशीलता के लिये अनिवार्य है। साइमन के अनुसार यह सोचना अनुचित है कि शक्ति भ्रष्ट बनाती है। सच यह है कि शक्ति के पीछे भागना भ्रष्ट बनाता है और यहाँ शक्तिशाली और शक्तिहीन दोनों भ्रष्ट हो जाते हैं। तृतीय- पद्धति के आधार पर अर्गिरिस की आलोचना की गई है। अर्गिरिस के अनुसार संगठनों में कर्मचारी सत्ता के विरोधी होते हैं। इस कथन का कोई अनुभवात्मक या वैज्ञानिक आधार नहीं है। सच तो यह है कि अधिकतर कर्मचारी अपने मूल्यों और हितों की रक्षा के लिये सत्ता और संगठन के लक्ष्यों को स्वीकार करते हैं। यदि कर्मचारियों में संगठन के प्रति असंतोष होगा तो उसके लिये यह बेहतर होगा कि वे संगठन से छुटकारा पा लें। अर्गिरिस का यह मानना कि आत्मा-यथार्थवाद की प्राप्ति एक सार्वभौमिक लक्ष्य है, निराधार है। सच यह भी है कि अनेक कर्मचारी निर्देशात्मक नेतृत्व के अर्न्तगत सुखी रहते हैं।

15.11समालोचना

संगठनों के सम्बन्ध में अर्गिरिस ने मानव रिश्तों के अनेक पहलुओं को उजागर किया है। उसका उद्देश्य स्वस्थ संगठनों के निर्माण और उनमें जीवन की गुणवत्ता को बढ़ावा देना है। वह चाहता है कि आत्म-यथार्थवाद के लिये एक उपयुक्त माहौल तैयार किया जाये और ऐसा तभी सम्भव है, जब संगठनों में मौलिक बदलाव होगा। अर्गिरिस की अवधारणा क्रान्तिकारी और पारम्परिक सगंठनात्मक सिद्धान्तों को एक चुनौती है, इसलिये उसके सिद्धान्तों का क्रियान्वयन होगा इसकी सम्भावना कम है। उसकी अनेक अवधारणाऐं मूल्यपरक हैं और उनको सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

अर्गिरिस का सबसे महत्वपूर्ण योगदान अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य के क्षेत्र में है। इसके माध्यम से व्यक्तित्व और अन्तर्वैयक्तिक शैली का अध्ययन सम्भव है। यही वह ज्ञान है जो संगठन की प्रभावशीलता को निश्चित करता है। वास्तव में वह यह समझाता है कि अन्तर्वैयेक्तिक सामर्थ्य एक क्षमता है जिसको सीखा जा सकता है।

भाग- 2 फ्रेडरिक हर्जबर्ग

मूलरूप से क्रिस अर्गिरिस और फ्रेडरिक हर्जबर्ग दोनों मनोविज्ञान के विद्यार्थी रहे हैं। दोनों ने ही मनःविश्लेषणात्मक उपागम (पद्धति) का प्रयोग करके व्यक्ति और संगठन के व्यवहार को समझने का प्रयास किया है। दिलचस्प बात यह है कि दोनों ने यू0एस0ए0 आर्मी में सेवा की और दूसरे विश्व युद्ध में भाग लिया तथा सेना में रहकर उन्होंने जो अनुभव लिये उनको उन्होंने अपने प्रशासकीय सिद्धान्तों का आधार बनाया। इसलिये इस इकाई में अर्गिरिस और हर्जबर्ग का एक साथ अध्ययन करना तार्किक है।

15.12 फ्रेडरिक हर्जबर्ग- एक परिचय

क्रिस अर्गिरिस के समान फ्रेडरिक हर्जबर्ग मूलतः व्यवहारवादी है। एक प्रोफेसर की हैसियत से उसने विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान और प्रबन्धन में अध्यापन का काम किया और 'केस वेस्टर्न रिसर्च यूनिवसिर्टी' में 'डिपार्टमेंट ऑफ इण्डस्ट्रियल मेन्टल हेल्थ' की स्थापना की। उसके ग्रन्थों में 'मोटिवेशन टू वर्क' और 'वर्क एण्ड दि नेचर ऑफ मैन' प्रसिद्ध हैं।

हर्जबर्ग (सन् 1923 से 2000) एक नामवर मनोवैज्ञानिक था। उसे प्रबन्धन और संगठन से सम्बन्धित अनेक सिद्धान्तों का अगुआ माना जाता है। उदाहरण के लिये काम समृद्धि अवधारणा (जॉब ऐनरिचमेंट कन्सेप्ट), अभिप्रेरण-स्वास्थ्य(विज्ञान) सिद्धान्त (मोटिवेशन-हाइजीन थ्योरी) उसकी देन है। उसके सर्वाधिक प्रसिद्ध लेख 'वन मोर टाइम: हॉउ डू यू मोटिवेट एम्पलाइज' ने हर्जबर्ग को बहुत शोहरत दी। इसकी लगभग 12 लाख प्रतियां बिकी। 'वर्क एण्ड दि नेचर ऑफ मैन' प्रबन्धन पर लिखी गई दस सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है।

15.13 अभिप्रेरण पर हर्जबर्ग का अध्ययन

अभिप्रेरण (प्रेरित करना) का प्रबन्धन, प्रशासन, संगठन और कर्मचारियों से क्या सम्बन्ध है? इस मनोवैज्ञानिक प्रश्न पर अब्राहम मैस्लो और क्रिस अर्गिरिस के लेखों से प्रभावित होकर फ्रैडरिक हर्जबर्ग ने लगभग 25 वर्ष तक अनुभवात्मक (Emperical) अध्ययन किया और तब जाकर उसने अभिप्रेरण-स्वास्थ्य(विज्ञान) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसने काम के समय अर्थपूर्ण अनुभव और मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्धों का विश्लेषण किया और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि तमाम व्यक्तियों की दो तरह की आवश्यकताऐं होती हैं, पहला- दर्द से पीछा छुड़ाना तथा दूसरा- मनोवैज्ञानिक तौर पर बढ़ना या विकसित होना। इन मनोवैज्ञानिक खोजों के बाद हर्जबर्ग का अध्ययन दो विषयों या मुद्दों के ईद-गिर्द घूमता नजर आता है, पहला- उन घटनाओं को पहचानना जिन्होंने व्यक्ति को कार्य सतुष्टि के सुधार में अहम भूमिका अदा की और दूसरा- इसके विपरीत उन घटनाओं की भी पहचान करना, जिन्होंने कार्य संतुष्टि को घटाया।

यहाँ यह समझना जरूरी है कि हर्जबर्ग ने अपने अध्ययन में जिस उपागम(पद्धति) का प्रयोग किया उसको आपातकाल घटना पद्धति कहा जाता है। इसमें लोगों से खुले तौर पर प्रश्न किये जाते हैं। हर्जबर्ग के निर्देशन में साक्षात्कार-कर्ताओं ने उत्तरदाताओं से सवाल किया कि ''उस समय के बारे में सोचें, जब तुमने अपने काम (जॉब) या दूसरे कामों के बारे में जो तुमने किये हों, असाधारण तौर पर अच्छा या असाधारण तौर पर बुरा महसूस किया था।'' हर्जबर्ग को जो उत्तर मिले उनके आधार पर उसने 'अभिप्रेरण-स्वास्थ्य सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया।

हम यहाँ पहले आपातकाल घटना (Emergency Encident) को समझाने का प्रयास करेंगे। यह वे घटनाऐं हैं जो काम के दौरान कर्मचारी के मन को चोट पहुँचाती हैं। जब कर्मचारी उनको याद करता है तो उसे दर्द होता है।

अभिप्रेरण-स्वास्थ्य से अभिप्राय यह है कि कर्मचारी को काम के प्रति इस तरह प्रेरित किया जाये कि उसका मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य बना रहे। वास्तव में यह एक मनोवैज्ञानिक उपागम है, जिसका प्रयोग हर्जबर्ग ने किया। हर्जबर्ग अभिप्रेरण (Motivation) के लिये ना केवल निवारक के तरीके बताता है, बल्कि पर्यावरणात्मक उपाय भी सुझाता है। उसके सिद्धान्त ने प्रबन्धनों को अभिप्रेरण तत्वों के बारे मे नये ढंग से सोचने पर मजबूर कर दिया।

15.14 द्वि-कारक सिद्धान्त

हर्जबर्ग का द्वि-कारक सिद्धान्त (टू-फेक्टर थ्योरी), काम (जॉब) संतोष के पांच मजबूत निर्धारकों और काम असंतोष के भी पांच निर्धारकों को प्रस्तुत करता है। यह दो निर्धारक हैं, पहला- स्वास्थ्य (विज्ञान) या हाइजीन कारक तथा दूसरा- अभिप्रेरण या मोटिवेशन कारक।

स्वास्थ्य विज्ञान कारकों के पांच निर्धारक घटक या कारक हैं: 1. कम्पनी नीति और प्रशासन, 2. निरीक्षण, 3. वेतन, 4. अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध, तथा 5. काम करने की स्थितियाँ।

अभिप्रेरण कारकों में हर्जबर्ग ने- 1. उपलब्धि, 2. मान्यता, 3. स्वयं कार्य, 4. उत्तरदायित्व, तथा 5. प्रगति को लिया है।

कर्मचारियों ने अपने काम के बारे मे जो उत्तर दिये उनसे हर्जबर्ग इस नतीजे पर पहुँचा कि काम के प्रति कर्मचारियों का दोहरा नजरिया है। जिन काम अनुभवों की अनुकूल प्रतिक्रियाऐं सामने आयी, उनका सम्बन्ध काम करने के परिवेश और उन कारकों से था, जो संतोष प्रदान करते हैं। अर्थात् कर्मचारी उस परिवेश में काम करने का इच्छुक था। जबकि वे कारक जिनसे प्रतिकूल प्रतिक्रियाऐं सामने आई उनका सम्बन्ध उन प्रयासों से था जो असुविधा से बचाव करते हैं। सारांश यह है कि वे कारक जिनसे अच्छी प्रतिक्रियाऐं मिली, उनका सम्बन्ध व्यक्तित्व उठान (विकास) या मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति से था। ऐसे कारकों को हर्जबर्ग ने 'संतुष्टिदायक' कहा और ऐसे कारक जिनका सम्बन्ध कष्ट से बचाव था, उनको 'असन्तुष्टिदायक' कहा।

15.14.1 संतुष्टिदायक कारक

वास्तव में अभिप्रेरण कारक ही 'संतुष्टिदायक कारक' है, क्योंकि यह किसी काम में प्रेरितकर्ता की भूमिका अदा करते हैं। इनमें पहला कारक है, 'उपलब्धि' जिसका अर्थ है- स्वतंत्र रूप से समस्याओं को हल करके, कार्य को पूरा करके तथा अपने प्रयासों के नतीजे देखकर संतुष्टि प्राप्त करना। दूसरा कारक है, 'मान्यता' जिसका अर्थ है- काम के पूरा होने तथा अन्य व्यक्तित्व उपलब्धियों को सकारात्मक रूप से स्वीकार करना। तीसरा कारक है, 'स्वयं कार्य' जिसका अर्थ है- कार्य की विषय वस्तु, उसमें रूचि, विभिन्नता, चुनौती और उबाऊपन (बोरियत) से मुक्ति। चौथा कारक है, 'उत्तरदायित्व' जिसका अर्थ है- किसी के प्रति जिम्मेदारी और जबावदेही निभाना और यह देखना कि कृत्यों को कब और कैसे निष्पादित होना चाहिये और पांचवा कारक है, 'प्रगति' और उठान अर्थात् उच्च स्तरीय काम को पूरा करने के लिये आगे बढ़ना। उठान और प्रगति की सम्भावना की अनुभूति होना तथा नई सीख या ज्ञानार्जन से वास्तविक संतोष प्राप्त करना, नई बातों को करने के योग्य बनना। ये पांच कारक 'संतुष्टिदायक' हैं।

15.14.2 असंतुष्टिदायक कारक

स्वास्थ्य (विज्ञान) कारकों (हाइजीन फेक्टर्स) को हर्जबर्ग सशक्त 'असंतुष्टिदायक कारक' कहता है। ये भी पांच हैं- कम्पनी नीति और प्रशासन, निरीक्षण, वेतन, काम की स्थितियां (हालात) और अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध। चिकित्सा सम्बन्धी अर्थ में लिये गये शब्द 'हाइजीन फैक्टर्स' से अभिप्राय है निवारक (रोकना) और पर्यावरणात्मक (उपाय)। यहाँ पाँचों कारकों को पर्यावरणात्मक तत्वों के रूप में देखा जाता है। यह उत्प्रेरक कारक नहीं है। इनका प्रभाव कर्मचारी के कार्य सम्बन्धित आचरण पर नहीं पड़ता है।

शिक्षार्थियों को उक्त मनोवैज्ञानिक कारकों को समझाने के लिये पहले यह समझना है कि कर्मचारियों का अपने काम (जॉब) से, काम के पर्यावरण से तथा काम करने के माध्यम कम्पनी या संगठन से एक गहरा रिश्ता है। जब काम की प्रक्रिया आरम्भ होती है तो कर्मचारी के सन्दर्भ में दो बातें सामने आती हैं- संतोष या अंसतोष। हर्जबर्ग के सिद्धान्त इन्हीं दो बातों के ईद-गिर्द घूमते नजर आते हैं।

हर्जबर्ग यह समझाना चाहता है कि एक कर्मचारी अपने काम से घृणा करता है, लेकिन वह क्यों संगठन के साथ रहना चाहता है। दूसरी ओर वह अपने काम से प्रेम करता है और फिर भी क्यों संगठन को छोड़ देता है। कारण यह है कि कर्मचारियों को प्रथक और भिन्न भावनाओं को अलग-अलग कारक प्रभावित करते हैं। कहीं वह स्वास्थ्य कारकों से प्रभावित होता है और कहीं वह अभिप्रेरण (मोटिवेशनल) कारकों से।

दूसरी बात हर्जबर्ग यह बताता है कि असंतुष्टिदायक कारक मानव व्यवहारों (दृष्टिकोणों) में अल्पावधि परिवर्तन लाते हैं, जबकि संतुष्टिदायक कारक दीर्घवर्ती परिवर्तन लाते हैं। इस तरह हर्जबर्ग के अनुसार असंतुष्टिदायक कारकों का सम्बन्ध उस पर्यावरण से होता है, जिसमें कर्मचारी काम करता है। इनके माध्यम से काम संतुष्टि को रोका जा सकता है, लेकिन सकारात्मक काम दृष्टिकोण पैदा करने में इनका बहुत कम प्रभाव पड़ता है। अर्थात् काम का सन्दर्भ काम की प्रकृति और काम की क्षमता में बढ़ोत्तरी इत्यादि। ये कारक व्यक्ति को उच्च स्तरीय कार्यात्मकता के लिये प्रेरित करते हैं।

15.15 अभिप्रेरण-स्वास्थ्य सिद्धान्त

हर्जबर्ग के अनुसार अभिप्रेरण (मोटिवेशन) और स्वास्थ्य (हाइजीन) कारक एक दूसरे से पृथक और भिन्न है और वे आपस में विरोधी और उल्टे नहीं हैं। लेकिन एक-दूसरे का आपस में सीधा सम्बन्ध भी नही हैं। दोनों एकल धुरी वाले हैं। एक का दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ता है। अभिप्रेरण-स्वास्थ्य सिद्धान्त के मुख्य रूप से तीन नियम (सिद्धान्त) हैं:

पहला- वे कारक जो कार्य संतोष देते हैं, उन कारकों से पृथक और भिन्न हैं जो कार्य असंतोष देते हैं। उपलब्धि से वृद्धि होती है और उपलब्धि के लिये काम जरूरी है। स्वास्थ्य कारकों का सम्बन्ध कार्यों से नहीं होता है।

दूसरा- संतोष का उल्टा (निषेध) असंतोष नहीं हैं। संतोष और असंतोष अलग और विशेष भावनाऐं हैं। वे एकल धुरी विशेषताऐं (यूनिपोलर ट्रेट्स) हैं।

तीसरा- अभिप्रेरणकर्ताओं के असंतोष को बनाये रखने पर दीर्घ और टिकाऊ प्रभाव पड़ता है, जबकि स्वास्थ्य कारकों का अंसतोष को रोकने पर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ता। स्वास्थ्य कारकों की भूख बहुत अधिक होती है। यहाँ पूरा संतोष कभी नहीं होता है, इसलिये स्वास्थ्य सुधार की बार-बार आवश्यकता पड़ती है।

15.16 स्वास्थ्य और प्रेरणा के अन्वेषी

प्रेरणा और स्वास्थ्य कारकों को स्पष्ट करने के बाद हर्जबर्ग उन लोगों को जो सगंठनों में काम करते हैं, दो वर्गों में विभाजित करता है और उनको 'स्वास्थ्य' अन्वेषी (हाइजीन सीकर्स) और प्रेरणा अन्वेषी (मोटिवेशन सीकर्स) कहता है।

सफल स्वास्थ्य अन्वेषी का संगठन पर दो प्रकार का प्रभाव पड़ता है- पहला प्रभाव तो यह होगा कि वे संगठन को जैसा है वैसे चलायें, क्योंकि वे बाहरी पुरस्कार से प्रेरित अधिक और आन्तरिक से कम होते हैं। हर्जबर्ग के अनुसार यह अन्वेषी 'बैरक फौजियों' की तरह होते हैं। दूसरे, वे अपना स्वयं का उत्प्रेरक दृष्टिकोण अपने मातहतों में भरने का प्रयास करते हैं, जिससे संगठन में बाहरी पुरस्कार का माहौल तैयार हो सके।

15.17 स्वास्थ्य एवं अभिप्रेरण अन्वेषियों की विशेषताऐं

हर्जबर्ग ने स्वास्थ्य तथा अभिप्रेरण अन्वेषियों की विशेषताओं को सिलसिलेवार स्पष्ट करने का प्रयास किया है। जो इस प्रकार हैं-

स्वास्थ्य अन्वेषी की विशेषताऐं- 1. प्रकृति से प्रेरित, 2. कार्य-सन्दर्भ में दीर्घकालिक और गहरा अंसतोष; यह सन्दर्भ है- वेतन, काम की सुरक्षा, सहयोगी कर्मचारी, 3. स्वास्थ्य कारकों में सुधार को लेकर अति-प्रतिक्रिया व्यक्त करना, 4. संतोष की अल्प अवधि, 5. जब स्वास्थ्य कारकों में सुधार ना हो तो अति-प्रतिक्रिया व्यक्त करना, 6. उपलब्धियों से कम संतोष व्यक्त करना, 7. काम की गुणवत्ता में कम दिलचस्पी लेना, 8. जीवन के सकारात्मक सदगुणों के प्रति भी सनक दिखाना (दोषपूर्ण समझना), 9. अनुभव से लाभ ना उठाना, 10. सांस्कृतिक आवाजों (शोर) के प्रति अति उदारवादी, रट्टू, अतिरूढ़ीवादी और उच्च स्तरीय अधिकारों के काम से भी उच्चस्तरीय काम करने की चाह।

अभिप्रेरण अन्वेषी की विशेषताऐं- 1. काम की प्रकृति से प्रेरित, 2. अपर्याप्त स्वास्थ्य कारकों के लिये अधिक सहनशीलता, 3. स्वास्थ्य कारकों के सुधार के प्रति कम प्रतिक्रिया, 4. यथा शीघ्र, 5. जब स्वास्थ्य कारकों को सुधार की जरूरत हो तब हल्का या साधारण असंतोष, 6. अधिक संतोष की अभिव्यक्ति, 7. जिस कार्य का कर्मचारी निष्पादन करता है उसके प्रति खुशी व्यक्त करने की क्षमता, 8. काम के प्रति सकारात्मक भावनाऐं, 9. अनुभव से लाभ उठाना, 10. विश्वास व्यवस्थाऐं- गम्भीर और संवेदनशील होना, तथा 11. अति उपलब्धि प्राप्त करने वाला हो सकता है।

उपरोक्त सभी विशेषताऐं हर्जबर्ग की मनोवैज्ञानिक सोच का नतीजा है। यह वह समझाना चाहता है कि हर स्थिति में कर्मचारी को काम करने, उपलब्धि हासिल करने तथा संतोष प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। उसके अनुसार किसी संगठन के लोगों को स्वास्थ्य से वंचित करने का भय दिखाकर प्रेरित करना सरल है, लेकिन उपलब्धियों के सन्दर्भ में या लक्ष्य प्राप्ति के समबन्ध में प्रेरित करना कठिन है।

15.18 कार्य समृद्धि की अवधारणा

लोगों को प्रेरित करने के लिये हर्जबर्ग ने एक और अवधारणा प्रस्तुत की है- कार्य समृद्धि (जॉब एनरिचमेन्ट) अवधारणा। शब्द 'कार्य समृद्धि' का अर्थ एक ऐसी तकनीक से है जो प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों में काम के प्रति अधिकतम आन्तरिक प्रेरणा का संचार करती है। इससे कर्मचारी को सच्चा संतोष मिलता है। इसका उद्देश्य है, प्रबन्धन का ऐसा तरीका जिससे अधिकतम उत्पादन और लाभ हो। कार्य समृद्धि अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है कि लोग इस बात से प्रेरित नहीं होते हैं कि प्रबन्धन ने उन्हें पुरस्कारों, अधिकारों या दण्ड के रूप में क्या दिया है और ना वे उस पर्यावरण से प्रभावित और प्रेरित होते हैं, जिसके अर्न्तगत वे काम करते हैं। लोग केवल अपने द्वारा किये गये काम के अनुभव से प्रेरित होते हैं, इसीलिये की काम नीरस ना हो। काम ऐसा हो, जिसको करने में लोगों को गर्व महसूस हो। ऐसा काम समृद्ध होता है।

15.18.1 कार्य समृद्धि अवसर

और अधिक स्पष्ट शब्दों में आप को समझाने के लिये इस कथन को समझना होगा कि कार्य समृद्धि का अर्थ है, कार्यों को पुनर्स्वरूप देने की कला। इसका अर्थ है, उत्पादन दरों के मात्रात्मक परिमापों, गुणवत्ता और कार्यशैली का सावधानी पूर्वक इस्तेमाल होना। कार्य समृद्धि में सुधारों से यह सिद्ध होता है कि कार्यों में परिवर्तन सदा ही उतप्रेरक होता है।

15.18.2 कार्य समृद्ध प्रक्रिया

हर्जबर्ग के सुझावों के अनुसार प्रबन्धकों को अपने कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिये दस कदम उठाने चाहिए। ये हैं-

1. उन कार्यों (जॉब) को चुनो, जहाँ रूझान कमजोर है, स्वास्थ्य (हाइजीन) मंहगा है और अभिप्रेरण कार्य सम्पादन में अन्तर आयेगा;
2. इस विश्वास के साथ कार्यों को हाथ में लो कि वे बदले जा सकते हैं;
3. परिवर्तनों की एक सूची तैयार करो, जिनसे कार्य समृद्धि हो;
4. ऐसे सुझाव जिनका सम्बन्ध स्वास्थ्य से हो और अभिप्रेरण से ना हो, सूची से निकाल दो;
5. ऐसी सूची तैयार करो जिनमें सामान्य बातें हों, जिनमें अधिक उत्तरदायित्व देने की बात हो;
6. ऐसी सूची तैयार करो जिसमें क्षितिजीय भार के लिये सुझाव ना हों;
7. जिनके कार्यों (जॉब) को समृद्ध होना है, ऐसे कर्मचारियों की प्रत्यक्ष भागीदारी से बचो;
8. कार्य समृद्धि की प्रक्रिया में दो समान गुट होः प्रयोगात्मक गुट और नियंत्रक गुट (ग्रुप);
9. प्रयोगात्मक गुट की कार्यक्षमता में कमी के लिये तैयार रहो;
10. जब परिवर्तन होंगे तो निरीक्षकों की चिन्ता बढ़ेगी और उनको क्रोध भी आयेगा, ऐसी स्थिति की अपेक्षा करो।

इन प्रयोगों से निरीक्षकों को उन कार्यों को पहचानने में आसानी होगी, जिनकी पहले उन्होंने अनदेखी कर दी थी। वे कर्मचारियों के कार्यों का पुनर्रीक्षण कर सकेगें और फिर उनको प्रशिक्षण देगें।

अभ्यास प्रश्न-

1. क्रिस अर्गिरिस लेखक है?
   क. मोटीवेशन एण्ड पर्सनैलिटी का
   ख. टी-ग्रुप थ्योरी एण्ड लैबोरेट्री मेथड का
   ग. आर्गनाइजेशनल बीहैवियर एण्ड दि प्रैक्टिस आफ मैनेजमेंट का
   घ. मैनेजमेन्ट एण्ड आर्गानाइजेशनल डेवलपमेंट का
2. कौन सी पुस्तक अर्गिरिस ने नहीं लिखी है?
   क. मैनेजमेंट एण्ड आर्गानाइजेशनल डेवलपमेंट ख. पर्सनैलिटी एण्ड आर्गानाइजेशन
   ग. नॉलिज फॉर एक्शन घ. क्रिसअर्गिरिस:थ्योरीज ऑफ ऐक्शन
3. हर्जबर्ग के प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम है-
   क. वन मोर टाइम, हाउ डू यू मोटिवेट एम्पलाइज
   ख. आर्गानाइजेशनल बिहैवियर: फ्रोम थ्योरी टू प्रैक्टिस
   ग. आर्गानाइजेशनल मैन: रेशनल एण्ड सेल्फ एक्चुआलाइजिंग
   घ. टूवर्ड ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन
4. हर्जबर्ग की प्रबन्धन पर लिखी गई कौन सी पुस्तक बीसवीं सदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तकों में से एक है?
   क. दि मैनेजमेन्ट चुआइस ख. दि मोटीवेशन टू वर्क
   ग. हर्जबर्ग एण्ड मोटिवेशन घ. वर्क एण्ड दि नेचर ऑफ मैन
5. जन-वेदना को सर्वप्रथम किसने महसूस किया?
   क. साम्यवादियों ने ख. अराजकतावादियों ने
   ग. नव-वामपंथियों ने घ. उदारवादियों ने
6. अर्गिरिस की अध्ययन पद्धति थी?

क. व्यवहारवादी ख. पर्यवेक्षणात्मक
ग. ऐतिहासिक घ. विश्लेषणात्मक

7. हर्जबर्ग की अध्ययन पद्धति थी?
क. अनुभावात्मक ख. अन्तर-नुशासनीय
ग. मनः विश्लेषणात्मक घ. निगमनात्मक

8. हर्जबर्ग प्रतिपादक हैं-
क. द्वि-काकर सिद्धान्त का ख. सप्तांग सिद्धान्त का
ग. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का घ. सोलजरिंग सिद्धान्त का

9. स्वास्थ्य (विज्ञान) का प्रशासन में सम्बन्ध है-
क. कर्मचारियों के स्वास्थ्य से ख. प्रबन्धकों के स्वास्थ्य से
ग. संगठन के आन्तरिक टकराव से घ. संगठन के पर्यावरण से

10. हर्जबर्ग के अनुसार स्वास्थ्य एवं अभिप्रेरण अन्वेषी की कितनी विशेषताएँ हैं?
क. दस ख. आठ ग. पांच घ. बारह

15.19 सारांश

इस इकाई के प्रथम भाग में अर्गिरिस के प्रशासनिक विचारों का अध्ययन करने के बाद आप इस नतीजों पर पहुँचे होगे कि-

1. अर्गिरिस संगठनात्मक विकास का महत्वपूर्ण लेखक है।
2. उसने संगठनात्मक व्यवहार को जानने के लिये टी-समूह तकनीक का विचार रखा जो क्रान्तिकारी खोज है।
3. उसने औपचारिक संगठन पर प्रकाश डालकर व्यक्ति और संगठन के विकास की तकनीकें सुझाई।
4. उसने वैयक्तिक आचरण का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके मनोवैज्ञानिक ऊर्जा, व्यक्तित्व की आवश्यकताओं और योग्यताओं को एक-दूसरे के साथ जोड़ा।
5. उसने संगठनात्मक विकास से अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य पर जोर दिया और ऐसे सामर्थ्य के सुधार के लिये सुझाव दिये।
6. संगठनात्मक विकास के लिये उसने एक प्रकार की शिक्षा पर बल दिया और उसको टी-समूह या संवेदनशीलता प्रशिक्षण तकनीक का नाम दिया।
7. उसने आत्म-यथार्थवाद के लिये एक उपयुक्त माहौल तैयार करने पर जोर दिया।

हर्जबर्ग को अब्राहम मैस्लो, डगलस मेक्ग्रेगर और क्रिस अर्गिरिस जैसे प्रशासनिक विचारकों के समान प्रशासनिक चिन्तन के क्षेत्र में एक महान लेखक माना जाता है। उसने काम के समय के अनुभव और मानसिक स्वास्थ्य के सम्बन्धों का विश्लेषण किया है। उसका प्रमुख योगदान इस प्रकार है -

1. फ्रेडरिक हर्जबर्ग 'काम समृद्धि अवधारणा' और 'स्वास्थ्य सिद्धान्त' का अगुआ है। अभिप्रेरण-स्वास्थ्य और काम समृद्धि सिद्धान्त उसकी महान मनोवैज्ञानिक सोच है;
2. हर्जबर्ग अपने शोधों से इस नतीजे पर पहुँचा कि दो प्रकार की अभिवृत्तियां होती हैं- संतोषदायक और अंसतोषदायक। उसने संतोषदायक को अभिप्रेरण (मोटिवेशनल) कारक और असंतोषदायक को स्वास्थ्य कारक कहा।
3. हर्जबर्ग ने अभिप्रेरण कारक और स्वास्थ्य कारक को ही 'द्वि-कारक सिद्धान्त' कहा।

4. संगठनों में काम करने वाले लोगों को हर्जबर्ग ने दो गुटों में विभाजित किया है- स्वास्थ्य अन्वेषी और प्रेरणा अन्वेषी। इनका संगठन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
5. हर्जबर्ग ने 'काम समृद्धि' की भी अवधारणा प्रस्तुत की। यह एक तकनीक है, जिसके माध्यम से वैयक्तिक कर्मचारियों में आन्तरिक प्रेरणा का संचार करके काम के प्रति उनको संतोष दिया जा सकता है।
6. हर्जबर्ग के द्वि-कारक सिद्धान्त की पद्धति और निष्कर्ष के आधार पर आलोचना की गई है।
7. उसके 'काम समृद्धि सिद्धान्त' को प्रशासन के क्षेत्र में बहुत मान्यता मिली है। उसकी भूमिका को व्यवहारिक रूप में स्वीकार किया गया है।

15.20 शब्दावली

आत्म-यर्थाथवाद- यह मनोवैज्ञानिक अवधारणा है जो व्यक्ति को यह सिखाती है कि यथार्थ स्वयं में केवल व्यक्ति है।

मैटरिक्स संगठन- पंक्तिबद्ध/किसी भवन के पंक्तिद्ध स्तम्भ/प्रशासन में इसका अर्थ है संगठन में व्यक्तियों की समान शक्तियां और उत्तरदायित्व।

काम समृद्धि- यह एक तकनीक है, जिसका प्रयोग प्रबन्धकों द्वारा कर्मचारियों की काम के प्रति आन्तरिक प्रेरणा को अधिकतम किया जाता है।

स्वास्थ्य कारक या हाईजीन फेक्टर- वास्तव में इसका सम्बन्ध कर्मचारियों के पर्यावरण से है ना कि उनके स्वास्थ्य से। हाईजीन एक विज्ञान है जो स्वास्थ्य पर्यावरण की तकनीक समझाता है।

15.21 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ, **2.** घ, **3.** क, **4.** घ, **5.** ग, **6.** घ, **7.** ग, **8.** क, **9.** घ, **10.** क

15.22 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्मिथ, एम0 के0, क्रिस अर्गिरिस: थ्योरीज ऑफ ऐक्शन।
2. राधिका वारियर, क्रिस अर्गिरिस: ऐ प्रोफायल।
3. अर्गिरिस, क्रिस, पर्सनेलिटि एण्ड आर्गानाइजेशन।
4. रविन्द्र प्रसाद डी0, ऐडमिनिस्ट्रेटिव थिंक्र्स (सम्पादन)।
5. प्रसाद, सत्यनारायण, प्रशासनिक चिन्तक।
6. हर्जबर्ग, फ्रेडरिक, वन मोर टाइम: डू यू मोटिवेट इम्पालाइज।

15.23 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशासनिक चिंतक, डॉ0 अशोक कुमार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।
2. प्रशासनिक विचारक, आर0 पी0 जोशी एवं अंजु पारीक, रावत पब्लिकेशन।

15.24 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अर्गिरिस की दृष्टि में व्यक्ति और संगठन में क्या सम्बन्ध है?
2. औपचारिक संगठन का क्या अर्थ है? व्यक्ति पर इसका प्रभाव बतायें।
3. अर्गिरिस द्वारा प्रतिपादित परिपक्वता-अपरिवक्वता सिद्धान्त क्या है?

4. अर्गिरिस का अन्तर्वैयक्तिक सामर्थ्य सिद्धान्त क्या है?
5. टी-ग्रुप की अवधारणा क्या है?
6. हर्जबर्ग के द्वि-कारक सिद्धान्त को समझाइये।
7. हर्जबर्ग के द्वारा प्रतिपादित स्वास्थ्य अवधारणा को समझाइये।

इकाई- 16 रेन्सिस लिकर्ट

इकाई की संरचना

16.0 प्रस्तावना
16.1 उद्देश्य
16.2 रेन्सिस लिकर्ट (सन् 1903 से 1981)- जीवन परिचय
16.3 लिकर्ट के विचार: पर्यवेक्षकों की शैली
16.4 सहायक सम्बन्ध
16.5 प्रबन्ध की प्रणालियां
    16.5.1 शोषणात्मक-सत्तावादी प्रणाली
    16.5.2 परोपकारी-सत्तावादी प्रणाली
    16.5.3 परामर्शात्मक प्रणाली
    16.5.4 सहभागी प्रणाली
16.6 लिंकिंग पिन प्रतिमान
16.7 संघर्ष का प्रबन्ध
16.8 संगठनात्मक प्रभावशीलता
16.9 संगठन का संशोधित सिद्धान्त
16.10 आलोचना
16.11 मूल्यांकन
16.12 सारांश
16.13 शब्दावली
16.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.17 निबन्धात्मक प्रश्न

16.0 प्रस्तावना

अभिप्रेरणा को 'प्रबन्ध का हृदय' मानने वाले रेन्सिस लिकर्ट उन प्रबन्धकीय विचारकों में से एक हैं, जिसके मौलिक विचारों ने प्रबन्धन पर काफी प्रभाव डाला है। लिकर्ट ने संगठन, नेतृत्व या पर्यवेक्षण, प्रबन्ध व्यवस्था तथा सहभागी प्रबन्ध इत्यादि के सम्बन्ध में जो कुछ भी लिखा, उसे अपने जीवन में सहकर्मियों तथा अधीनस्थों के मध्य प्रत्यक्षतः प्रस्तुत भी किया।(कटारियाः 322) मूलतः लिकर्ट प्रबन्धकीय विचारक होने के साथ-साथ एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक भी थे। संगठनात्मक अनुसंधान के पिकासो (The Picasso of Organizational Research) के उपनाम से प्रसिद्ध रेन्सिस लिकर्ट को वारेन जी0 बेनिस जो एक संशोधनवादी (Revisionist) हैं, ने सामाजिक मनोवैज्ञानिक बताया है।(कटारियाः322)

लिकर्ट ने अपने जीवन में अभियांत्रिकी, सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान, नीतिशास्त्र एवं सांख्यिकी अवधारणा के प्रति एक जोशीला रूख अपनाया एवं जीवनपर्यन्त इन विषयों के प्रशंसक बने रहे। उनके मन में हमेशा यह जिज्ञासा बनी रहती थी कि कैसे कोई कार्य होता है, कैसे उस कार्य को उसके संगठन के आन्तरिक संरचना एवं क्षमता के

अनुरूप व्यवस्थित किया जाये, कैसे उस कार्य का मापन हो ताकि उसे व्यावहारिक एवं परिमाणात्मक रूप में विभिन्न सामाजिक समस्याओं के समाधान के रूप एक उत्तर माना जाए। लिकर्ट ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान विषय में अपने शोध शीर्षक ''A Technique for the Measurement of Attitudes'' पर कार्य करते हुए अभिवृत्ति मापन के लिए फार्मूला सुझाया, जो पूरे विश्व में 'लिकर्ट स्केल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् 1946 में लिकर्ट ने मिशिगन विश्वविद्यालय में सर्वेक्षण अनुसंधान केन्द्र (The University of Michigan Institute for Social Research) जो कि विश्व का सबसे बड़ा सामाजिक विज्ञान सर्वेक्षण एवं शोध संगठन (Academic Social Science survey & Research Organisation) की अकादमी माना जाता है, की स्थापना की। ''लिकर्ट और उनके सहयोगियों (Angus Campbell, Dorwin Cartwright, Daniel Katz, Robert L. Kahn, Stanley Seashore & Floyd Mann) ने अमेरिकी व्यवसाय और सरकार में प्रबन्ध व्यवहार पर व्यापक एवं गहन शोध किये। लगभग 40 शोधकर्ताओं के समूह द्वारा 25 वर्ष से अधिक समय तक और 15 मिलियन डॉलर के व्यय पर किए गये शोध कार्य प्रसिद्ध 'हाथोर्न प्रयोगों' के समकक्ष थे।''(सेशाचलम, प्रसाद, प्रसाद व सत्यनारायण पृ0 219)

लिकर्ट के इस 'सामाजिक अनुसंधान संस्थान' ने सर्वप्रथम नेतृत्व आधारित समस्याओं पर अनुभवात्मक (Empirical) अध्ययन किया, जिन्हें मिशिगन अध्ययन भी कहा जाता है। उत्पादन केन्द्रित तथा कर्मचारी केन्द्रित नेतृत्व के इन अध्ययनों के साथ-साथ सन् 1961 में नेतृत्व या प्रबन्ध की चार व्यवस्थाएँ लिकर्ट के अध्ययनों से सामने आ सकी।

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद लिकर्ट के इस संस्थान ने सन् 1947 में नौ सेना अनुसंधान कार्यालय के आग्रह पर सहभागी प्रबन्ध पर भी अध्ययन कार्य किया। लगभग 10 वर्षों तक संचालित हुआ यह अध्ययन उत्पादन (Productivity), पर्यवेक्षण (Supervision) एवं कर्मचारी नैतिकता (employee Morale) पर केन्द्रित था। (कटारियाः 324)

16.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रेन्सिस लिकर्ट के जीवन एवं कार्यों को समझ सकेंगे।
- रेन्सिस लिकर्ट के विचार चिन्तन को समझ सकेंगे।
- रेन्सिस लिकर्ट के विचारों का मूल्याकन कर सकेंगे।
- रेन्सिस लिकर्ट के द्वारा लोक प्रशासन एवं प्रबन्ध क्षेत्र में योगदान का संज्ञान ले सकेंगे।

16.2 रेन्सिस लिकर्ट(सन् 1903 से 1981)- जीवन परिचय

1. सन् 1903- रेन्सिस लिकर्ट का जन्म अमेरिका के क्योनिग प्रान्त की राजधानी चेचने में हुआ था।
2. सन् 1922- रेन्सिस लिकर्ट ने मिशिगन विश्वविद्यालय में सिविल इन्जीनियरिंग की पढाई शुरू की और बाद में उन्होंने समाजशास्त्र विषय में अपने को केन्द्रित कर लिया।
3. सन् 1926- समाजशास्त्र विषय में स्नातक की उपाधि प्राप्त की।
4. सन् 1932- कोलम्बिया विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग में सामाजिक मनोविज्ञान विषय के क्षेत्र में Ph.D. किया। शोध विषय का शीर्षक था ''A Technique for the Measurment of Attitudes.''
5. सन् 1938- विश्व के समक्ष लिकर्ट स्केल का प्रारूप सामने आया।

6. सन् 1939- अमेरिका के कृषि विभाग के प्रोग्राम सर्वेक्षक उपविभाग में निदेशक पद पर नियुक्त हुये।
7. सन् 1941- लिकर्ट के उपविभाग का क्षेत्र बढाकर उसे 'General Sample Survey Organization' का रूप दिया गया।
8. सन् 1946- वाशिंगटन से मिशिगन विश्वविद्यालय आये और वहाँ पर 'Survey Research Centre' की स्थापना की।
9. सन् 1953- अमेरिकन स्टेटिस्किल एसोशिएसन के उप-राष्ट्रपति बने।
10. सन् 1955- अमेरिकन स्टेटिस्किल एसोशिएसन (ASA) के प्रेसिडेन्ट बने।
11. सन् 1961- 'New Patterns of Management' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया।
12. सन् 1967- 'The Human organization: Its Management & Value' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया।
13. सन् 1976- 'New Ways of Managing conflict' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया।
14. सन् 1970- मिशिगन विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त हुए एवं 'रेन्सिस लिकर्ट एशोसियेट्स' (Rensis Likert Associates) की स्थापना की।

16.3 लिकर्ट के मुख्य विचार: पर्यवेक्षको की शैली

लिकर्ट का लक्ष्य एक बेहतर विश्व का निर्माण करना था। उनकी दीक्षा (initiative) उद्यमिता (Enterprise) एवं असीमित कार्यक्षमता के पीछे एक ऐसा युवा विश्वास था कि अगर मानव व्यवहार के विज्ञान को विकसित किया जाये तो बेहतर विश्व निर्माण के लक्ष्य के प्रति एक अनोखी एवं जीवन्त/सजीव योगदान होगा। उनका मुख्य चिंतन मानवीय विकास, मनोबल, अभिप्रेरणा, नेतृत्व, अभिवृत्ति, सहभागिता तथा उच्च उत्पाद सहित कार्य से संतुष्टि से सम्बन्धित है। मिशिगन अध्ययनों के निष्कर्षों को उन्होंने अपनी प्रमुख कृति ''The New Patterns of Management'' में प्रस्तुत किया, जिसका प्रकाशन सन् 1961 में हुआ। यह अध्ययन समकालीन ओहियो विश्वविद्यालय अध्ययनों, 1945 (प्लैशमैन, हैरिस तथा वुर्त ने जो नेतृत्व की दो शैलियां, यथा- निर्देशात्मक एवं सहभागी शैली बताई थी) के परिणामों से भी मिलते-जुलते थे। वस्तुतः लिकर्ट ने यह अध्ययन सर्वप्रथम प्रूडेन्शियल बीमा कम्पनी (Prudential Insurance Campany) में शुरू कर दिए थे, जिसमें कम उत्पादन देने वाले तथा अधिक उत्पादन देने वाले 12 जोड़े चयनित किए थे। इनमें 24 अनुभाग स्तर के पर्यवेक्षक तथा 419 लिपिक स्तर के कार्मिक थे। प्रत्येक पर्यवेक्षक एवं उसके अधीनस्थों के कार्यों, कार्य-दशाओं, पद्धतियों तथा अन्य चरों (Variables) को ध्यान में रखते हुए अध्ययन किए गये। लिकर्ट ने पाया कि अधिक उत्पादन देने वाले पर्यवेक्षक मानव सम्बन्ध विचारधारा से मेल खाते हैं, जबकि कम उत्पादन देने वाले यांत्रिक विचारधारा के समर्थक हैं। इन्हीं अध्ययनों को आगे बढ़ाते हुये अस्पतालों, उद्योगों, सरकारी कार्यालयों तथा अन्य संगठनों में भी परीक्षण दिया गया। (कटारियाः 331)

लिकर्ट तथा उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन के दौरान इस बात पर ध्यान दिया कि आखिर किन कारणों से कुछ प्रबन्धक बहुत अच्छे परिणाम देते हैं, जबकि कुछ अन्य प्रबन्धक ऐसा करने में असफल रहते हैं। सफल प्रबन्धक ऐसा क्या करते हैं, जोकि सामान्य प्रबन्धक नहीं कर पाते? प्रबन्धकों की दक्षता को किस प्रकार मापा जा सकता है? किन कसौटियों पर प्रबन्धकों के परिणामों को मापा जा सकता है? क्यों कुछ प्रबन्धक अन्यों से अधिक दक्षतापूर्ण तरीके से कार्य करने में सफल हो पाते हैं। क्यों कुछ प्रबन्धकों के अधीनस्थ कार्य पर संतुष्ट रहते हैं और कुछ के साथ असन्तुष्ट आदि आदि। (नरेन्द्र कुमार थोरीः 196) इन सभी प्रश्नों के सकारात्मक जवाब ढूंढने के अपने प्रयासों में लिकर्ट दो प्रकार के पर्यवेक्षकों की पहचान करते हैं-

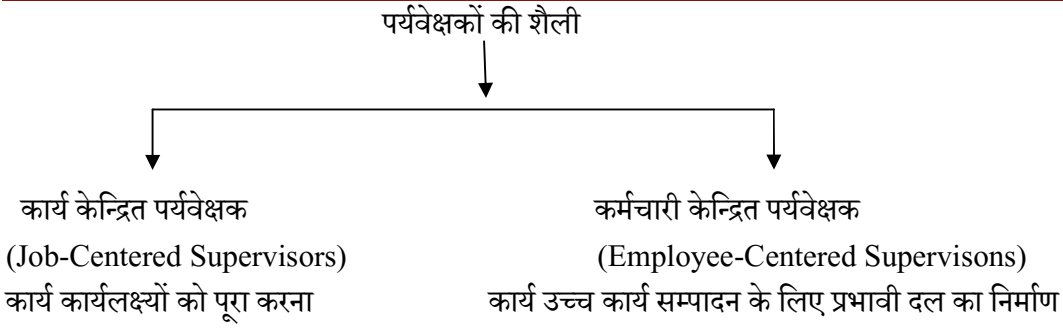

पर्यवेक्षणीय शैलियां एवं उनकी विशेषताएँ

कार्य केन्द्रित पर्यवेक्षक की विशषताएँ	कार्मिक केन्द्रित पर्यवेक्षक की विशेषताएँ
1. कार्य करवाने हेतु भारी दबाव देने वाले।	1.अधीनस्थों पर कम दबाव देने वाले।
2. अधीनस्थों पर कम विश्वासकर्ता।	2. अधीनस्थों पर विश्वास करने वाला तथा उनका विश्वास पाने वाला।
3. नजदीकी तथा व्यापक पर्यवेक्षणकर्ता।	3. सामान्य पर्यवेक्षणकर्ता।
4. अधीनस्थों को कम स्वतंत्रता देने वाला।	4. अधीनस्थों को अपने ढंग से कार्य करने की छूट देने वाला।
5. निर्णयन में अधीनस्थों की भूमिका नहीं स्वीकारने वाला।	5. निर्णयन में अधीनस्थों की अधिकाधिक भूमिका सुनिश्चित करने वाला।
6. गलती होने पर दण्ड देने तथा आलोचना करने वाला।	6. गलती या समस्या होने पर अधीनस्थों का सहायताकर्ता।
7. 'कार्य' पर सर्वाधिक ध्यान देने वाला।	7. 'उत्तरदायित्व' पर अधिक ध्यान देने वाला।

(स्रो- कटारियाः पृ0 335)

कार्य-केन्द्रित और कर्मचारी-केन्द्रित पर्यवेक्षकों में से अधिक सफल कौन होते हैं? ऐसा माना जाता है कि कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षक जो कि अपने अधीनस्थों के प्रति मानवीय होते हैं, उच्च सम्पादन (High Performance) दर्शाते हैं। इसके विपरीत निम्न कार्य सम्पादन वाले पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थों के प्रति काफी कड़े होते हैं। लिकर्ट और उनके सहयोगियों ने इस बात की सच्चाई का पता लगाने के लिए कुछ अध्ययन किये। अपने अध्ययनों में उन्होंने उच्च कार्य सम्पादन करने वाले पर्यवेक्षकों को कम उत्पादन करने वाली इकाईयों में लगाया और निम्न कार्य सम्पादन वाले पर्यवेक्षकों को अधिक उत्पादन करने वाली इकाईयों में लगाया। अध्ययन के नतीजे में पाया गया कि कम उत्पादन करने वाली इकाईयां भी उच्च कार्य सम्पादन करने वाले पर्यवेक्षकों के कार्य करने से अपना उत्पादन बढाने में सफल हो गई। इसके विपरीत अधिक उत्पादन करने वाली इकाईयों का निम्न कार्य सम्पादन वाले पर्यवेक्षकों के कारण उत्पादन गिर गया। स्पष्ट है कि उच्च कार्य सम्पादन वाले पर्यवेक्षक अपने अधीनस्थों के प्रति मानवीय होते हैं। लिकर्ट का यह भी मानना था कि भारी दबाव के प्रयोग से थोड़े समय के लिए तो अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं, पर धीरे-धीरे यह अदृश्य हो जाता है। (नरेन्द्र कुमार थोरीः पृ0 198)

लिकर्ट मानते हैं कि पर्यवेक्षक से कर्मचारी की उत्पादकता, संतुष्टि, अभिप्रेरणा आदि प्रभावित होती है। यदि कर्मचारी को अच्छा पर्यवेक्षण नहीं मिलता है तो वह कभी संतुष्ट नहीं रहता और प्रबन्धक द्वारा चाही गई

उत्पादकता देने में असमर्थ रहता है। दूसरी ओर अच्छे पर्यवेक्षण से वह संतुष्ट होने के साथ अति अधिक उत्पादन करने में भी समर्थ होता है। इसलिए लिकर्ट कहते हैं कि ''यदि कोई पर्यवेक्षक अपने कर्मचारियों को अभिप्रेरित करना चाहता है तो उसे कार्य केन्द्रित पर्यवेक्षक ना होकर कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षक होना चाहिये। कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षक ना होकर केवल कर्मचारियों को अपने वर्तमान कार्य को श्रेष्ठ ढंग से करने को प्रशिक्षित करते हैं, अपितु आगामी उच्च कार्य को करने के लिए भी प्रशिक्षित करते हैं।''

16.4 सहायक सम्बन्ध

लिकर्ट ने अपने उच्च कार्य सम्पादन करने वाले पर्यवेक्षकों के मूल्यांकन के आधार पर सहायक सम्बन्धों के सिद्धान्त का प्रतिपादन संगठित अवधारणा के रूप में किया है। वे कहते हैं कि "संगठन का नेतृत्व और अन्य प्रक्रियाएँ ऐसी होनी चाहिये कि वह संगठन के सभी परस्पर क्रियाओं और सम्बन्धों में अधिक से अधिक सम्भावना विकसित करें। प्रत्येक सदस्य अपनी पृष्ठभूमि, मूल्य और आकांक्षाओं की दृष्टि से अनुभव को एक सहायक आधार की तरह देखेगा और अपने व्यक्तिगत मूल्य और महत्व का निर्माण कर उसे कायम रखेगा।
(जोशी एवं पारीकः पृ0 229)

लिकर्ट ने यह भी बताया कि एक पारस्परिक प्रभाववाली व्यवस्था संगठनों के विभिन्न स्तरों में कौशल, साधन, और प्रेरणा को उच्चतम सीमा तक बढाती है। (प्रसाद, प्रसाद व सत्यनारायणः पृ0 181-183), लिकर्ट के अनुसार "एक आदर्श पारस्परिक प्रभाव व्यवस्था पर कार्य करने वाला संगठन निम्नलिखित में से कुछ विशेषताओं को उजागर करेगा (लिकर्टः पृ0 121-183)

1. प्रत्येक व्यक्ति संगठनों में अपने मूल्य आवश्यकताओं और लक्ष्यों को समग्रता से लायेगा।
2. संगठन का प्रत्येक सदस्य संगठन के उद्देश्यों के साथ पहचाना जायेगा एवं उन उद्देश्यों को पूरा करना उसकी प्रथम आवश्यकता मानी जायेगी।
3. उच्च कार्यपालन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्वयं सदस्यों पर ही दबाव पड़ेगा।
4. संगठन के निर्णय और क्रियाओं पर संगठन का प्रत्येक सदस्य अपना प्रभाव डालने में सक्षम होगा।
5. संगठन के प्रत्येक सदस्य को सहयोगी प्रेरणा, संचार और निर्णय-प्रक्रिया, अपने प्रभाव का प्रयोग करने में, अपनी समस्याओं को सुलझाने में एवं संगठन की कुल कार्य क्षमता बढ़ाने में मदद करेंगी।

इस सबके बावजूद इस निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है कि लिकर्ट द्वारा दी गई इस प्रकार की काल्पनिक पारस्परिक क्रिया-प्रभाव व्यवस्था से प्रबन्धक एवं अधिनस्थों के बीच विश्वास एवं भरोसे की स्थिति उत्पन्न हो सकेगी। इसके अतिरिक्त संगठन का प्रत्येक सदस्य संगठन के निर्णयों और क्रियाओं में अपना योगदान दे सकेगा, यह जरूरी नहीं है।

16.5 प्रबन्ध की प्रणालियां

लिकर्ट ने प्रबन्ध नेतृत्व के क्षेत्र, खासकर निर्णय-निर्माण को लेकर तथा निर्णय-निर्माण सम्बन्धी सहभागिता के स्तर को ध्यान में रखते हुये सात विभिन्न प्रकार के रूपों को चिन्हित किया है, जिनमें 0, 1, 2, 3, 4 तथा 5 प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्थाऐं सम्मिलित हैं। लेकिन व्यवहार में एवं मुख्य रूप से 1 से 4 तक की प्रबन्ध व्यवस्थाओं की ही चर्चा की जाती है।

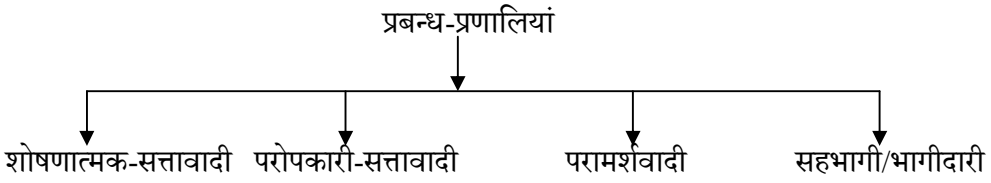

लिकर्ट का कहना है कि ''प्रबन्ध की यह व्यवस्थाएँ या शैलियां विभिन्न प्रकार के संगठनों के अध्ययन के पश्चात सामने आयी हैं। वर्तमान में प्रवर्तित प्रबन्ध व्यवस्थाओं में '0' अर्थात शून्य नामक कोई व्यवस्था या संरचना मिलती ही नहीं है। वैसे यह व्यवस्था मूलतः सामाजिक विकास प्रतिमान पर आधारित होती है।'' (कटारियाः पृ0 325)

16.5.1 शोषणात्मक-सत्तावादी (Exploitive-Authoritative) प्रणाली

इस प्रणाली की महत्वपूर्ण विशेषताऐं निम्न हैं-

1. प्रबन्ध अपने कर्मचारियों को अविश्वास के कारण कभी भी निणर्य-निर्माण में शामिल नहीं करता है।
2. लक्ष्य-निर्धारण एवं निर्णय से सम्बन्धित समस्त कार्य सिर्फ उच्च स्तर पर ही लिये जाते हैं। केवल सूचना अधीनस्थ को भेज दी जाती है।
3. अधीनस्थ भारी दबाव, डर, दण्ड आदि भय-युक्त पर्यावरण में कार्य करते हैं। शायद ही कभी उन्हें पुरस्कृत करने की बात होती है।
4. प्रबन्ध एवं कर्मचारियों के बीच अन्त:क्रिया ना के बराबर होती है।
5. इस प्रणाली में केन्द्रीकृत नियन्त्रण का दबदबा है।
6. इस प्रणाली में सिर्फ सूचना देने भर का औपचारिक संप्रेषण होता है।
7. सामान्यतया इस प्रकार की प्रबन्ध व्यवस्था में अनौपचारिक संगठन भी विकसित हो जाते हैं जो अपने औपचारिक संगठन के लक्ष्यों का विरोध करते हैं।

इस प्रकार शोषणात्मक-सत्तावादी प्रणाली में प्रबन्ध एवं कर्मचारियों के बीच के सम्बन्धों को एक तानाशाही प्रवृत्ति का रूप दिया जाता है।

16.5.2 परोपकारी-सत्तावादी(Benovolent-Authoritative) प्रणाली

शोषणात्मक-सत्तावादी प्रणाली की तुलना में परोपकारी-सत्तावादी प्रणाली अधिक उदार प्रतीत होती है। इनकी विशेषताऐं निम्नवत हैं-

1. परोपकारी प्रणाली व्यवस्था में ''मालिक-नौकर'' जैसी प्रकृति का नेतृत्व पाया जाता है। यानि की प्रबन्ध एवं कर्मचारियों के बीच सीमित मात्रा में विश्वास और भरोसा रहता है।
2. इस प्रणाली में अभिप्रेरणा का स्वरूप पुरस्कार और दण्ड दोनों से जुड़ा रहता है।
3. इस प्रणाली में सीमित संचार तथा कुछ समूह भावना भी पायी पाती है। उच्चाधिकारी विनम्र भाव से एवं अधीनस्थ भयग्रस्त भाव से संवाद करते हैं।
4. इस प्रणाली में प्रबन्ध अधीनस्थों में विश्वास व्यक्त करते हैं, किन्तु अधिसंख्य निर्णय-निर्माण एवं क्रियान्वयन उच्च स्तर पर होती है। एक सीमित मात्रा में ही अधीनस्थ निर्णय एवं क्रियान्वयन कर सकते हैं।
5. इस प्रणाली में अनौपचारिक संगठन का उद्-भव तो होता है, पर वे हमेशा औपचारिक संगठन के लक्ष्यों का विरोध करें, यह आवश्यक नहीं।

16.5.3 परामर्शात्मक (Consultative) प्रणाली

इनकी विशेषताऐं निम्नवत हैं-

1. इस प्रणाली में नेतृत्वकर्ता अधीनस्थों में काफी सीमा तक विश्वास तो रखता है, किन्तु यह विश्वास शत-प्रतिशत (पूर्ण) नहीं होता है।
2. महत्वपूर्ण एवं आधारभूत निर्णय प्रबन्धकों द्वारा लिए जाते हैं तथा पूरक या आवश्यकतानुरूप निर्णय लेने के लिये अधीनस्थ को छूट होती है।
3. इस प्रणाली में संचार क्षैतिजिक (Horizontal) तथा ऊर्ध्वाकार (Vertical) दोनों होता है।
4. इस प्रणाली में अधीनस्थ पुरस्कृत अधिक होते हैं और दण्डित होने का भय कम होता है।
5. इस प्रणाली में प्रबन्ध एवं अधीनस्थ के बीच आत्मविश्वास से युक्त एवं पारस्परिक भरोसे के आधार पर अन्त:क्रियाएँ होती हैं।
6. इस प्रणाली में उत्तरदायित्व को स्थापित करते हुए नियन्त्रण के विभिन्न आयामों का प्रत्यायोजन निचले स्तर तक किया जाता है।
7. इस प्रणाली में अनौपचारिक संगठन का निर्माण कभी औपचारिक संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए होता है तो कभी आंशिक प्रतिरोध के लिए।

इस प्रकार यह प्रणाली पहले की दोनों प्रणाली से बेहतर है।

16.5.4 सहभागी (Participative) प्रणाली

लिकर्ट ने सहभागी प्रणाली को प्रबन्ध एवं अधीनस्थों के बीच समस्याओं के एक समाधान के रूप में देखा तथा इस प्रणाली को श्रेष्ठतम भी बताया। इसके मुख्य विशेषताऐं निम्न हैं-

1. इस प्रणाली में ''मालिक-नौकर'' प्रवृत्ति ना होकर मित्रवत् प्रवृत्ति पायी जाती है।
2. प्रबन्धक एवं अधीनस्थों के बीच प्रचुर मात्रा में आस्था और विश्वास प्रस्फुटित होते हैं।
3. इस प्रणाली में अभिप्रेरणा के प्रकार हैं- सहभागिता, आर्थिक पुरस्कार, सामुहिक लक्ष्य-निर्धारण, विधियों में सुधार हेतु सभी की भागीदारी आदि।
4. इसमें निर्णयन सभी स्तरों पर सहभागी एवं एकीकृत स्वरूप में होता है।
5. सहभागी प्रबन्ध व्यवस्था में औपचारिक एवं अनौपचारिक संगठन का रूप एक जैसा हो जाता है।
6. ऐसी व्यवस्था में पर्याप्त संचार ऊर्ध्वगामी (नीचे से उपर), अधोगामी (उपर से नीचे) तथा समस्तरीय (क्षैतिज) सभी प्रकार के पाये जाते हैं।

प्रबन्ध व्यवस्था की उपर्युक्त चारों व्यवस्थाओं को वर्णित करते हुए लिकर्ट का मानना है कि उपर्युक्त चारों व्यवस्थाएँ मुख्यतः दो कारकों पर आधारित है-

पहला- सत्ता या नियन्त्रण का प्रकार और दूसरा- परिचालन व्यवस्थाऐं तथा अभिप्रेरणात्मक शक्तियां।

लिकर्ट का मानना है कि प्रबन्ध व्यवस्था-1 शास्त्रीय संगठनों का द्योतक है तथा प्रबन्ध-व्यवस्था- 4 एक आदर्श संगठन की परिचायक है। प्रबन्ध व्यवस्थाएँ 2 एवं 3 संक्रमणकालीन (Transitional) मानी गयी हैं। लिकर्ट के मतानुसार प्रबन्ध-व्यवस्था 4 को एक आदर्श प्रतिमान (Ideal Model) माना जा सकता है। अच्छे एवं श्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्त करने के उद्देश्य तभी हासिल हो सकते हैं, जब हम प्रथम प्रणाली से चतुर्थ प्रणाली की ओर बढने का प्रयास करें। लिकर्ट का मानना है कि जो संगठन चतुर्थ प्रणाली के निकट होगा वह उतना ही उच्च उत्पादन कर लक्ष्य हासिल करेगा। वही पर जो संगठन प्रथम प्रणाली के निकट होगा वह उतना ही निम्न उत्पादन हासिल करेगा।

लिकर्ट ने अपनी प्रणाली 1- 4 को निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया है। (हर्सी, ब्लेनकार्ड तथा जॉनसनः पृ0 112)

संगठनात्मक चर Organization Variables	प्रणाली -1 System- 1	प्रणाली -2 System- 2	प्रणाली -3 System- 3	प्रणाली -4 System- 4
नेतृत्व प्रक्रिया अधीनस्थों पर तथा विश्वास व भरोसे की मात्रा पर।	अधीनस्थों में भरोसा व विश्वास नहीं पाया जाता।	सीमित मात्रा में विश्वास व भरोसा।	पूर्ण विश्वास ना होकर थोड़ा विश्वास, पर अभी भी नियंत्रण।	सभी मामलों में पूर्ण विश्वास व भरोसा।
अभिप्रेरणात्मक बलों की प्रकृति, अभिप्रेरकों को काम में लेने का तरीका।	भय, धमकी, दण्ड व कभी-कभी पुरस्कार।	पुरस्कार और कभी-कभी दण्ड भी।	पुरस्कार और कभी-कभी दण्ड भी।	पुरस्कार और सहभागिता।
अन्तःक्रिया प्रभाव की प्रकृति एवं अन्तःक्रिया की मात्रा व चरित्र।	अन्तःक्रिया सदैव भय और अविश्वास के साथ।	सीमित अन्तःक्रिया, भय का वातावरण।	पर्याप्त विश्वास के साथ मध्यम अन्तःक्रिया।	उच्च विश्वास के साथ गहन व सहभागी अन्तःक्रिया।

लिकर्ट का मत है कि संगठनात्मक उन्नयन (Organizational Improvement) के लिए प्रतिमान- 4 को आवश्यक तौर पर अपनाना चाहिये। इसमें उन्होंने खासकर सर्वेक्षण प्रत्युत्तर पद्धति (Survey Feedback Mothod) का एक निश्चित चक्र अपनाने पर बल दिया है, जिसके लिकर्ट ने पांच चरण बताए हैं-

1. आदर्श प्रतिमान को स्थापित करना (प्रणाली- 4)।
2. आदर्श प्रतिमान के आधारभूत आयामों पर संगठन की उपलब्धियों का मापन करना।
3. उपलब्धियों का विश्लेषण और व्याख्या आदर्श प्रारूप के सम्बन्धों के आधार पर करना तथा संगठनात्मक क्षमताओं के सबल और निर्बल पक्षों का निदान खोजना।
4. निदान के आधार पर संगठन के हित अनुरूप कार्य-योजना बनाना तथा क्रियान्वित करना।

उपर्युक्त संगठनात्मक सुधार चक्र के लिए लिकर्ट निम्न मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं-

- कारणात्मक चरों (नेतृत्व, व्यवहार, संरचना) आदि पर कार्य-प्रयासों को केन्द्रित करना।
- धीरे-धीरे प्रणाली 1 से प्रणाली 4 की ओर बढ़ना। एकदम क्रान्तिकारी परिवर्तन उपयुक्त नहीं होगा।
- कार्य-योजना में उन्हें सम्मिलित करें, जिनके कार्य-व्यवहार में सुधार लाना है तथा जो किसी ना किसी रूप में उनसे जुड़े हों।
- कार्य-योजना में प्रभावशाली एव शक्तिशाली पदों पर आसीन व्यक्तियों का सहयोग लिया जाये।

5. सम्पूर्ण चक्र की कार्य-योजना को सहायक और समर्थक वातावरण में लागू किया जाये।

सन् 1961 में लिकर्ट द्वारा मूलरूप से प्रबन्ध-व्यवस्था 1 से 4 की ही व्याख्या की गई थी। कालान्तर में उन्होंने दो अन्य प्रबन्ध व्यवस्थाऐं- 4टी एवं 5 भी वर्णित की। लिकर्ट ने प्रबन्ध व्यवस्था- 4 की तुलना में प्रबन्ध व्यवस्था 4 टी को श्रेष्ठ बताया, क्योंकि इस व्यवस्था में संघर्षों (मतभेदों) का समाधान बेहतर ढंग से किया जाता है। प्रबन्ध

व्यवस्था- 5 को लिकर्ट ने अधिक परिमार्जित (Refined) बताया है जो प्रबन्ध व्यवस्था- 2 एवं 4 की भाँति औपचारिक व्यवस्था है। (कटारियाः पृ0 329)

16.6 लिंकिंग पिन प्रतिमान

रेन्सिस लिकर्ट के महत्वपूर्ण योगदान में 'लिंकिंग पिन प्रतिमान' सहायक सम्बन्ध की अवधारणा में अन्तर्क्रिया प्रभाव (Interaction Influence) को दर्शाता है। लिकर्ट का यह मानना था कि संगठन के विभिन्न स्तरों पर कार्मिकों में गुणवत्ता, संसाधन प्रबन्धन के तौर-तरीके तथा अभिप्रेरणा विकसित की जा सकती है, बशर्ते कि उन 'अन्तःक्रिया प्रभाव व्यवस्था' में एकीकरण स्थापित हो।

लिकर्ट ने अपने 'लिंकिंग पिन प्रतिमान' में बताता है कि संगठन में प्रत्येक व्यक्ति की दो समूहों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः संगठन में प्रत्येक व्यक्ति एक लिकिंग पिन की तरह कार्य करता है। यह संगठन की उच्च एवं निम्न स्तरीय ईकाइयों से जुड़ा होता है। 'लिकिंग पिन प्रतिमान' में व्यक्ति संगठन में भी उच्च स्तरीय इकाई का सदस्य होने के साथ-साथ निम्न स्तरीय इकाई का नेता भी होता है। इस प्रतिमान में 'समूह की भूमिका' व्यक्ति की भूमिका से अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। (आरएन सिंहः पृ0 357) इस मॉडल में अधिक ध्यान 'ऊर्ध्वगामी' अर्थात ऊपर की ओर दिया जाता है। 'ऊर्ध्वगामी अभिमुखिता' लक्ष्यों की प्राप्ति, संचार, पर्यवेक्षण प्रभाव आदि में देखी जा सकती है। परम्परागत पदसोपानात्मक व्यवस्था जो अधोगामी अर्थात नीचे की ओर उन्मुखता पर जोर देती है, के स्थान पर यह मॉडल उर्ध्वगामी अभिमुखिता पर ध्यान देता है। लिकर्ट बाद में इस मॉडल का और विकास करते हैं और इसमें क्षैतिज लिंकेज को जोड़ते हैं। इस प्रकार उनका मॉडल क्षैतिज आयामों को जोड़ते हुए ऊर्ध्वगामी अभिमुखता पर जोर देता है। (आर0एन0सिंहः पृ0 357)

लिकर्ट के लिंकिंग पिन मॉडल में समूह कार्य अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सभी समूह शक्तिशाली माने जाते हैं। लिकर्ट के इस मॉडल को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है। (लिकर्टः पृ0 183)

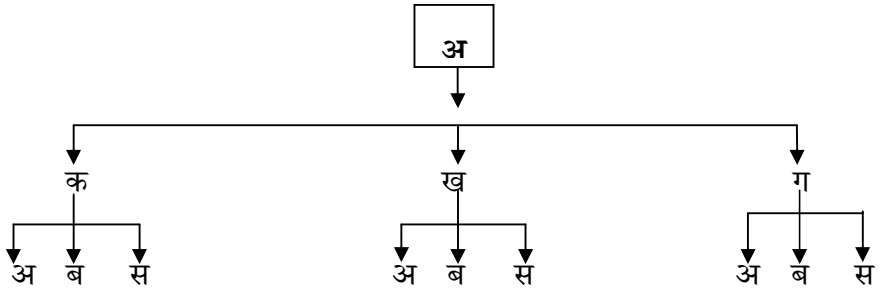

यहॉ 'अ' 'ब' तथा 'स' लिंकिंग पिन हैं।

वस्तुतः लिकर्ट का यह प्रतिमान समूह कार्य को अधिक महत्व देते हुए अन्तःक्रिया प्रभावों को भी सुनिश्चित करता है। लिकर्ट कहते हैं कि यदि संगठन में अन्तःक्रिया प्रभाव व्यवस्था स्थापित हो जाये तो निम्नांकित विशेषताएँ सामने आयेंगी। (कटारियाःपृ0 330)

- व्यक्ति के मूल्यों, आवश्यकताओं तथा लक्ष्यों का संगठन के समग्र समूहों से तारतम्यता स्थापित होगी।
- प्रत्येक व्यक्ति स्वयं के तथा अपने समूह के लक्ष्यों को एक साथ प्राप्त कर सकेगा।
- संगठन के सभी सदस्य कौशल पूर्वक एवं कुशलता से कार्य करने को प्रेरित होंगे।
- बेहतर संचार तथा सामूहिक निर्णयन में वृद्धि होगी।
- प्रत्येक व्यक्ति संगठन के निर्णयों एवं क्रियाओं में योगदान करेगा।

- प्रत्येक व्यक्ति संगठन में सहयोगात्मक अभिप्रेरणा, संचार तथा निर्णयन में प्रत्येक सदस्य का योगदान होने से सौहार्द्रपूर्ण एवं 'सहभागी प्रबन्ध' का वातावरण निर्मित होगा।

लिकर्ट के 'लिंकिंग पिन मॉडल' की यह कहकर आलोचना की जाती है कि इसमें और कुछ नया नहीं किया है, सिवाय परम्परागत पदसोपान संरचना के चारों ओर एक त्रिभुज बनाने के। साथ ही इसकी यह कहकर भी आलोचना की जाती है कि इससे निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया धीमी पड़ जायेगी। फिर भी यह मॉडल निर्णयन में व्यक्तियों की अधिक सहभागिता को प्रोत्साहित करता है। 'ऊर्ध्वाधर अभिमुखिता' का विचार वाकई एक नया विचार है और समतलीय लिंकिंजों के साथ लिंकिंग पिन व्यवस्था परम्परागत पदसोपानात्मक व्यवस्था से कहीं अधिक बेहतर है।(आर0 एन0 सिंहः पृ0 358)

16.7 संघर्ष का प्रबन्ध

लिकर्ट का मानना है कि किसी भी प्रकार के संगठन में विवादों का उत्पन्न होना आम है। संगठन के उद्देश्य पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि विवादों का निस्तारण यथाशीघ्र हो। लिकर्ट ने 'द न्यू वैज ऑफ मैनेजिंग कॉनफिलक्ट्स' (The New Ways of Managing Conflicts) पुस्तक में संघर्ष को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि संघर्ष- ''अपने चाहे गये परिणाम जो यदि प्राप्त हो जाते हैं तो उन्हें प्राप्त करने की तीव्र इच्छा दूसरों द्वारा चाहे गये परिणामों की प्राप्ति में बांधा पहुँचाती है और इस कारण शत्रुता पैदा होती है।'' (सेशाचलमःपृ0229)

लिकर्ट ने संगठन में उत्पन्न होने वाले संघर्ष के निबटारे के उपाय बताये हैं। उन्होंने संघर्ष को दो प्रकारों में बांटा है- पहला- मूलभूत संघर्ष (Substantive Conflicts) और दूसरा- भावनात्मक संघर्ष (Affective Conflicts)। मूलभूत संघर्ष की जड़ किये गये कार्य में ही निहित होती है। वहीं पर भावनात्मक संघर्ष संगठन में अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप होते हैं। लिकर्ट का मानना है कि मूलभूत संघर्ष को भावनात्मक संघर्ष और जटिल बना देते है, ऐसी स्थिति में समाधान का उपाय सहभागिता पर आधारित कार्य-विधि में ढूंढना चाहिए। 'लिंकिंग पिन प्रतिमान' भी मनमुटाव कम करने का एक साधन हो सकता है, किन्तु यह परिस्थितियों पर निर्भर करता है। इसी क्रम में लिकर्ट ने उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध के स्थान पर समूह उद्देश्यों द्वारा प्रबन्ध या एम0जी0ओ0 (Management by Group Objectives) की अवधारणा प्रतिपादित की है। लिकर्ट ने मानव संसाधन विकास को अनुसंधान के साथ जोड़ते हुए कहा है कि प्रबन्ध को चाहिये कि वह मात्रात्मक (Quantitative) अनुसंधान के द्वारा अच्छी प्रबन्ध व्यवस्था को पहचाने, देखे एवं समझें। कुछ निश्चित मानकों के आधार पर उन चरों का भी परीक्षण करें जो कि संगठन की लक्ष्य प्राप्ति में निर्णायक सिद्ध होते हैं तथा संगठन में कुशल या उन्नत स्थितियां लाने हेतु निरन्तर अनुसंधान कार्य होते रहने चाहिये। अन्ततः इसके सुपरिणामों का स्वाद मानव संसाधन (कार्मिक) ही चखता है। "लिकर्ट ने सहभागी प्रबन्ध, सहयोगी नेतृत्व, श्रेष्ठ आन्तरिक प्रभाव, मित्रवत व्यवहार, अनौपचारिक वार्ताओं, अधीनस्थों पर कम दबाब, संगठन से अनुकूलता, कार्य में स्वतन्त्रता तथा उच्च स्तरीय अभिप्रेरणा इत्यादि को मानव संसाधन विकास के आवश्यक नियम वर्णित किया है।(कटारियाःपृ0335)

16.8 संगठनात्मक प्रभावशीलता

प्रत्येक संगठन की अपनी एक कार्यशैली एवं आत्म परीक्षण का निहित गुण होता हैं। संगठन की उपयोगिता इस बात पर निर्भर करती है कि संगठन अपने लक्ष्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सफल हुआ। (जोशी एवं पारीकः पृ0 228) संगठनात्मक प्रभावशीलता के सन्दर्भ में लिकर्ट ने अपनी पुस्तक "The Human Organization" में तीन प्रमुख चरों का वर्णन किया है। (कटारियाः पृ0333)

1. **कारण-कार्य चर (Casual Variables)** लिकर्ट ने इस श्रेणी के चर कारण-कार्य या कारणात्मक चरों में नेतृत्व की रणनीतियों, कौशल, व्यवहार, प्रबन्धक के निर्णयों, नीतियों तथा संगठन की संरचना को सम्मिलित किया है। यह चर संगठन में विकास के क्रम को तथा संगठन के परिणामों को प्रभावित करते हैं। यह चर संगठन के नियंत्रण में होते हैं तथा इन्हें सजग रखा जा सकता है।
2. **हस्तक्षेपकारी चर (Intervening Variables)** इस प्रकार के चर वे हैं जो मूलतः संगठन की आन्तरिक स्थिति का खुलासा करते हैं। इनमें व्यक्तियों की अभिवृत्ति, वफादारी, अभिप्रेरणा, निष्पादन लक्ष्य तथा सामूहिक स्तर पर लोगों की आपसी समझ, प्रभावी अन्तर्क्रिया की क्षमता, संचार एवं निर्णयन की व्यावहारिक स्थिति सम्मिलित की गई है।
3. **निर्गत परिणाम चर (End Result Variables)** यह वे चर हैं जो संगठन के अन्तिम परिणाम या 'आउट पुट' (output) को बताते हैं। लिकर्ट ने इन चरों में उत्पादकता, लागत, रद्दी के रूप में हानि तथा कुल लाभ को वर्णित किया है। लिकर्ट कहते हैं कि "हस्तक्षेपकारी चरों की स्थिति मुख्यतः कारण-कार्य चरों की स्थिति का परिणाम होती है जो अन्ततः निर्गत परिणाम चर या संगठन के अन्तिम 'आउट पुट' को प्रभावित करती है।

अतः लिकर्ट का मत है कि संगठन में कारण-कार्य चरों पर पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए। इसी से संगठन में 'विज्ञान आधारित प्रबन्ध' का विकास हो सकेगा।

16.9 संगठन का संशोधित सिद्धान्त

रेन्सिस लिकर्ट एक व्यवहारवादी चिन्तक माने जाते हैं और इनके संगठन के प्रति विचार, शास्त्रीय विचारधारा से भिन्न है। संगठन का लक्ष्य सिर्फ उत्पादन होना एवं मनुष्य का सिर्फ 'आर्थिक आधार' पर आंकलन करना, लिकर्ट की मान्यता नहीं रही है। लिकर्ट ने मनुष्य (कार्मिक) के लिए अभिप्रेरणा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। लिकर्ट के विचारों में अभिप्रेरणा का 'एक्स' सिद्धान्त (Theory 'X') कार्य संगठन है, जबकि 'वाई' सिद्धान्त (Theory 'Y') सामूहिक अभिप्रेरणा का पर्याय है। लिकर्ट सुझाव देते है कि ''संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की अभिप्रेरणात्मक शक्ति का उपयोग आपसी संघर्षों में करने के बजाय सकारात्मक सामूहिक प्रयासों में करना चाहिए। (कटारियाः पृ0 333) संगठन के संशोधित सिद्धान्त में लिकर्ट दो मुख्य अवधारणाऐं प्रतिपादित करते हैं- (कटारियाः पृ0 333)

1. उच्चाधिकारियों एवं अधीनस्थों में अन्तर्क्रिया की प्रणाली भय या दबाव के बजाय सहयोगात्मक भावना पर आधारित होनी चाहिए।
2. संगठन में कार्यरत व्यक्ति उसी स्थिति में श्रेष्ठ परिणाम दे सकता है, जब उन्हें एक सुसंगठित प्रभावी ढंग से कार्य करने वाले समूह में कार्य करने का अवसर मिले। अतः प्रबन्ध को मानव संसाधन के भरपूर उपयोग के सभी सम्भव प्रयास करने चाहिए।

लिकर्ट ने संगठन के संशोधित सिद्धान्त में व्यक्ति के मनोबल तथा संगठन के दीर्घकालीन लक्ष्यों के साथ व्यक्ति की संतुष्टि को भी सम्मिलित किया है।

16.10 आलोचना

लिकर्ट का सम्पूर्ण चिन्तन एवं लेखन उनके अनुभवात्मक (Empirical) प्रयोगों पर आधारित रहा है। क्रिस आर्गिरिस, फ्रेस लुथांस, रॉबर्ट आर0 ब्लेक, हरबर्ट ए0 शैफर्ड, जे0 डब्लू0 लोर्श तथा लॉरेन्स जैसे प्रसिद्ध विद्धानों ने लिकर्ट के चिन्तन की कटु आलोचना की है।

1. लिकर्ट का यह कहना कि प्रबन्ध व्यवस्था 1 से 4 की ओर आगे बढ़ने का प्रयास करना चाहिए। आलोचकों का मानना है कि यह सरल कार्य नहीं है। प्रबन्ध व्यवस्था 4 की व्याख्या करना तो आसान है, लेकिन अपनाना उतना ही कठिन। इस आलोचना का उत्तर देते हुए लिकर्ट ने एक बार कहा था ''हम भी अभी सीखने के ही दौर में है। बार-बार प्रयोग करके निश्चित रूप से एक दिन इसका व्यावहारिक रास्ता भी मिल जाएगा।'' (कटारियाः पृ0 335)
2. लिकर्ट के 'लिंकिंग पिन प्रतिमान' की आलोचना करते हुए आर्गिरिस, लुथॉस, ब्लेक, लारेन्स, शैफर्ड तथा लोर्श का मानना है कि लिंकिंग पिन प्रतिमान, परम्परागत क्रमिक पदसोपान संरचना के चारों तरफ त्रिकोण खींचने के अलावा और कुछ नहीं है। दूसरी आलोचना इस प्रतिमान की यह की गई है कि इसमें निर्णयन में बिलम्ब होता है। 'लिंकिग पिन प्रतिमान' को आलोचकों ने 'रोड़े अटकाने वाले समूह' (Locking Groups) की भी संज्ञा दी है।
3. हरसे तथा कुछ अन्य विद्वानों ने लिकर्ट द्वारा बताये गये कार्य-केन्द्रित पर्यवेक्षण तथा कार्मिक केन्द्रित पर्यवेक्षण के बारे में आलोचना की है तथा बताया है कि यह सभी देश, काल, परिस्थिति तथा व्यक्ति पर सटीक नहीं बैठता।
4. लिकर्ट पर यह भी आरोप लगाया गया कि उन्होंने 'संकट के प्रबन्ध' (Management of Crisis) को नजरअन्दाज करते हुए मानव व्यवहार को सहज एवं विश्वसनीय मान बैठे। संस्कृति, मूल्यों, परम्पराओं, संगठन की छवि तथा स्थानीय कारणों को उन्होंने अपने अध्ययन में विशेष महत्व नहीं दिया।

16.11 मूल्याकंन

रेन्सिस लिकर्ट के योगदान के लिए प्रबन्ध एवं प्रशासकीय जगत सदा आभारी रहेगा। उनका चिन्तन मैकग्रिगोर, पीटर ड्रकर तथा हर्जबर्ग की भाँति गहराई से युक्त है। लिकर्ट अपने 'पर्यवेक्षक शैलियों', 'प्रबन्ध-प्रणालियों 1-4' एवं 'लिकिंग पिन प्रतिमान' विचारों के लिए लोक प्रशासन एवं प्रबन्ध के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनके विचारों में नवीनता एवं मौलिकता दिखाई देती है। लिकर्ट ने अभिप्रेरक तत्व के स्थान पर अभिप्रेरणा को महत्व दिया है। ऐसा महसूस होता है कि आने वाले समय में लिकर्ट के विचारों का प्रभाव भविष्य के प्रबन्ध विचारकों एवं अनुसंधानकर्ताओं पर विशिष्ट होगा, क्योंकि अगर लोक प्रबन्ध विज्ञान को और अधिक अनुभवात्मक बनाना है तो लिकर्ट के विचारों को ही आधार बनाकर अग्रसर होना होगा।

अभ्यास प्रश्न-

1. लिकर्ट की पुस्तक "New Patterns of Management" का प्रथम प्रकाशन कब हुआ?
   क. 1954 ख. 1961 ग. 1976 घ. 1984
2. "लिंकिंग पिन'' का विचार दिया-
   क. लिकर्ट ने ख. मेयो ने ग. हर्जबर्ग ने घ. इसमें से कोई नहीं
3. प्रबन्ध प्रणालियां 1-4 का प्रतिपादन किया-
   क. बर्नार्ड ने ख. मेयो ने ग. लिकर्ट ने घ. रिग्स ने
4. "कार्य केन्द्रित'' पर्यवेक्षक-
   क. कार्य को लक्ष्य मानते हैं ख. दण्ड देते हैं
   ग. कड़ा पर्यवेक्षण करते हैं घ. उपयुक्त सभी
5. लिकर्ट निम्न में से किन अध्ययनों के लिए प्रसिद्ध है?

क. मिशिगन अध्ययन ख. हाथोर्न अध्ययन
ग. उपर्युक्त दोनों के लिए घ. इनमें से कोई नही

6. लिकर्ट के अनुसार पर्यवेक्षण शैली के दो प्रकार कौन-कौन से हैं?
7. कर्मचारी-केन्द्रित पर्यवेक्षक के दो विशेषताएँ बतायें।
8. 'लिंकिंग पिन प्रतिमान' के दो आलोचनाओं के नाम का उल्लेख कीजिए।

16.12 सारांश

रेन्सिस लिकर्ट मिशिगन अध्ययनों के लिए प्रसिद्ध है। लोक प्रशासन एवं प्रबन्ध जगत उनके निम्न विचारों के लिए हमेशा ऋणी रहेगा- 1. पर्यवेक्षकों की शैली, 2. सहायक सम्बन्ध, 3. प्रबन्ध-प्रणालियां 1-4, 4. लिंकिंग पिन प्रतिमान, 5. संघर्ष का प्रबन्ध, 6. संगठनात्मक प्रभावशीलता और 7. संगठन का संशोधित सिद्धान्त इत्यादि।
पर्यवेक्षण शैलियों पर लिकर्ट अपने विचार प्रकट करते हुए दो प्रकार के पर्यवेक्षकों की पहचान करते हैं- (1) कार्य-केन्द्रित पर्यवेक्षक एवं (2) कर्मचारी-केन्द्रित पर्यवेक्षक। दोनों की विशेषताऐं एवं विश्लेषण लिकर्ट के द्वारा अलग-अलग दर्शाये गये हैं। लिकर्ट प्रबन्ध-व्यवस्थाऐं/प्रणालियां- 1 से 4 की चर्चा करते हुए चार प्रणालियां बतायी हैं- शोषणात्मक-सत्तावादी (प्रणाली-1), परोपकारी-सत्तावादी (प्रणाली-2), परामर्शवादी (प्रणाली-3), भागीदारी (प्रणाली-4)।
लिकर्ट संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति एवं सुधारों के लिए प्रणाली- 1 से प्रणाली- 4 की ओर अग्रसर होने का सुझाव देते हैं। लिकर्ट संघर्षों के प्रकार- (1) मूलभूत संघर्ष एवं (2) भावनात्मक संघर्ष का उल्लेख करते हुए समाधान के तरीके भी अपनी पुस्तक 'The New Ways of Managing Conflicts' में बताते हैं। लिकर्ट का 'लिंकिंग पिन प्रतिमान' परम्परागत क्रमिक पदसोपानात्मक व्यवस्था से कहीं अधिक बेहतर माना जाता है। लिकर्ट के अन्य विचारों में संगठनात्मक प्रभावशीलता एवं संगठन का संशोधित सिद्धान्त भी शामिल है।

16.13 शब्दावली

प्रस्फुटित- निकला हुआ, परिमार्जित- शुद्ध रूप या अच्छे तरीके से

16.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, **2.** क, **3.** ग, **4.** घ, **5.** क, **6.** कार्य-केन्द्रित पर्यवेक्षक और कर्मचारी-केन्द्रित पर्यवेक्षक,
7. अधीनस्थों पर कम दबाव का प्रयोग करते हैं और सामूहिक निर्णयन पर जोर और कार्य-गति निर्धारण की आजादी देते हैं।, **8.** पहला- इनमें नया कुछ नहीं है, सिवाय परम्परागत पदसोपान संरचना के चारों ओर एक त्रिभुज बनाने के, दूसरा- इससे निर्णय निर्माण की प्रक्रिया धीमी पड़ जायेगी।

16.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा0 सुरेन्द्र कटारियाः प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, जयपुर एवं दिल्ली, 2005
2. सेशाचलम् प्रसाद, प्रसाद व सत्यनारायण (सम्पादित) Administrative Thinkers, Sterling 1998
3. नरेन्द्र कुमार थोरीः प्रमुख प्रशासनिक चिंतक, 2005
4. आरपी जोशी, अंजु पारीकः प्रशासनिक विचारक, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2005
5. आर लिकर्ट, New Patterns of Management,मैक्ग्रा-हिल, न्यूयार्क,1961

6. हर्सी, ब्लेनकार्ड तथा जॉनसन, Management of organizational Behaviour, Prentice Hall, 2001
7. आर0 एन0 सिंह, Management: Thought And Thinkers, Sultan Chand, 1984
8. आर0 लिकर्ट एवं जे0 लिकर्ट, New Ways of Managing Conflict, Mc. Graw Hill, New York,
9. आर0 लिकर्ट, A Technique for The Measurement of Attitudes, Mc. Graw Hill, New Yark ,1932
10. एस आर माहेश्वरी, Administrative Thinkers, Macmillan India Ltd, New Delhi, 1998

16.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डा0 सुरेन्द्र कटारिया, प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिसिंग हाउस,
2. नरेन्द्र कुमार थोरी, प्रमुख प्रशासनिक, 2005,

16.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रेन्सिस लिकर्ट के विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
2. रेन्सिस लिकर्ट के प्रबन्ध प्रणालियों 1 से 4 का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।

इकाई- 17 फ्रेडरिक डब्ल्यू0 रिग्स

इकाई की संरचना

17.0 प्रस्तावना
17.1 उद्देश्य
17.2 रिग्स- जीवन परिचय
17.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन में प्रवृत्तियां
17.4 रिग्स द्वारा प्रयुक्त मुख्य उपागम
    17.4.1 पारिस्थितिकीय उपागम
    17.4.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम
    17.4.3 आदर्श प्रतिमान उपागम
17.5 रिग्स द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान
    17.5.1 संयोजित प्रतिमान
    17.5.2 विवर्तित प्रतिमान
    17.5.3 समपार्श्वीय प्रतिमान
        17.5.3.1 समपार्श्वीय समाज की विशेषताऐं
        17.5.3.2 समपार्श्वीय समाज की प्रशासनिक उप-प्रणाली
17.6 विकास की अवधारणा
17.7 रिग्स के विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन
17.8 सारांश
17.9 शब्दावली
17.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
17.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.13 निबन्धात्मक प्रश्न

17.0 प्रस्तावना

मानवता का समस्त जीवन निरन्तर सीखने की प्रक्रिया से गुजरता है, लेकिन सीखने की इस प्रक्रिया को सार्थक रूप देने वाले व्यक्ति बहुत कम होते हैं। फ्रेडरिक डब्ल्यू0 रिग्स अपनी आत्मकथा 'Intellectual Odyssey' में लिखते हैं ''जब मेरी मृत्यु हो जाये तो कृपया मेरे समाधि-स्तम्भ पर लिखवा दीजिये कि मैंने मेरी गलतियों से सीखा तथा सीखने की प्रक्रिया का भरपूर आनन्द उठाया।''(कटारिया, पृ0 225)

सरकार की कुशलता और समाज का विकास कुछ हद तक प्रशासनिक व्यवस्था की क्षमता और निर्णयों को लागू करने की उसकी निपुणता पर निर्भर करता है। यही कारण है कि आजकल प्रशासनिक प्रतिमान (Model) का महत्व बहुत बढ़ गया है। प्रशासनिक प्रतिमान के गठन में रिग्स का महत्वपूर्ण स्थान है। चूँकि इस क्षेत्र में वह अग्रदूत है, प्रशासन का आलोचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने के लिए उन्होंने विश्लेषणात्मक प्रतिमान और पद्धतियों का विकास किया है। रिग्स ने प्रशासनिक व्यवस्थाओं और उनके वातावरण के बीच की क्रिया-प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों की खोज की है। उनके अध्ययन के क्षेत्र मुख्यत: विकासशील अथवा संक्रमणशील

समाज रहे हैं। उन्होंने कोरिया (1956), थाईलैण्ड (1957-58), फिलीपींस (1958-59), भारत (जुलाई, 1959) एशियाई देशों की यात्राएँ की तथा विकासशील समाजों का गहराई से अध्ययन किया। प्रो0 बीकेएन मेनन के अनुसार ''प्रो0 रिग्स का नया प्रशासनिक प्रतिमान प्रिज्मैटिक समाज, विकासशील एवं अर्द्ध-विकसित अर्थव्यवस्थाओं में प्रशासन की गतिशीलता को समझने की हमारी पूर्व की अवधारणात्मक रूप-रचना को सुधारने का महत्वपूर्ण प्रयास है।''

लोक प्रशासन के विकास में नौकरशाही उस समय से परिचर्चा और विश्लेषण का मुख्य कथानक रही है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात आंग्लभाषी विश्व, मैक्स वेबर की रचनाओं से परिचित हुआ है। वेबर ने न केवल नौकरशाही अध्ययन के प्रति लोगों में रूझान प्रज्वलित की बल्कि उनका ''आदर्श प्रकार'' सिद्धान्त विद्वानों के लिए एक 'सन्दर्भ बिन्दु' के साथ-साथ विचलन बिन्दु भी रहा है। मैक्स वेबर ने नौकरशाही का एकत्ववादी दृष्टिकोण अपनाया है। उन्होंने इसे उसी समाज से नहीं जोड़ा है, जिसमें यह कार्यरत होती है। फ्रेडरिक रिग्स ने वेबर द्वारा अभिव्यक्त नौकरशाही अवधारणा के सार्वभौमवाद का पूर्णतः तिरस्कार कर दिया तथा सम्बन्धित समाज से जोड़ने का सफल प्रयास किया। (श्रीराम महेश्वरी पृ0 233)

17.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- रिग्स के जीवन एवं कृतित्व को समझ सकेंगे।
- रिग्स के चिन्तन को समझ सकेंगे।
- रिग्स के विचारों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
- रिग्स के द्वारा तुलनात्मक लोक प्रशासन एवं विकास की अवधारणा के क्षेत्र में उसके योगदान को संज्ञान में ले सकेंगे।

17.2 रिग्स- जीवन परिचय

फ्रेडरिक डब्ल्यू0 रिग्स का जन्म 3 जुलाई 1917 को चीन के कुलिंग शहर में हुआ। सन् 1930 से 32 के दौरान रिग्स अपने माता-पिता के साथ अपने घर स्कोटिया (न्यूयॉर्क) लौट आये। यहाँ रिग्स को लेकजार्ज, न्यूयार्क स्थित सिल्वर डे बोर्डिंग स्कूल में 9वीं कक्षा में प्रवेश मिला। सन् 1932 में रिग्स के माता-पिता पुनः कुलिंग (चीन) लौट आये। यहाँ पर रिग्स ने अमेरिकन स्कूल (KAS) में प्रवेश लिया। सन् 1934 में रिग्ज ने नानकिंग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। सन् 1935 में रिग्स अपने दादा-दादी के पास स्कोटिया लौट आये। रिग्स ने इलिनोइस विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग में द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी के रूप में प्रवेश लिया, किन्तु शीघ्र ही रिग्स ने राजनीति विज्ञान विषय चुन लिया। सन् 1938 में रिग्स ने स्नातक उपाधि तथा सन् 1941 में फलेचर स्कूल से राजनीति विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। उसके पश्चात रिग्स ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में ''Repeal of Chinese Exclusion Act'' से सम्बन्धित पी0एचडी0 शोधकार्य हेतु पंजीकरण कराया। रिग्स का पी0एचडी0 शोधकार्य सन् 1950 में 'Pressures on Congress: A study of The Repeal of Chinese Exclusion' नाम से प्रकाशित हुआ जो उनकी प्रथम पुस्तक है। रिग्स ने 'City University of New York' में व्याख्याता की अस्थायी नौकरी प्रारम्भ की तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का अध्यापन कार्य करने लगे। सन् 1948 में उन्हें वैदेशिक नीति संघ (Foreign Policy Association) में अनुसंधान कार्मिक (Research Staff) की नौकरी मिली। सन् 1952 में रिग्स ने प्रशांत-सम्बन्ध संस्थान (Institute of Pacific Releations) हेतु 'Formosa under

Chinese Nationalist Rule' विषय पर शोध-पत्र तैयार किया जो उनका प्रथम राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक आयामों से परिपूर्ण अन्तरविषयी अध्ययन था। रिग्स ने सन् 1951 से 1955 तक न्यूयार्क लोक प्रशासन निपटान कार्यालय (Puplic Administration Clearing House or PACH) में निदेशक 'रॉलैण्ड इगर' के सहायक के रूप में कार्य किया। सन् 1956 से 1967 तक इंडियाना विश्वविद्यालय के सरकार सम्बन्धी विभाग के सदस्य रहे।

सन् 1957-58 में रिग्स ने सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (SSRC) की तुलनात्मक राजनीति पर समिति (CCP) से अनुदान प्राप्त कर थाईलैण्ड में शोध कार्य शुरू किया। सन् 1964 में 'Prismatic Model' पुस्तक प्रकाशित हुई। थाईलैण्ड में किये गये शोध कार्य को रिग्स ने सन् 1966 में 'Thailand:The Modernization of a Bureaucratic Polity' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराया। सन् 1959 में वापस अमेरिका लौटते समय रिग्स को भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली में व्याख्यान देने हेतु आमंत्रित किया गया। इस संस्थान में रिग्स द्वारा दिये गये व्याख्यानों की सन् 1961 में 'The Ecology of Public Administration' नामक पुस्तक के रूप मे प्रकाशित कराया गया। सन् 1959 में इण्डियाना विश्वविद्यालय लौटने पर रिग्स ने नवगठित अमेरिकी लोक प्रशासन संस्थान (American Society for Public Administration or ASPA) की सदस्यता ग्रहण कर ली। सन् 1963 में ASPA के अधीन 'Comparative Administration Group or CAG' का गठन हुआ। रिग्स ने CAG की अध्यक्षता स्वीकार की। सन् 1967 में रिग्स हवाई विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर नियुक्त हुये तथा सेवानिवृत्ति तक यहीं कार्य करते रहे। सन् 1972 में हेग के सामाजिक अध्ययन संस्थान में रिग्स ने अपना 'प्रिज्मैटिक मॉडल' संशोधित किया जो सन् 1973 में 'Prismatic Society Revisited' नाम से प्रकाशित हुआ। रिग्स ने गियोवानी सारतोरी के साथ मिलकर 'Comittee for Conceptual Terminological Analysis' (कोक्टा) का गठन किया। इस समिति ने 'International Political Science Association' (IPSA) युनेस्को तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान परिषद (ISSC) के साथ मिलकर भी कार्य किया है। इस तरह से ऐसा प्रतीत होता है कि रिग्स का सम्पूर्ण जीवन एक श्रमिक, पुस्तकालय सहायक, शोधकर्ता, शिक्षक, स्वतन्त्र लेखक, सैलानी तथा दार्शनिक जैसे विभिन्न रूप उनके 'प्रिज्मैटिक प्रतिमान' की भाँति इंद्रधनुषी रंगों से भरपूर हैं। (डा0 सुरेन्द्र कटारियाः पृ0 225-250)

रिग्स द्वारा लिखित एवं सम्पादित पुस्तकें इस प्रकार हैं-

1. Pressures on Congress: A study of The Repeal of Chinese Exclusion (1950)
2. Formosa Under Chinese Nationalist Rule (1952)
3. The Ecology of Public Administration (1961)
4. Administration in Developing Countries: The Theory of Prismatic Society (1964)
5. Thailand: The Modernization of A Bureaucratic Polity (1966)
6. Frontiers of Development Administration (1970)
7. Prismatic Society Revisited (1973)
8. Applied Prismatics (1978)
9. Ethnicity: Intercocta Glossary- Concepts & Terms used in Ethnicity Research (1985) Ed.
10. Indercolta Nomenclature for Ethnicity Research (1992), (Co-aditor: Malkia Matti)
11. Descriptive Terminology (1996) (Co-editor: Malkia & Budin)

इसके अतिरिक्त रिग्स के लगभग 300 शोध लेख, केस स्टडी, नोट्स, रिपोर्ट्स तथा संगोष्ठी पत्र प्रकाशित हो चुके हैं।

17.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन में प्रवृत्तियां

लोक प्रशासन विषय में औपचारिक उपाधि प्राप्त ना होते हुए भी रिग्स का तुलनात्मक लोक प्रशासन में दिया गया योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तुलनात्मक प्रशासनिक समूह (CAG) के संस्थापक अध्यक्ष (सन् 1963) होने तथा जीवन भर विभिन्न देशों, समाजों एवं समस्याओं पर गहन शोध कार्य करते हुए रिग्स का निरन्तर यह प्रयास रहा कि तार्किक पद्धतियों से ऐसे प्रतिमानों का विकास किया जाये जो कि मानव समाज को समझने में सार्थक योगदान दे सके। (कटारियाः पृ0 231)

समस्त प्रशासनिक सिद्धान्त एवं प्रतिमान जो द्वितीय विश्व युद्ध के पहले विकसित हुये, वे वास्तव में औद्योगिक क्रांति के परिणाम थे, अधिकांशतः पश्चिमी देशों एवं अमेरिकी गणराज्य के लिए उपयुक्त थे। इसलिये ये प्रतिमान और इनके आधारभूत सिद्धान्त विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्था को समझने में नाकाम रहे। इस नई अवधारणा की खोज के कारण तुलनात्मक लोक प्रशासन का जन्म हुआ। सन् 1962 में रिग्स का एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसका शीर्षक था 'Trends in the Comparative study of Public Administration।' इस लेख में रिग्स ने तुलनात्मक लोक प्रशासन में अध्ययन के लिये तीन वृहत्तर धाराओं की पहचान की है। ये हैं-

1. **आदर्शात्मक से अनुभवमूलक उन्मुखता (Normative to Empirical)-** रिग्स का मानना है कि केवल आदर्शों की चर्चा करने के स्थान पर उन परिस्थितियों को महत्व दिया जाये जो यथार्थ हैं। इन अध्ययनों में "क्या होना चाहिए" (What ought to be) के स्थान पर "क्या है" (What is) को वरीयता देनी चाहिये। इनमें अनुभववादी पद्धति का मुख्य लक्ष्य आदर्श वर्णन के बजाय गहन अध्ययन द्वारा व्यावहारिक निष्कर्षों तक पहुँचना है। रिग्स के मतानुसार, "तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन आदर्शात्मक से अनुभवमूलक अध्ययनों की ओर उन्मुख है।"
2. **विशिष्टता से सामान्यपरकता-** तुलनात्मक लोक प्रशासन की दूसरी प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए रिग्स कहते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन विशिष्टता (Ideographic) से सामान्यपरकता (Nomothetic) अध्ययनों की ओर उन्मुख है। ये दोनों शब्द रिग्स की ही देन है। 'इडियोग्राफिक अध्ययन' वे होते हैं जिनमें किसी एक विशिष्ट घटना, समस्या, संस्था या राष्ट्र का अध्ययन किया जाता है अर्थात अध्ययन किसी एक 'विशिष्ट इकाई' का किया जाता है। इसके विपरीत 'नोमोथेटिक अध्ययन' में उन तथ्यों को अधिक महत्व दिया जाता है जो व्यापकता या सामान्यपरकता लिये होते हैं। विशिष्टता के स्थान पर सामान्यपरकता तभी आ सकती है जब इन तुलनात्मक अध्ययनों को बल प्रदान करें।
3. **गैर-पारिस्थितिकीय से पारिस्थितिकीय-** रिग्स द्वारा प्रतिपादित तीसरी प्रवृत्ति गैर-पारिस्थिकीय (Non-Ecological) से पारिस्थिकीय (Ecological) अध्ययनों की ओर उन्मुख होने से है। वर्तमान समय में पारिस्थितिकीय अध्ययनों में प्रशासन और पर्यावरण के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया का अध्ययन किया जाता है। यह प्रवृत्ति लोक प्रशासन को प्रभावित करने वाले सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक पर्यावरण (पारिस्थितिकी) को समझने एवं विश्लेषित करने के महत्व को रेखांकित करती है। इसीलिये रिग्स लोक प्रशासन के अध्ययन में पारिस्थिकीय परिप्रेक्ष्य को अपनाये जाने की आवश्यकता पर बल देते हैं, ताकि प्रशासनिक तीव्रता की गहरी और व्यापक समझ विकसित की जा सके।

17.4 रिग्स द्वारा प्रयुक्त मुख्य उपागम

उपर्युक्त प्रवृत्तियों को केन्द्र-बिन्दु मानते हुए रिग्स ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में नये प्रतिमान विकसित किये हैं। रिग्स के प्रतिमानों से पहले विकसित हुए प्रशासनिक प्रतिमान मुख्यतः विकसित देशों से सम्बन्धित होते थे जो विकासशील देशों की सामाजिक, प्रशासनिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों की व्याख्या करने में असमर्थ थे। इस समस्या के समाधान हेतु एवं अपने द्वारा विकसित सिद्धान्तों को समझाने के लिए रिग्स विशेष रूप से तीन महत्वपूर्ण उपागमों का प्रयोग करते हैं-

17.4.1 पारिस्थितिकीय उपागम

लोक प्रशासन में पारिस्थितकीय उपागम का समर्थन करते हुए रिग्स ने कहा है कि 'पारिस्थितिकी' (Ecology) प्राकृतिक विज्ञान का शब्द है। यह जीवों और उनके पर्यावरण के परस्पर सम्बन्धों के विज्ञान से सम्बन्ध रखता है। (Beuss-P-232)

'Ecology' शब्द ग्रीक भाषा के 'Oikos' से बना है, जिसका अर्थ है- घर या रहने का स्थान। पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण में आस-पास के पर्यावरण का अध्ययन किया जाता है। चूँकि लोक प्रशासन मानव-व्यवहार से युक्त एक जीवन संगठन है, अतः प्रशासन एवं उसके पर्यावरण का परस्पर सहसम्बन्ध समझना आवश्यक है। (कटारियाः पृ0 233)

पारिस्थितिकीय उपागम की शुरूआत करने वालों में जे0 एम0 गौस, राबर्ट ए0 ढाल तथा रॉबर्ट के0 मर्टन थे। जे0 एम0 गौस के अनुसार, 'लोक प्रशासन की पारिस्थितिकी जनता, क्षेत्रफल, लोगों की भौतिक, सामाजिक एवं प्रौद्योगिकीय आवश्यकताओं, विचारों तथा व्यक्तिगत एवं आपातकालीन अवस्थाओं इत्यादि का अध्ययन करती है।' रिग्स ने अपनी पुस्तक 'Ecology of Public Administration' में प्रशासनिक प्रणाली और पर्यावरण की पारस्परिक क्रिया (पारिस्थितिकीय उपागम) का समर्थन करते हुये इसे नई उँचाइयां प्रदान की हैं। उन्होंने थाईलैण्ड तथा फिलीपीन्स में अपने अध्ययनों के आधार पर यह सिद्ध किया कि पर्यावरणीय परिस्थितियां किस प्रकार प्रशासन को प्रभावित करती हैं? रिग्ज का कहना है कि प्रशासनिक प्रणाली सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं आर्थिक वातावरण के सन्दर्भ में ही संचालित होती हैं तथा वातावरण और प्रशासनिक प्रणाली के बीच लगातार अन्त:क्रिया होती है एवं दोनों ही एक-दूसरे को समान रूप से प्रभावित करती हैं। रिग्स का मानना है कि केवल वही अध्ययन वास्तव में तुलनात्मक है जो अनुभवमूलक, सामान्यपरक तथा पारिस्थितिकीय प्रकृति के होते हैं। उनकी यह भी दृढ़ मान्यता रही है कि किसी भी देश के लोक प्रशासन की प्रकृति को उस देश के सामाजिक विन्यासों (social configurations) को भली-भाँति समझे बिना विश्लेषित नहीं किया जा सकता है।

17.4.2 संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम

प्रो0 रिग्स ने प्रशासनिक प्रणाली के पारिस्थितिकीय अध्ययन में जिस उपागम को अपनाया, वह संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम (Structural-Functional Approach) है। रिग्स का यह मानना है कि प्रत्येक प्रणाली या व्यवस्था (System) का निर्माण विभिन्न संरचनाओं से होता है और ये संरचनाएँ विशिष्ट कार्य करती हैं। व्यवस्था विश्लेषण (System Analysis) के उपनाम से प्रसिद्ध संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक उपागम, पूर्ववर्ती संरचनात्मक उपागम तथा प्रकार्यात्मक उपागम के संयुक्तिकरण से विकसित हुआ है। ये संरचनाएँ मूर्त, जैसे सरकारी विभाग तथा अमूर्त, जैसे प्राधिकार, सत्ता इत्यादि दोनों हो सकती हैं।

रिग्स ने संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक को उपागम के बजाय ढ़ाँचा (Frame work) मानना उपयुक्त समझा है। समाजशास्त्री टालकॉट पारसन्स, राबर्ट के0 मर्टन तथा गेबरियल आमण्ड इत्यादि के अध्ययनों में यह उपागम

मुख्य केन्द्र-बिन्दु रहा है। चूँकि समाज में अनेक प्रकार की संरचनाएँ होती हैं जो अपने-अपने विशिष्ट प्रकार्य सम्पादित करती हैं और कोई भी प्रकार्य हो वह बिना संरचना के सम्पादित नहीं हो सकता है। (कटारियाः पृ0 सं0 234) इसी तथ्य को आधार बनाकर रिग्स ने प्रत्येक समाज में पांच प्रकार के कार्य महत्वपूर्ण माने हैं।

1. आर्थिक कार्य, 2. सामाजिक कार्य, 3. संचारात्मक कार्य, 4. प्रतीकात्मक/संकेतात्मक कार्य, 5. राजनीतिक कार्य। (Riggs: P-99)

प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण अनेक उप-व्यवस्थाओं द्वारा होता है और ये उप-व्यवस्थाएँ एक-दूसरे से पारस्परिक अन्तःक्रिया करती रहती हैं। विभिन्न संरचनाऐं इन उप-व्यवस्थाओं के अधीन कार्य करती हैं। इन संरचनाओं, कार्यों और कार्य-विधियों का अध्ययन ही संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण कहलाता है।

17.4.3 आदर्श प्रतिमान उपागम

प्रो0 रिग्स ने विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन करते हुए अनेक 'आदर्श प्रतिमानों' का विकास किया है। रिग्स ने सर्वप्रथम सन् 1956 में कृषका (Agraria) तथा औद्योगिका (Industria) प्रतिमान निर्मित किया। इस प्रतिमान के अनुसार कुछ समाज कृषि आधारित होते हैं तो कुछ उद्योग प्रधान होते हैं। कृषि प्रधान समाजों में रिग्स ने चीन को तथा औद्योगिक समाजों में संयुक्त राज्य अमेरिका को सम्मिलित किया। "तात्विक रूप से, ये प्रतिमान वेबर के पारम्परिक और वैध-विवेकपूर्ण प्राधिकार प्रणालियों की निर्मितियों (निर्माण) के समान हैं। यह अन्तर अवश्य है कि जहाँ वेबर ने अपने प्रतिमानों की रचना में निगमनात्मक अभिगम का उपयोग किया है, वहीं रिग्स ने अपने प्रतिमानों को वैचारिक रूप प्रदान करने के लिए आगमनात्मक अभिगम का उपयोग किया है। (अरोडाः पृ0 97)

रिग्स की कृषका-औद्योगिका संरचनाएँ (स्त्रोत कटारियाः पृ0 235)

कृषका समाज	औद्योगिका समाज
आरोपित या मिले हुए मूल्य	अर्जित या उपलब्धि प्रधान मानक
क्षेत्रीयता या विशिष्टता (Particularism)	सार्वभौमिकता
विस्तृत प्रतिमान	विशेषीकरण (Specialiation)
सीमित सामाजिक एवं क्षेत्रीय गतिशीलता	उच्चत्तर सामाजिक तथा क्षेत्रीय गतिशीलता
सरल एवं स्थिर व्यावसायिक विभेद	पूर्ण विकसित व्यावसायिक प्रतिमान
विभिन्न प्रकार के संस्तरणों का अस्तित्व	समानतावादी वर्ग-व्यवस्था की उपस्थिति

रिग्स का मानना है कि निश्चित बिन्दु पर सभी समाज कृषका से औद्योगिका के रूप में रूपान्तरित होते हैं। इस सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों ने आपत्ति उठायी कि कोई भी समाज पूर्णतया कृषका या पूर्णतया औद्योगिका नहीं होता है, क्योंकि सभी कृषका समाज न्यूनाधिक गति से औद्योगिका की ओर बढ़ रहे हैं। जबकि औद्योगिका समाजों में कृषका समाज के लक्षण अनिवार्य रूप से व्याप्त हैं। कुछ समाज इन दोनों के बीच (मिश्रित) की स्थिति के भी हैं। अतः सन् 1957 में रिग्स ने संक्रमणकालीन (Transitia) नामक साम्यावस्था का प्रतिमान प्रस्तुत किया। संक्रमण कालीन समाज वे माने गये जो कृषका से औद्योगिका की ओर रूपान्तरित हो रहे हैं। संक्रमण कालीन समाज में दोनों प्रकार के समाजों के लक्षण समाहित माने गये। (कटारियाः पृ0 235)

इस उपागम की अत्यन्त आलोचना की गई, क्योंकि यह बहुत अधिक आम और भावात्मक था तथा ठोस यथार्थाता से भी उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

17.5 रिग्स द्वारा प्रतिपादित प्रतिमान

उपरोक्त उपागमों की आलोचना से मजबूर होकर रिग्स ने इसका परित्याग कर दिया और एक नवीन उपागम संयोजित, समपार्श्वीय एवं विवर्तित (Fused, Prismatic & Diffracted) का प्रतिपादन किया। इन तीनों प्रकार के समाजों की मुख्य विशेषताओं को रिग्स ने इस प्रकार विभाजित किया है-

संयोजित, समपार्श्वीय तथा विवर्तित समाजों की विशेषताऐं

संयोजित (Fused)	समपार्श्वीय (Prismatic)	विवर्तित (Diffracted)
क्षेत्रीयता या केन्द्रित विशिष्टवाद (Particularism)	चयनवाद (Selectivism)	सार्वभौमवाद(Universalism)
आरोपित(प्राप्त) (Ascription)	प्राप्ति (Attainment)	उपलब्धि (Achievement)
प्रकार्यात्मक फैलाव (Functional Diffusion)	बहु-प्रकार्यवाद (Poly-Functionalism)	प्रकार्यात्मक विशिष्टता (Functional Speciality)

प्रो0 रिग्स ने अपने इन प्रतिमानों को 'विभेदीकरण' की मात्रा के आधार पर विकसित किया है। विभेदीकरण की मात्रा के आधार पर तीनों समाजों की स्थिति इस प्रकार है-

अविभेदीकृत----------अर्द्धविभेदीकृत---------- -विभेदीकृत
संयोजित----------समपार्श्वीय ---------- -- विवर्तित

प्रो0 रिग्स ने तीनों प्रतिमानों का निर्माण आदर्श प्रकारों (Ideal types) के रूप में किया गया है जो किसी वास्तविक समाज में नहीं पाये जाते। यह अवश्य हो सकता है कि किन्हीं समाजों में इन आदर्श रूप प्रतिमानों की विशेषताएँ स्थूल रूप से विद्यमान हों। इन प्रतिमानों का उद्देश्य अध्ययन सामग्री को संकलित करना एवं एक स्वतः शोधात्मक प्रयोजन सम्पन्न करना है। (जोशी एवं पारीकः पृ0 150) प्रो0 रिग्स ने संयोजित-समपार्श्वीय-विवर्तित प्रतिमान में सर्वाधिक ध्यान समपार्श्वीय समाजों पर दिया। रिग्स के इन तीनों प्रकार के समाजों का विवरण इस प्रकार है-

17.5.1 संयोजित प्रतिमान (Fused Model)

रिग्स ने संयोजित समाज की अपनी अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए क्रान्ति पूर्व के थाईलैण्ड (सियाम) तथा साम्राज्यवादी चीन को चुना था। इन समाजों में कार्यों का कोई वर्गीकरण नहीं है और एक ही संरचना बहुत से कार्य करती है। यह समाज कृषि पर व्यापक रूप से निर्भर है तथा इनमें औद्योगिकता और आधुनिकता का अभाव है। इनकी अर्थव्यवस्था आपसी लेन-देन और वस्तु-विनिमय की प्रणाली पर आधारित है, जिसे प्रो0 रिग्स 'पुनर्वितरण मॉडल' कहते हैं। ऐसे समाजों में राजा और उसका परिवार प्रशासनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सरकार और जनता के बीच सम्बन्ध प्रायः क्षीण होते हैं। आरोपित मूल्य समाज में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं और जनता का व्यवहार पूर्णतः परम्परागत होता है। रिग्स ने आरोपितता, विशिष्टता तथा प्रकार्यात्मक फैलाव 'संयोजित(Fused) समाजों' के लक्षण बताये हैं।

17.5.2 विवर्तित प्रतिमान (Diffracted Model)

विवर्तित समाज आधुनिक तथा वैज्ञानिक संस्कृति के पर्याय माने जाते हैं। विवर्तित प्रतिमान के सभी संगठन और समाज वैज्ञानिक संरचनाओं और तार्किकता पर आधारित होते हैं, इनकी आर्थिक व्यवस्था बाजार आधारित होती है। विभिन्न संघों के अलग-अलग प्रकार्य होते हैं। संचार प्रौद्योगिकी उन्नत दशा में होती है। ऐसे समाजों की सरकारें

बेहतर लोक-सम्पर्क को प्राथमिकता देती हैं। वे जनता की आवश्यकताओं के प्रति सजग रहती हैं। ये सरकारें मानवाधिकारों को लेकर संवेदनशील होती हैं। जनता राष्ट्र के कानूनों का स्वेच्छा से पालन करती है। उपलब्धि, सार्वभौमिकता और प्रकार्यात्मक विशिष्टता रिग्स ने तीन प्रमुख गुणों का उल्लेख किया है जो विवर्तित समाजों में पाये जाते हैं। इन समाजों में विशेषीकरण का उच्च स्तर पाया जाता है तथा उपलब्धि प्रधान मूल्यों को महत्व दिया जाता है। ये समाज काफी गतिशील और विवर्तित प्रकृति के होते हैं।

17.5.3 समपार्श्वीय प्रतिमान(Prismatic Model)

यह रिग्स का सर्वाधिक लोकप्रिय तथा अध्ययन के मुख्य बिन्दु वाला प्रतिमान है जो विकासशील देशों की व्यवस्थाओं की व्याख्या करने का प्रारूप है। रिग्स के अनुसार समपार्श्वीय समाज वह होता है "जिसमें भेद करने का एक विशेष स्तर प्राप्त कर लिया गया हो, भूमिकाओं की विशेषज्ञता (संरचनाओं की) को प्राप्त कर लिया गया हो जो आधुनिक प्रोद्योगिकी से निपटने के लिए आवश्यक है। किन्तु इन भूमिकाओं को एकीकृत करने में वह विफल रहा है।'' (कटारियाः पृ0 241)

17.5.3.1 समपार्श्वीय प्रतिमान की विशेषताऐं

1. **विजातीयता (Heterogeneity)**- 'हीटरो' शब्द 'हीटरस' (Heterus) से लिया गया है जिसका अर्थ होता है- विभिन्न। एक प्रिज्मेटिक समाज में विभिन्न रूप संरचनाओं का एक साथ अस्तित्व होता है। ये संरचनाएँ एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न होती हैं। इनमें अतिवादी (धुव्रीय) गुण होते हैं जो समाज में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मामलों में व्यापक अन्तर पैदा करते हैं। इस प्रकार इन समाजों में अति-आधुनिक संरचनाऐं अत्यन्त पुरातन या परम्परागत संरचनाओं के साथ अस्तित्व में देखी जा सकती हैं। (माहेश्वरी पृ. 239) जब एक समाज में सर्वथा पृथक् प्रकृति की व्यवस्थाएँ, रिवाज, प्रथाएँ तथा विचारधाराऐं एक साथ रहती हैं या मिलती हैं तो यह विजातीयता कहलाती है। यहाँ सुविकसित संचार-साधन, बहुमंजिली इमारतें, वातानुकूलित भवन, विशेषीकृत सामाजिक-आर्थिक संस्थाएँ, भौतिक साधन, शैक्षणिक संस्थान तथा आर्थिक संसाधन मिलते हैं तो दूसरी ओर अभावों से जूझते गाँव भी होते हैं। सभी के लिए समान अवसर होते हुए भी कुछ ही व्यक्ति लाभ उठा पाते हैं। सत्ता का विशेष मोह बना रहता है। इस प्रकार प्रशासनिक प्रणालियों का भी लक्षण विजातीय होता है। एक प्रिज्मैटिक समाज में 'साला' आधुनिक 'कार्यालयों' और परम्परागत 'दरबारों' तथा कक्षों के साथ विद्यमान रहता है। सत्तारूढ़ दल समृद्ध लोगों की सहायता करता है तथा गरीबों की उपेक्षा की जाती है। अतः इससे समाज में 'क्रान्ति' का वातावरण निर्मित होता है।
2. **औपचारिकतावाद (Formalism)-** औपचारिकतावाद को परिभाषित करते हुए रिग्स कहते हैं कि औपचारिकतावाद निर्धारित और वास्तविक व्यवहारों एवं नियमों के बीच पायी जाने वाली विसंगति है। कहने का आशय यह है कि यदि निर्धारित मानकों और व्यवहृत(व्यवहार) के बीच कोई असंगति पायी जाती है तो यह औपचारिकतावाद की मात्रा की द्योतक है। यदि इन तत्वों के बीच सांमजस्य पाया जाय तो यह 'यथार्थवाद' को दर्शाता है। समपार्श्वीय समाज में औपचारिकतावाद की मात्रा अधिक पायी जाती है, जबकि संयोजित और विवर्तित समाजों में यथार्थवाद की मात्रा अधिक होती है। रिग्स के अनुसार 'यथार्थवाद-विधिवततावाद-द्विभाजन' की नीति का परिणाम यह है कि एक विवर्तित समाज की प्रशासनिक संस्थाओं में औपचारिक सुधार द्वारा प्रशासनिक व्यवहार में परिवर्तन भी आ सकता है, जबकि एक समपार्श्वीय समाज में सम्भवतः इस प्रकार के सुधार केवल सतही प्रभाव डालते हैं। (जोशी एवं पारीक- पृ. 153)

रिग्स संवैधानिक औपचारिकतावाद की बात भी करते हैं। इससे उनका आशय यह है कि समपार्श्वीय (प्रिज्मेटिक) समाज में कानून, सिद्धान्त और नियम संविधान में उल्लिखित होते हैं, लेकिन उनका व्यवहार में कभी भी पालन नहीं होता। मानक और मूल्य केवल सैद्धान्तिक आदर के विषय हैं और वास्तविक व्यवहार में इनका विलोम होता है। भारत में छुआछूत इसका उदाहरण है। (माहेश्वरी: पृ0 240)

3. **परस्पर-व्यापन (Over-Lapping)-** परस्पर व्यापन का अर्थ है- ''जिस सीमा तक जिसे हम प्रशासनिक व्यवहार कहते हैं, में गैर-प्रशासनिक मापदण्ड जैसे- राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक या धार्मिक इत्यादि अपना प्रभाव अधिक दिखाते हैं। उसी प्रकार जिसे हम आर्थिक व्यवहार कहते हैं, में अनार्थिक विचारों का तथा राजनीतिक व्यवहार में अराजनीतिक तत्वों का प्रभाव दिखाई देता हैं।'' (कटारिया: पृ0 243)। वास्तव में, परस्पर-व्यापन समपार्श्वीय समाजों में एक विवर्तित समाज की औपचारिक रूप से विशिष्टीकृत संरचनाओं और संयोजित प्रकार की अविशेषीकृत संरचनाओं के सह-अस्तित्व के परिणामस्वरूप होता है। संयोजित और विवर्तित समाज में परस्पर-व्यापन की समस्या नहीं पायी जाती है। दूसरी ओर, एक समपार्श्वीय समाज में यद्यपि नई और आधुनिक सामाजिक संरचनाओं को निर्मित किया जाता है, पर सार रूप में पुरानी अथवा अविशिष्टीकृत संरचनाऐं ही सामाजिक प्रणाली में प्रमुख स्थान रखती है।

समपार्श्वीय समाज में परस्पर-व्यापन अपने आप को कई रूपों में प्रकट करता है। ये निम्न हैं-

1. **भाई-भतीजावाद (Nepotism)-** एक विवर्तित समाज में पारिवारिक निष्ठा के विचार को सरकारी व्यवहार से पृथक रखा जाता है, जबकि एक संयोजित समाज में राजनीतिक प्रशासनिक प्रणाली में आनुवंशिकता (पैतृकता) का लक्षण रहता है। इसलिए ऐसे समाज में रक्त सम्बन्धों या पारिवारिक सम्बन्धों को अधिक महत्व दिया जाता है। दूसरी ओर, समपार्श्वीय समाज में नवीन औपचारिक संस्थाऐं पारिवारिक और रक्त सम्बन्धों पर आधारित कर दी जाती हैं, इसके अतिरिक्त प्रशासन में सार्वभौम मानकों की उपेक्षा कर दी जाती है, जबकि प्रशासनिक भर्ती में भाई-भतीजावाद के आधार पर प्रशासनिक नियुक्तियों का विरोध किया जाता है। किन्तु आचरण में इस व्यवस्था को अपनाया जाता है। (जोशी एवं पारीक: पृ0 154)।
2. **बहु-सम्प्रदायवाद (Poly-Communalism/ Clects)-** सामान्यतः मानव समाज में परिवार प्राथमिक समूह तथा मित्र-मंडली एवं जान-पहचान इत्यादि द्वितीयक समूह होते हैं। परिवार का महत्व प्रायः अधिक भी रहता है। किन्तु रिग्स के अनुसार, ''समपार्श्वीय समाजों में ऐसे समूह बन जाते हैं जो संगठन के संस्थापक तरीकों का प्रयोग करते हैं। किन्तु उनमें पारम्परिक ढंग से बिखरे हुए संकीर्ण या साम्प्रदायिक ध्येय बने रहते हैं।'' रिग्स ने इनको 'क्लेक्ट्स' कहा है, जबकि संयोजित समाजों में सेक्ट्स (Sects) तथा विवर्तित समाजों में 'क्लब'(Club) की उपस्थिति मानी जाती है। समपार्श्वीय समाजों क्लेक्ट्स अर्थात् नवसमूह किसी विशेष जाति, धर्म, भाषा या सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उस वर्ग से सम्बन्धित सरकारी अधिकारी के बल पर दूसरों की अवहेलना की जाती है तथा अपने सदस्यों की सेवा अधिक की जाती है। (कटारिया: पृ0 246)।
3. **'बाजार-कैण्टीन' प्रतिमान (Bazar-Canteen Model)**- समपार्श्वीय समाजों की आर्थिक उप-व्यवस्था को रिग्स ने बाजार-कैण्टीन की संज्ञा दी है। विवर्तित समाजों में आर्थिक व्यवस्था माँग और वितरण के बाजारी कारकों पर निर्भर करती है तथा आर्थिक विचार ही बाजार का नियमन करते हैं। जबकि संयोजित समाजों में 'एरेना' कारक, जैसे- धार्मिक, सामाजिक एवं पारिवारिक विचार आर्थिक

लेन-देन को निर्धारित करते हैं, तथा कीमत (Price) का प्रश्न बहुत कम उठाया जाता है। समपार्श्वीय समाजों में बाजार तथा ऐरेना दोनों घटक एक साथ प्रभावित होते हैं तथा आर्थिक के साथ-साथ अनार्थिक कारक भी सक्रिय रहते हैं जो इन समाजों की आर्थिक संरचनाओं को प्रभावित करते हैं। परिणाम स्वरूप 'कीमत की अनिश्चितता' बनी रहती है। (कटारिया: पृ0 243)

समपार्श्वीय समाज में आर्थिक संगठन एक अनुदान प्राप्त कैण्टीन के समान कार्य करते हैं तथा विशेष सुविधा प्राप्त समूहों और राजनीतिक रूप से प्रभावशाली व्यक्तियों को निम्नतर दरों पर वस्तुएँ और सेवाएँ बेची जाती हैं। इसके अतिरिक्त ये आर्थिक संगठन एक 'मातहत' कैण्टीन के लक्षण रखते हैं, तथा इस प्रकार बाहरी समुदाय के सदस्यों से वस्तुओं तथा सेवाओं के लिए अधिक कीमत वसूल करते हैं।

4. **बहुमानकवाद (Poly-Normativism)**- एक समपार्श्वीय समाज में मानकों और नियमों के लिए विन्यास और परम्परागत तरीके साथ-साथ रहते हैं। इन समाजों में लोग विभिन्न प्रकार के मूल्यों और मानकों को मानते हैं। इससे समाज में असमानता आती है साथ ही इन समाजों में मानक हाथी के दाँतों के समान होते हैं। जिस प्रकार हाथी के दाँत खाने और दिखाने के लिए अलग-अलग होते हैं, उसी प्रकार लोग दिखावा तो अलग मानकों का करते हैं और काम में किन्हीं और को लेते हैं। आधुनिक और परम्परागत विचार एक साथ लगातार संघर्ष के साथ अस्तित्व में रहते हैं। (नरेन्द्र कुमार थोरी: पृ0 176)
5. **प्राधिकार बनाम नियंत्रण (Authority Vrs, Control)-** समपार्श्वीय समाज में सत्ता अधिक केन्द्रीकृत और एकाग्र होती है, जबकि नियंत्रण स्थानिक और बिखरी हुई प्रकृति का होता है। इस प्रकार सत्ता और नियंत्रण अलग-अलग संरचनाओं में निहित होता है। सत्ता और नियंत्रण के पृथक्करण के कारण परस्पर-व्यापन की समस्या पैदा होती है। इस प्रकार के परस्पर-व्यापन से राजनीतिक-प्रशासनिक सम्बन्ध प्रभावित होते हैं। रिग्स के अनुसार समपार्श्वीय समाजों में ''असन्तुलित राजनीतिक व्यवस्था'' पायी जाती है, जिसके अन्तर्गत राजनीतिक प्रशासनिक तंत्र पर प्रशासकों का प्रभुत्व होता है, बावजूद इसके कि राजनीतिज्ञों के पास औपचारिक रूप से नीति-निर्माण का अधिकार विद्यमान होता है। (थोरी: पृ. 176-177)

17.5.3.2 समपार्श्वीय समाज की प्रशासनिक उप-प्रणाली (SALA MODEL)

समपार्श्वीय समाजों की प्रशासनिक उप-व्यवस्था को रिग्स ने 'साला मॉडल' के रूप में वर्णित किया है। विवर्तित समाजों में इनके पूरकों को 'ब्यूरो' तथा संयोजित समाजों में 'चैम्बर' नाम दिया गया है।

संयोजित समाज	समपार्श्वीय समाज	विवर्तित समाज
चेम्बर	साला	ब्यूरो

'साला' स्पैनिश भाषा का शब्द है- जिसका अर्थ सरकारी कार्यालय, धार्मिक सम्मेलन, कमरा, पवैलियन आदि होते हैं। रिग्स के अनुसार समपार्श्वीय समाजों की प्रशासनिक उपव्यवस्था अर्थात् साला प्रतिमान में कुछ लक्षण संयोजित समाजों के 'चेम्बर' के तो कुछ विवर्तित समाजों के 'ब्यूरो' के मिलते हैं। यद्यपि 'साला प्रतिमान' में परम्परागत सम्बन्धों का प्रभाव दिखता है, किन्तु प्रशासनिक तार्किकता एवं कार्यकुशलता कहीं दिखाई नहीं देती है। परस्पर व्यापन का एक अन्य उदाहरण 'साला प्रतिमान' है जो समपार्श्वीय समाजों की एक विशेषता है। रिग्स के अनुसार 'साला प्रतिमान' के लक्षण मिस्र, ब्राजील, इथियोपिया तथा थाईलैण्ड में स्पष्टतः दिखाई देते हैं।

रिग्स कहते हैं कि नीति-निर्माण की प्रक्रिया में समपार्श्वीय समाज के 'साला' अधिकारियों की भूमिका, विवर्तित समाज के प्रशासनिक अधिकारियों की भूमिका की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण होती है। प्रशासनिक भर्ती प्रणाली में भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार, अपव्यय, विधानों के प्रशासन में अकुशलता, सत्ता पाने और निजी हितों की रक्षा

करने की अभिलाषा आदि साला की कुछ अन्य विशेषताएँ हैं। प्रो0 रिग्स का कथन है कि ''प्रिज्मैटिक-साला मॉडल हमें संक्रमणशील समाजों की अनेक समस्याओं से निपटने की क्षमता प्रदान करता है। ये समस्याएँ स्थापित सामाजिक विज्ञानों के जाल से छनकर बाहर आती हैं।''

प्रो0 रमेश अरोड़ा रिग्स की 'साला प्रतिमान' की तुलना वेबर की 'नौकरशाही' से तुलना इस प्रकार दर्शायी हैं-

नौकरशाही (वेबर)	**साला (रिग्स)**
कार्यालयों का पदसोपानात्मक व्यवस्था में संगठित होना।	विजातीयता।
प्रत्येक पद का परिभाषित कार्यक्षेत्र।	परस्पर-व्यापन।
अधिकारियों का उपलब्धि के आधार पर चयन।	भर्ती का आधार प्राप्ति एवं भाई-भतीजावाद।
नियमों द्वारा प्रशासन।	औपचारिकतावाद।
सार्वभौमिकतावाद तथा निर्वैयक्तिक कार्यप्रक्रिया-, प्रशासनिक अधिकारियों को पद से सम्बन्धित सत्ता प्राप्त होती है।	आधिकारिक व्यवहार में वैयक्तिकृत मानक।
निजी कोष का सार्वजनिक कोष से पृथक्करण।	व्यापक आधिकारिक भ्रष्टाचार।

17.6 विकास की अवधारणा

आधुनिक समाजों में, विशेषतः विकासशील राष्ट्रों के परिप्रेक्ष्य में लोक प्रशासन का स्वरूप 'विकास प्रशासन' में परिवर्तित हो गया है जो निस्संदेह पूर्ववर्ती नियामकीय प्रशासन से किंचित भिन्न है। निश्चित तौर पर यह अन्तर मात्रात्मक ही है। उच्च से उच्चतर तथा श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर स्थिति की ओर अग्रसर होना 'विकास' कहलाता है जो मानव जीवन में अपेक्षित सुधार लाने के लिए किया जाता है। (कटारिया: पृ0 249) रिग्ज के अनुसार ''विकास किसी व्यवस्था की उस क्षमता में वृद्धि का द्योतक है जो उसके भौतिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक पर्यावरण को इच्छानुसार आकार देने में सहायक हो।'' विकास की अवधारणा से रिग्स का अभिप्राय विकास, विवर्तन के बढ़ते हुए स्तर के कारण सामाजिक व्यवस्था की स्वायत्तता (विवेक) में वृद्धि करने वाली प्रक्रिया है। रिग्स के अनुसार, 'विवेक' विकल्पों में से चुनने की क्षमता है। जबकि 'विवर्तन' समाज में एकीकरण (समाकलन) और विभेदीकरण (अवकलन) के अंश (मात्रा) का प्रतिबिम्बन करता है। रिग्स ने एकीकरण और विभेदीकरण को विकास के प्रक्रिया के दो आधारभूत तत्वों के समान माना है। (जोशी एवं पारीक: पृ0 159)

एकीकरण दो महत्वपूर्ण तत्वों पर निर्भर करता है, पहला- प्रभाव (निर्णय लेने और लागू करने की क्षमता) और दूसरा- सहभागिता (कानून की स्वीकृति तथा कानून एवं नीतियों को कार्यान्वित करने की इच्छा)। इसी प्रकार सहभागिता दो तरह की हो सकती है। एक- सहभागिता में लोगों की रूचि और दूसरा- सहभागी की क्षमता।

लोगों में जितनी अधिक सहभागिता की रूचि और क्षमता होगी, सरकारी मामलों में उतनी ही अधिक सहभागिता बढ़ेगी। इन तत्वों को निम्न चित्र द्वारा समझा जा सकता है। (प्रसाद एवं मनोहर: पृ0 254)

रिग्स की विकास अवधारणा

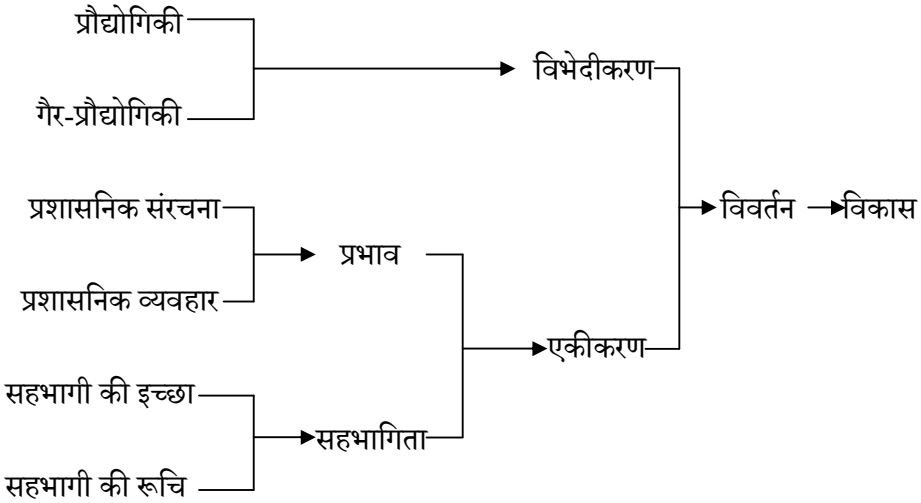

17.7 रिग्स के विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन

लोक प्रशासन विषय पर प्रो0 रिग्स का प्रभाव काफी महत्वपूर्ण है। उनके प्रतिमान इस विषय के लिए अमूल्य हैं, फिर भी रिग्स के प्रतिमानों की शैक्षिक जगत में काफी आलोचना हुई है। सीसोन के अनुसार रिग्स के प्रतिमानों की शब्दावली बहुत कठिन तथा अटपटी है। सीसोन कहते हैं कि रिग्स को समझने के लिए तीन बार पढ़ना पड़ता है। एक बार उनकी भाषा समझने के लिए, दूसरी बार उनकी अवधारणा समझने के लिए तथा तीसरी बार यह जानने के लिए कि उसमें सीखने की कुछ सामग्री है या नहीं। प्रिज्म, फ्यूज्ड, डिफ्यूज्ड, डिफ्रेक्टेड तथा रिफ्रेक्टेड जैसे भौतिक शास्त्रीय शब्द एवं साला, क्लेक्ट्स, पेरयाह, एसक्रिप्टिव, अटेचमेण्ट-एचीवमेंट भेद इत्यादि दुविधा उत्पन्न करते हैं। अतः चैपमैन ने सुझाया है कि रिग्स को अपनी शब्दावली समझाने हेतु एक शब्दकोश बनाना चाहिये था। (कटारिया: पृ0 254)

ऐसा लगता है कि रिग्स ने प्रिज्मैटिक समाजों की केवल उन्हीं क्रियाओं को अध्ययन के लिए चुना है जो पश्चिम के मितव्ययता, कार्यकुशलता और नैतिकता के आदर्श मानकों का उल्लंघन करती दिखाई देती हैं। उन्होंने संक्रमणशील समाजों में पाये जाने वाले नैतिकता, कार्यकुशलता और मिव्ययता के मापदण्डों की विकसित देशों की कार्यकुशलता, अपव्यय एवं अनैतिकता की स्थिति से तुलना करने का पूरक कार्य नहीं किया। (अरोड़ा: पृ. 110-11).

हाहनबीन ली का कहना है कि रिग्स के प्रतिमानों से सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझना कठिन है। अगर प्रशासन का लक्ष्य, व्यवस्था को बनाये रखने की बजाय उसमें परिवर्तन लाना है तो रिग्स के प्रतिमान सर्वथा अनुपयोगी सिद्ध होते हैं। (कटारिया: पृ0 254)

चैपमैन का यह मानना है कि एक समान मापदण्ड की कमी से संयोजित, समपार्श्वीय तथा विवर्तित समाजों का आंकलन ठीक से नहीं हो सकता है।

रिग्स की यह मान्यता है कि औपचारिकतावाद ज्यादातर या हर परिस्थिति में अकर्मण्य है, अपने आप में गैर-पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण को इंगित करता है। रिग्स के इस नकारात्मक औपचारिकतावाद को संतुलित करने के लिए वाल्सन ने सकारात्मक औपचारिकतावाद की अवधारणा प्रस्तुत की है। (कटारिया: पृ0 255).

रिग्स की विकास की अवधारणा पर दयाकृष्ण मुख्यतः आलोचना करते हैं 'Administrative change' में छपे अपने लेख ''Shall we be diffracted? A critical comment and Fred W. Riggs Prismatic

societies and public administration'' में दयाकृष्ण, रिग्स के विचारों पर प्रहार करते हैं। वे यह जानने का प्रयास करते हैं कि रिग्स के मॉडल विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण करने में कितने उपयोगी हैं। वे कहते हैं कि रिग्स के मॉडल विकास प्रक्रिया की अवस्थाओं का पता लगाने में कोई सहायता नहीं करते हैं। उनके अनुसार जब प्रत्येक समाज में परिवर्तन अवश्यम्भावी है तो फिर रिग्स का डिफ्रेक्टेड मॉडल अव्यवहारिक और अनावश्यक हैं। जब रिग्स मानते हैं कि अमेरिका भी प्रिज्मैटिक समाज बनने वाला है तो दयाकृष्ण विकास की अवधारणा की पृष्ठभूमि में समाजों का त्रिस्तरीय वर्गीकरण अतार्किक मानते हैं। रिग्स एकीकरण और विभेदीकरण को विकास के दो प्रमुख तत्व मानते हैं, पर विकास के लिए आवश्यक एकीकरण और विभेदीकरण की मात्रा को पहचानना मुश्किल है। दयाकृष्ण के अनुसार रिग्स विकास की प्रक्रिया में बाहरी बलों की भूमिका को पहचानने से चूक गये। वे यह भी अनुभव करते हैं कि रिग्स का यह मानना हर स्थिति में सही नहीं होता कि एकीकरण प्रभाव और सहभागिता के परिणामस्वरूप होता है। साथ ही रिग्स वैज्ञानिक और प्रोद्योगिकीय कारणों के साथ-साथ विभेदीकरण के सामाजिक आयामों को भी भूल गये। विकास के दृष्टिकोण में अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य का अभाव भी रिग्स की इस अवधारणा की एक सीमा है। (प्रसाद एवं मनोहर: पृ. 257)

समस्त प्रकार की विसंगतियों तथा आलोचनाओं के बावजूद भी कटु सत्य यही है कि रिग्स ने तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा विकासशील समाजों के अध्ययन में कठोर परिश्रम किया है तथा निस्संदेह सिद्धान्त-निर्माण के नये द्वार खोले हैं। इसीलिए फैरल हैडी कहते हैं, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्भवतः रिग्स एकमात्र ऐसे विद्वान हैं जिनका योगदान सर्वोच्च है।'' (कटारिया: पृ. 255)

अभ्यास प्रश्न-

1. 'प्रिज्मैटिक-समाज' का उदाहरण है-
   क. भारत ख. अमेरिका ग. फ्रांस घ. जापान
2. प्रिज्मैटिक समाज की प्रशासनिक उपव्यवस्था रिग्स के मत में क्या कहलाती है?
   क. बाजार-कैण्टीन ख. साला ग. क्लब घ. क्लैक्ट्स
3. रिग्स ने निम्न में से किसे प्रिज्मैटिक समाज की विशेषता बताया?
   क. औपचारिकतावाद ख. रीतिवाद ग. यथार्थतावाद घ. क और ख दोनों
4. ' Ecology of Public Administration' पुस्तक के रचयिता कौन है?
   क. हैनरी फेयोल ख. मैक्स वेबर ग. एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स घ. लूथर गुलिक
5. प्रशासन के किस क्षेत्र में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है?
6. रिग्स ने समपार्श्वीय समाज के कौन-कौन सी विशेषताएँ बताई हैं?

17.8 सारांश

प्रो0 रिग्स लोक प्रशासन के एक प्रसिद्ध विद्वान हैं और प्रशासनिक प्रतिमान के सृजनकर्ता के रूप में उन्हें जाना जाता है। रिग्स का तुलनात्मक लोक प्रशासन तथा विकास प्रशासन के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुये वे कहते हैं कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन आदर्शात्मक, विशिष्टता, गैर-पारिस्थितिकीय से अनुभवमूलक, सामान्यपरकता तथा पारिस्थितिकीय अध्ययनों की ओर उन्मुख है। रिग्स प्रशासनिक व्यवस्थाओं का अध्ययन, पारिस्थितिकीय, संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक एवं आदर्श-प्रतिमान उपागम को संज्ञान में लेते हुए करते हैं। वे स्वयं लोक प्रशासन के अध्ययन में पारिस्थितिकीय उपागम का समर्थन करते हैं।

रिग्स ने इन्हीं उपागमों को अपनाते हुये अनेक आदर्श प्रतिमान रचे। सन् 1957 में प्रतिपादित इन्होंने 'एग्रेरिया-ट्रांजीशिया-इण्डस्ट्रिया प्रतिमान' विद्वानों के सामने लाये। इसके पश्चात इन्हीं प्रतिमानों को पुनः संशोधित करते हुए संयोजित, समपार्श्वीय एवं विवर्तित प्रतिमान के रूप में अभिव्यक्त किये। रिग्स समपार्श्वीय पर सबसे अधिक ध्यान केन्द्रित करते हैं। वे समपार्श्वीय समाज की तीन विशेषताओं का उल्लेख करते हैं- विजातीयता, औपचारिकतावाद तथा परस्पर-व्यापन। विजातीयता से रिग्स का तात्पर्य परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों तथा व्यवहारों की एक साथ उपस्थिति से है। औपचारिकतावाद उस स्तर का द्योतक है जो कि औपचारिक रूप से स्थापित और व्यावहारिक रूप से लागू मानकों के बीच पाया जाता है। परस्पर-व्यापन की व्याख्या विस्तार से करते हुए, रिग्स पाँच आयामों का जिक्र करते हैं- भाई-भतीजावाद, बहुसम्प्रदायवाद, बाजार-कैण्टीन प्रतिमान, बहुमानकतावाद तथा नियंत्रण बनाम सत्ता। रिग्स समपार्श्वीय समाज की प्रशासनिक उपव्यवस्था को 'साला' प्रतिमान की संज्ञा देते हैं। विकास की अपनी अवधारणा को व्यक्त करते हुए रिग्स का मानना है कि ''विकास किसी व्यवस्था की उस क्षमता में वृद्धि का द्योतक है जो उसके भौतिक, मानवीय तथा सांस्कृतिक पर्यावरण को इच्छानुसार आकार देने में सहायक हो।'' नि:संदेह प्रो0 रिग्स के विचार पूर्णतः मौलिक हैं और लोक प्रशासन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

17.9 शब्दावली

आदर्श प्रारूप- मानकीय संकल्पनात्मक अवधारणा जो उच्चकोटि का हो।

पारिस्थितिकीय- एक प्रशासनिक व्यवस्था का अपने पर्यावरण से क्रिया-प्रतिक्रिया या अन्योन्यक्रिया (Interaction)।

मानकीय- कोई व्यवस्था जो आदर्शात्मक प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करें। जैसे- क्या होना चाहिए?

विवर्तित- एक ऐसा समाज जो पूर्णत: औद्योगिकृत हो तथा जहाँ का जीवन स्तर उच्च हो, जहाँ प्रशासनिक व्यवस्था ब्यूरो प्रकार की हो।

संयोजित- एक ऐसा समाज या व्यवस्था जो पूर्णत: अविकसित या कृषि प्रधान हो। यहाँ कि प्रशासनिक व्यवस्था चैम्बर प्रकार की होती है।

समपार्श्वीय- एक ऐसा समाज जो संक्रमण की अवस्था से गुजर रहा है। जहाँ संयोजित व विवर्तित दोनों प्रकार के समाजों का गुण पाया जाता है तथा प्रशासनिक व्यवस्था 'साला' प्रकार की होती है।

प्रतिमान- किसी वास्तविक घटना या सत्यता का चित्रीय निगमन।

17.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क, **2.** ख, **3.** घ, **4.** ग, **5.** तुलनात्मक लोक प्रशासन में, प्रशासनिक प्रतिमान निर्माण के क्षेत्र में, विकास की अवधारणा के क्षेत्र में, **6.** रिग्स ने तीन विशेषताऐं बतलायी हैं- विजातीयता, औपचारिकतावाद तथा परस्पर-व्यापन।

17.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेशाचलम् प्रसाद, प्रसाद व सत्यनारायण, (सम्पादित) Administrative Thinkers, Sterling 1991, New Delhi.
2. नरेन्द्र कुमार थोरी: प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आरबीएसए पब्लिसर, जयपुर। आर0 पी0जोशी, अंजू पारीक: प्रशासनिक विचारक, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर एवं नई दिल्ली।

3. एस0आर0 माहेश्वरी, Administrative Thinkers, Macmillan India Ltd., New Delhi. 1998.
4. रमेश कुमार अरोड़ा, तुलनात्मक लोक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1999.
5. J. W. Beuss, "Human Ecology", London, Oxford Unicersity Press, 1935.
6. Fred W. Riggs, "Administration in Developing Countires : The Theory of Prismatic Socieities", Boston, Houghton Mifflin Co., 1964.

17.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. नरेन्द्र कुमार थोरी: प्रमुख प्रशासनिक विचारक, आर0बी0एस0ए0 पब्लिसर, जयपुर।
2. आर0पी0जोशी, अंजू पारीक: प्रशासनिक विचारक, रावत पब्लिकेशन्स जयपुर एवं नई दिल्ली।
3. डॉ. सुरेन्द्र कटारिया: प्रशासनिक चिन्तक, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, जयपुर एवं दिल्ली।

17.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक-प्रशासन के क्षेत्र में एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स के योगदान का संक्षेप में विवरण दीजिए तथा उनके प्रिज्मैटिक-साला प्रतिमान की व्याख्या कीजिये।
2. एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स द्वारा प्रिज्मीय और साला समाजों के अपने अध्ययन में अपनाये गए उपागम और क्रिया-पद्धति की समीक्षा कीजिये।

इकाई- 18 राबर्ट के0 मर्टन

इकाई की संरचना

18.0 प्रस्तावना
18.1 उद्देश्य
18.2 राबर्ट के0 मर्टन- एक परिचय
18.3 मर्टन का प्रकार्यात्मकवादी दृष्टिकोण
18.4 प्रकार्य का अर्थ
18.5 प्रकार्यात्मकता का सिद्धान्त
18.6 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान
    18.6.1 विषय
    18.6.2 व्यक्तिनिष्ठ व्यवस्थाऐं
    18.6.3 उद्देश्यगत परिणाम
    18.6.4 प्रकार्य इकाई
    18.6.5 प्रकार्यात्मक अपेक्षाऐं
    18.6.6 यांत्रिकीकरण की अवधारणा
    18.6.7 संरचनात्मक प्रसंग
    18.6.8 सत्यापन की समस्या
18.7 प्रकार्यवाद की मान्यताऐं
18.8 नौकरशाही का आकार्य सिद्धान्त
18.9 नौकरशाही के अकार्य
18.10 अकार्य के दुष्प्रभाव
18.11 मर्टन के विचारों की आलोचना
18.12 सारांश
18.13 शब्दावली
18.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
18.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
18.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
18.17 निबन्धात्मक प्रश्न

18.0 प्रस्तावना

राबर्ट के0 मर्टन (सन् 1910 से 2002) एक अमेरिकी समाजशास्त्री हैं और उसको समाजशास्त्र के क्षेत्र में उसके द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यवाद, मध्य अभिसीमा सिद्धान्त तथा सन्दर्भ समूह सिद्धान्त के लिए याद किया जाता है। लेकिन क्योंकि उसने मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की आलोचनात्मक समीक्षा की है, इसलिये उसे समकालीन प्रशासनिक चिन्तकों में शामिल किया जाता रहा है। उसके द्वारा सम्पादित पुस्तक 'Reader in Bureacracy' और उसके द्वारा लिखित पुस्तक 'Bureaucratic Structure and Personality' विशेष रूप से नौकरशाही के सन्दर्भ में उसके विचारों को स्पष्ट करती है।

मर्टन के द्वारा प्रतिपादित लगभग सभी सिद्धान्त प्रकार्यात्मकतावाद की अवधारणा पर टिके हुये हैं। प्रकार्यवाद को एक नये रूप में प्रस्तुत करके मर्टन ने समाजशास्त्रीय विश्लेषण को मानवशास्त्र के प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास किया है। उसने समाजशास्त्रीय सन्दर्भ में प्रकार्यवादी विश्लेषण की व्याख्या अपने ग्रन्थ 'Social Theory and Social Structure' में की है। उसने प्रकार्यवाद में अनेक नई अवधारणाओं का समावेश करके इसे अधिक उपयोगी और व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया है।

जहाँ तक नौकरशाही का सवाल है, राबर्ट मर्टन ने नौकरशाही के अकार्यात्मक पक्षों का अध्ययन करने पर बहुत जोर दिया है। नौकरशाही के अकार्य (Dysfunctions) सम्बन्धी सिद्धान्त इस मान्यता पर आधारित हैं कि संगठन नौकरशाही का एक ऐसा प्रतिमान है जिसकी रचना, खोज तथा धारणा मानव इतिहास में मिलती है।

मर्टन का विश्वास है कि नौकरशाही द्वारा व्यवसायिक मनोविकृति तथा प्रशिक्षित अक्षमता का विकास किया गया है। यहाँ मर्टन, मार्क्स के भी समीप नजर आता है, लेकिन उसने नौकरशाही की व्याख्या में वर्ग-संघर्ष को नजर-अन्दाज किया है।

18.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- जान पाओगे कि किस तरह राबर्ट मर्टन ने अपने समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रकार्यवाद का महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रतिपादित किया है।
- किस तरह उसने समाजशास्त्रीय विश्लेषण को मानवशास्त्र के प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास किया, यह समझ सकोगे।
- प्रकार्य का अर्थ और प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रतिमान क्या हैं, यह जान पाओगे।
- प्रकार्यवाद की मान्यताऐं क्या हैं, यह जान सकोगे।
- नौकरशाह का अकार्य सिद्धान्त क्या हैं, यह समझ सकोगे।
- नौकरशाही को अकार्यों के दुष्परिणाम क्या हैं, यह जान सकोगे।
- मर्टन के विचारों की आलोचना किस आधार पर की गयी है यह समझ सकोगे।

18.2 राबर्ट के0 मर्टन- एक परिचय

राबर्ट के0 मर्टन (सन् 1910 से 2002) एक अमेरिकन समाजशास्त्री था। इसलिए मूल रूप से उसकी भूमिका समाजशास्त्र के क्षेत्र में अधिक रही। समाजशास्त्र को विज्ञान का रूप देकर उसने इस क्षेत्र में बड़ा योगदान किया है। मर्टन अपनी अनेक अवधारणाओं के लिये जाना जाता है जिनमें 'Unintended Consequences' और रोल मॉडल(Role Model) बहुत प्रसिद्ध है। उसने एक और विचार भी रखा जिसे उसने 'Self Fulfilling Prophecy'(स्वयं की भविष्यवाणी को पूर्ण करना) का नाम दिया। इस विचार को आधुनिक समाजशास्त्र, राजनीतिक और आर्थिक सिद्धान्त तथा प्रशासन का केन्द्रीय बिन्दु माना जाता है। सेल्फ-फुलफिलिंग प्रोफेसी (Self Fulfilling Prophecy) एक ऐसी प्रक्रिया है, जहाँ एक विश्वास या अपेक्षा चाहे वह सही हो या गलत किसी स्थिति को प्रभावित करती है या यह तय करती है कि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह किस तरह व्यवहार करता है।

मर्टन प्रशासन को भी एक सामाजिक क्रिया मानता है और यहाँ भी प्रशासकों के मध्य एक सामाजिक भूमिका (Social Role) की बात करता है।

मर्टन का जन्म 4 जुलाई, सन् 1910 को फिलाडेल्फिया में हुआ। उसकी माता 'इदा रसोवस्काया' स्वयं एक समाजवादी महिला थी। मर्टन अपनी माँ के विचारों से बहुत प्रभावित था। मर्टन को अपने बचपन में जो अनुभव प्राप्त हुये, उनके आधार पर उसने सामाजिक सरंचना का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। विशेष रूप से सन्दर्भ गुट (Reference Group) के क्षेत्र में सन् 1994 में। मर्टन ने लिखा कि दक्षिण फिलाडेल्फिया में उसका जिन युवाओं से वास्ता पड़ा वे प्रत्येक प्रकार की पूँजी के मालिक थे- सामाजिक पूँजी, सांस्कृतिक पूँजी, मानव पूँजी और इन सब से बढ़कर श्रम पूँजी, बस कमी थी तो केवल व्यक्तिगत पूँजी की। दो विभूतियों का मर्टन पर गहरा प्रभाव पड़ा। इनमें एक थे, जार्ज ई0 सिम्पसन और दूसरे थे पिटरिम ऐ0 सोरोकिन, जिनके निर्देशन में मर्टन ने टेमपिल विश्वविद्यालय और हार्वर्ड विश्वविद्यालय में शोध अध्ययन किये। अपने शोधों के कारण वह इतने प्रसिद्ध हुये कि उन्हें अनेक विश्वविद्यालयों में प्रोफेसर का पद प्रदान किया गया।

'विज्ञान का समाजशास्त्र' उनके अध्ययन का सबसे प्रिय विषय था। लेकिन इस विषय के अतिरिक्त मर्टन ने संगठन और मध्य क्रिया-क्षेत्र (Middle Range) सिद्धान्त को भी अपना विषय बनाया। वह जिन सिद्धान्तों के सन्दर्भ में जाते हैं, वे हैं- सकारात्मकतावाद (Positivism), असकारात्मकतावाद (Anti-Positivism), प्रकार्यात्मकतावाद (Functionalism), टकराव सिद्धान्त (Conflict Theories), मध्य क्रिया क्षेत्र (Middle-Range), संरचनावाद (Structuralism) तथा अन्तःक्रियावाद (Interactions)।

राबर्ट मर्टन पर टेलकॉट पार्सन्स का सबसे गहरा प्रभाव पड़ा। वह पार्सन्स को अपना बौद्धिक गुरू मानते थे। उन्होंने पार्सन्स के विचारों को नई दिशा दी और इन विचारों को नई अवधारणाओं से संजोने का काम किया।

राबर्ट मर्टन के द्वारा अनेक पुस्तकों की रचना की गयी। 'Scince, Technology and Society in seventeenth Century England' उनकी प्रथम रचना है जो वर्ष 1938 में प्रकाशित हुई। जहाँ तक प्रशासन के क्षेत्र का सम्बन्ध है मर्टन ने अपने ग्रन्थ 'Reader in Bureaucracy' में अपने प्रशासकीय विचारों को समेटने का काम किया है। यह पुस्तक मुख्यतः मैक्स वेबर की समालाचनाओं तथा उनके प्रभाव को प्रदर्शित करती है।

18.3 मर्टन का प्रकार्यात्मकतावादी दृष्टिकोण

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, राबर्ट मर्टन एक समाजशास्त्री थे, इसलिये उनका दृष्टिकोण पूरी तरह समाजशास्त्रीय था। राजनीति, अर्थव्यवस्था और प्रशासन को वह समाज के महत्वपूर्ण घटक मानते थे और उनका विश्वास था कि यह घटक सामाजिक घटनाओं से प्रभावित भी होते हैं और उनको प्रभावित भी करते हैं। प्रशासन के सन्दर्भ में उनका विषय नौकरशाही और प्रशासनिक संगठन था। लेकिन इससे पहले कि उनके नौकरशाही पर विचारों को परखा जाये, अनिवार्य है कि पहले उनकी उस अवधारणा को समझा जाये जो उनके प्रशासनिक विचारों की आधारशिला है। अथार्त यहाँ हमारा विषय है- प्रकार्यात्मकतावाद।

राबर्ट मर्टन का तर्क यह है कि आकड़ों (Data) की व्याख्या यदि उन परिणामों के सन्दर्भ में की जाये जिनमें वे जन्म लेते हैं, तब इस स्थिति को प्रकार्यात्मकतावाद कहा जायेगा। यह घटना कार्यात्मकतावाद (Functionalism) का केन्द्रीय बिन्दु होगी। दुर्खीम और पार्सन्स के समान मर्टन ने समाज का विश्लेषण सामाजिक संरचनाओं के सन्दर्भ में किया है।

मर्टन के अनुसार सामाजों को स्वयं को बनाये रखना एक वास्तविक लक्ष्य होता है। इसके लिये समाज अनुकूलन की प्रक्रिया से गुजरते हैं और प्रकार्यों (Functions) का सहारा लेते हैं। मर्टन से पहले भी समाजशास्त्रियों ने किसी

एक सामाजिक सरंचना या किसी अन्य संरचना का विश्लेषण करके अनुकूलन की प्रक्रिया को दर्शाया। लेकिन प्रकार्यवादियों का यह विचार एकपक्षीय था, क्योंकि वे जिन निष्कर्षों पर पहुँचते थे वे सकारात्मक होते थे।

प्रकार्यवाद समाज की व्याख्या की एक पद्धति है। उसे मानवशास्त्रीय सन्दर्भ में लिया गया है। लेकिन मर्टन का विचार है कि जिस तरह मानवशास्त्रीय सन्दर्भ में प्रकार्यवाद का प्रयोग किया गया है उससे समाज की वास्तविकता का पता नहीं चल सका। इस कमी को पूरा करने के लिये मर्टन ने अपने ग्रन्थ 'Social Theory and Social Structure' में लिखा कि प्रकार्यवादी दृष्टिकोण वास्तव में एक त्रिकोणात्मक सम्बन्ध अर्थात सिद्धान्त, पद्धति और आकड़ों के सम्बन्ध पर विचार करता है। यह इन्हीं घटकों पर निर्भर है। इन तीनों में अभी तक पद्धति का पक्ष सबसे कमजोर रहा है। जिन विद्वानों ने अभी तक प्रकार्यवाद की व्याख्या की, उनमें से अधिकांश ने इसके सैद्धान्तिक रूप पर ही अधिक जोर दिया, जबकि कुछ विद्वानों ने आकड़ों के सन्दर्भ में ही प्रकार्यवादी विश्लेषण पर जोर दिया।

ऐसे विद्वान कम हैं जिन्होंने पद्धति को अपने प्रकार्यवादी विश्लेषण में शामिल किया। अतः मर्टन यह मानते हैं कि प्रकार्यवादी चिन्तन अभी ना तो पूर्ण है और ना ही परिपक्व।

18.4 प्रकार्य का अर्थ

प्रकार्य (Function) का अर्थ समझना अनिवार्य है। मर्टन को दु:ख है कि 'प्रकार्य' जैसा शब्द सदा ही भ्रम का शिकार रहा है। यहाँ प्रश्न प्रकार्य शब्द का नहीं वरन् प्रकार्यवादी उपागम के प्रयोग का है। समय और परिस्थितियों के अनुरूप प्रकार्य का अर्थ बदलता रहता है। प्रकार्य का अर्थ समारोह भी होता है। मर्टन के अनुसार किसी व्यवसाय को भी प्रकार्य कह सकते हैं। मैक्स वेबर तथा ब्लण्ट ने व्यवसाय के सन्दर्भ में ही प्रकार्य को लिया है। यह एक अर्थशास्त्रीय अवधारणा है। राजनीतिशास्त्र में प्रशासकों के कार्यों को जिनका सम्बन्ध उनके पद से होता है, प्रकार्य कहा जाता है। इसी अवधारणा के फलस्वरूप राजनीतिशास्त्र में 'अधिकारी' शब्द की उत्पत्ति हुई। गणित में प्रकार्य शब्द का प्रयोग एक चर का दूसरे चर से सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिए किया गया है। जब यह कहा जाता है कि किसी समाज की जन्म-दर उसकी आर्थिक दशाओं का प्रकार्य है, तब जन्म दर और आर्थिक दशाओं के पारम्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए प्रकार्य शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस शब्द का प्रयोग एक कार्य-पद्धति के लिए भी होता है। इस अवधारणा का आधार जीव विज्ञान है। यहाँ प्रकार्य का अभिप्राय एक ऐसी दशा से है, जिसमें कोई सावयवी प्रक्रिया शरीर की प्रणाली को बनाये रखने में अपनी भूमिका अदा करे। मर्टन इसी सावयवी अवधारणा को समाजशास्त्र और मानवशास्त्र में अपनाने पर बल देता है और प्रकार्य को इस इसी सन्दर्भ में परिभाषित करता है।

मर्टन के अनुसार समाज अपनी व्यवस्था को उसी तरह बनाये रखना चाहता है, जिस तरह शरीर अपनी प्रणाली को बनाये रखना चाहता है। मर्टन के अनुसार प्रकार्य वे देखे जा सकने वाले परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन अथवा सामंजस्य को सम्भव बनाते हैं। इस तरह संक्षेप में प्रकार्य शब्द को जिन अर्थों में लिया गया है वे हैं, पहला- सांस्कृतिक अर्थ में (समारोह इत्यादि), दूसरा- आर्थिक अर्थ में (व्यवसाय आदि), तीसरा- राजनीतिशास्त्रीय अर्थ में (अधिकारी के प्रकार्य), चौथा- गणितिय अर्थ में (चर सम्बन्धी), पांचवा- कार्य-पद्धति के सन्दर्भ में (सावयवी), तथा छठा- समाजशास्त्रीय अर्थ में (समाज के अनुकूलन)।

18.5 प्रकार्यात्मकता का सिद्धान्त

राबर्ट मर्टन के अनुसार 'प्रकार्य' प्रकार्यात्मक विश्लेषण का अन्तिम शब्द नहीं है। प्रकार्य के अनेक कार्य हैं और इसलिए प्रकार्य के स्थान पर अनेक शब्दों का समय और परिस्थितियों के अनुसार प्रयोग भी किया गया है। उदाहरण के लिये- उपयोग, उपयोगिता, उद्देश्य, प्रेरणा, प्रयोजन, लक्ष्य तथा परिणाम आदि शब्द प्रकार्य के अर्थ में लिये जाते हैं। यह ऐसे शब्द हैं जो निश्चित तौर पर अपने अर्थ में एक-दूसरे से अलग हैं, लेकिन जहाँ प्रकार्यात्मक विश्लेषण का सवाल आता है, यह शब्द तक भ्रम पैदा कर सकते हैं जब इन्हें अनुशासित ढंग से प्रयोग में ना लाया जाये। ऐसी स्थिति में यह शब्द प्रकार्यात्मक विश्लेषण की प्रक्रिया को उलझाव में डाल सकते हैं। मर्टन का तर्क है कि यदि यह कहा जाय कि दण्ड का उद्देश्य अपराधों को रोकना है तो ऐसी स्थिति में दण्ड के उद्देश्य और दण्ड के प्रकार्य में भेद करना कठिन हो जायेगा। इस आधार पर मर्टन ने तर्क दिया है कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिये जरूरी है कि जो शब्द प्रकार्य के मिलते-जुलते अर्थ को स्पष्ट करते हैं, उनका प्रयोग करते समय बहुत तटस्थ और सावधान रहा जाये।

18.6 प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान

प्रकार्यात्मक विश्लेषण पर अनेक विद्धानों ने काम किया है, लेकिन राबर्ट मर्टन ने जिस नजरिये से प्रकार्यात्मक विश्लेषण का प्रतिमान (Paradigm for Functional Analysis) तैयार किया है, वह अपने में असाधारण है। उससे पूर्व जिन समाजशास्त्रियों ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण की आवश्यकता पर जोर दिया था, उनमें अनेक प्रकार की कमियां भी थी और उनमें पारस्परिक विरोधाभास भी थे। इसलिए मर्टन ने महसूस किया कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण को तभी व्यवस्थित, अनुशासित और अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है, जब उसके लिए एक त्रुटिहीन और निश्चित प्रतिमान तैयार किया जाय।

मर्टन के अनुसार किसी भी व्यवस्था के तथ्यों का अध्ययन एक समाजशास्त्री का लक्ष्य होता है। इसके लिए जरूरी है कि वैज्ञानिक नजरिये और तकनीक का प्रयोग किया जाय। इस दृष्टिकोण से मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण का एक प्रतिमान तैयार किया। उसका लक्ष्य था कि कुछ निश्चित अवधारणाओं के सन्दर्भ में प्रकार्यात्मक विश्लेषण सम्बन्धी कठिनाईयों को दूर किया जा सके। अतः उसके द्वारा प्रस्तुत प्रतिमान में जिन अवधारणाओं को शामिल किया गया है, वे इस प्रकार हैं-

18.6.1 विषय

सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन एक लक्ष्य है। प्रकार्यात्मक विश्लेषण इसी व्यवस्था के तथ्यों को सामने रखता है। वास्तव में यह तथ्य सामाजिक तथ्य होते हैं। इन्हीं सामाजिक तथ्यों को राबर्ट मर्टन 'विषय'(Item) कहता है। उसकी परिकल्पना यह है कि सामाजिक भूमिका, समूह संगठन, सामाजिक सरंचना तथा सामाजिक नियन्त्रण ऐसे विषय हैं जो प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए सार्थक हैं। इन विषयों के अतिरिक्त सामाजिक प्रक्रिया, सांस्कृतिक स्वरूप, संवेग, व्यवहार के सामाजिक मानदण्ड इत्यादि भी ऐसे विषय हो सकते हैं जो प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए महत्व रखते हैं। मर्टन के अनुसार किसी भी प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिये इन सभी विषयों से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन अनिवार्य बन जाता है।

18.6.2. व्यक्तिनिष्ठ व्यवस्थाऐं

राबर्ट मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिए अनेक व्यक्तिनिष्ठ व्यवस्थाओं (Subjective Disposition) की बात करता है। इनको विषय प्रेरणाऐं भी कहा जा सकता है। उसका तर्क यह है कि कुछ दशाओं में प्रकार्यात्मक

विश्लेषण के लिये व्यक्ति की प्रेरणाओं का भी अध्ययन अनिवार्य हो जाता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये भी वह वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करता है। उसके अनुसार प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिये यह आवश्यक है कि पहले ही इस तथ्य का पता लगा लिया जाय कि किस तरह की प्रेरणाओं के अध्ययन के लिये हमें किस तरह के तथ्यों अथवा आकड़ों को एकत्रित करने की जरूरत पड़ती है। इसी तरह यह जानना भी जरूरी है कि उन तथ्यों की प्रकृति दूसरे तथ्यों से किस तरह अलग है और उनका प्रयोग किस तरह किया जा सकता है।

18.6.3 उद्देश्य परिणाम

प्रकार्यात्मक विश्लेषण का तीसरा पहलू उद्देश्यगत परिणामों (Objective Consequences) से सम्बन्धित है। जब मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण की बात करता है तो उसका मुख्यतः दो समस्याओं से वास्ता पड़ता है, प्रथम- सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत उन सामाजिक तथ्यों के योगदान को किस तरह मालूम किया जाय, जिसमें किसी तथ्य के प्रकार्य छिपे हुये हैं। दूसरे- क्योंकि प्रत्येक तथ्य को एक विषयगत प्रेरणा होती है, तब इस प्रेरणा को उद्देश्यपूर्ण परिणामों से प्रथक करके किस तरह समझा जाय?

राबर्ट मर्टन के अनुसार सामाजिक घटनाओं या प्रक्रियाओं के परिणाम गुणात्मक होते हैं। हमें उनको समझना है। यह तभी सम्भव है, जब उनका सम्पूर्ण स्वरूप हमारे समाने होता है। समझना यह होता है कि किस प्रक्रिया के परिणाम प्रकार्य के रूप में सामने आये या अकार्य के रूप में उपस्थित हुये। इस बात से यह स्पष्ट है कि प्रर्काय की अवधारणा और अकार्य की अवधारणा में गहरा अन्तर है। इस अन्तर को स्पष्ट करते हुये मर्टन ने लिखा कि प्रकार्य ऐसे परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन को सम्भव बनाते हैं, जबकि अकार्य वे खुले परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन को कम करते हैं।

जहाँ तक दूसरी समस्या का सवाल है (कि किस तरह विषयगत प्रेरणा को उद्देश्यपूर्ण परिणामों से प्रथक करके समझा जाये), राबर्ट मर्टन के अनुसार किसी प्रक्रिया के प्रकार्य प्रत्येक स्थिति में समान नहीं होते हैं। यह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों हो सकते हैं।

राबर्ट मर्टन के अनुसार प्रत्यक्ष अथवा घोषित प्रकार्य वे व्यक्तिनिष्ठ नतीजे हैं जो किसी सामाजिक व्यवस्था में अुकूलन की विशेषता पैदा करते हैं तथा जो इस व्यवस्था में भागीदारों द्वारा स्वीकृत होते हैं। जबकि परोक्ष या निहित कार्य वे हैं, जिन्हें आम लोगों के द्वारा पहचाना नहीं जा सकता है। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण की अवधारणा के सन्दर्भ में प्रकार्य, अकार्य, प्रत्यक्ष प्रकार्य तथा परोक्ष या निहित प्रकार्य की अवधारणाओं को प्रस्तुत करके प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अर्न्तगत आने वाली कठिनाईयों और समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया है। वास्तव में प्रकार्यात्मक विश्लेषणकर्ता को यह ज्ञात करना चाहिए कि जिन विषयों और प्रक्रियाओं का वह अध्ययन कर रहा है उनके कौन से परिणाम प्रकार्य हैं और कौन से परिणाम अकार्य के रूप में नजर आते हैं। यहाँ मर्टन का इशारा ऐसी स्थिति के बारे में भी है, जब कोई प्रक्रिया प्रत्यक्ष प्रकार्य के स्थान पर निहित प्रकायों को स्पष्ट करने लगती है। मर्टन के अनुसार इस स्थिति और उसके कारणों को जानना जरूरी है।

18.6.4 प्रकार्य इकाई

प्रकार्य इकाई (Functional Unit) चौथी अवधारणा है। इसे एक परीक्षार्थी को इस तरह समझाना है कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण के अर्न्तगत जिस 'विषय'(Item) का प्रकार्य के आधार पर विश्लेषण किया जाता है, उस विषय को इकाई कहा जा सकता है। यहाँ परिकल्पना यह है कि जिस 'विषय' का प्रकार्य के आधार पर विश्लेषण किया जाता है वह विषय या इकाई यदि किसी व्यक्ति अथवा उप-समूह के लिये कोई प्रकार्य करती है तो सम्भव है कि वह इकाई किसी दूसरे व्यक्ति या उप-समूह के लिये अकार्य करे। यह बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो सकती है। मान लीजिए सरकार निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन या किसी विशेष मुद्दे पर समर्थन देती है। यह समर्थन पूँजीपतियों के

लिये प्रकार्यात्मक हो सकता है, लेकिन यही समर्थन निर्धन समूहों के लिये अकार्यात्मक हो सकता है। मनोवैज्ञानिक उपागम का प्रयोग करते हुये राबर्ट मर्टन इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि प्रकार्य जब क्रियाशील होते हैं तो उनकी अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हो सकती है। उदाहरण के लिये वे मनोवैज्ञानिक प्रकार्य, समूह प्रकार्य, सामाजिक प्रकार्य तथा सांस्कृतिक प्रकार्य हो सकते हैं।

18.6.5 प्रकार्यात्मक अपेक्षाऐं

राबर्ट मर्टन के अनुसार प्रकार्यात्मकता की कुछ आवश्यकताऐं या अपेक्षाऐं होती हैं। इनका विश्लेषण जरूरी है। यह विश्लेषण उन परिस्थितियों के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए जिससे वे जन्म लेती या पनपती हैं। इसका अर्थ यह है कि किसी विशेष इकाई द्वारा किया जाने वाला कार्य तभी प्रकार्य हो सकता है, जब व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह की एक विशेष परिस्थिति के सन्दर्भ में वह एक इच्छित और उपयोगी प्रभाव को स्पष्ट करता है।

18.6.6 यांत्रिकीकरण की अवधारणा

राबर्ट मर्टन प्रकार्यात्मक विश्लेषण के लिये जिस अवधारणा को चुनता है, उसको वह यांत्रिकी (Mechanical) मानता है। वह इस यांत्रिकी की शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान की यांत्रिकी से तुलना करता है। उसका कहना है कि जिस तरह शरीर अथवा मस्तिष्क के प्रकार्यों की प्रणाली अथवा यांत्रिकी और कार्य-विधि के स्पष्ट स्वरूपों की चर्चा की जाती है, वैसा ही अध्ययन समाजशास्त्र में प्रकार्यात्मक विश्लेषण में किया जाता है। मर्टन के अनुसार प्रकार्यवादी विश्लेषण में भूमिका विभेद, संस्थागत मांगों की उत्पत्ति, मूल्यों की अनुशासित व्यवस्था, श्रम का सामाजिक विभाजन आदि ऐसी क्रिया-विधियाँ अथवा यांत्रिकी हैं, जिनकी सहायता से प्रकार्यात्मक विश्लेषण को अधिक अनुशासित और अर्थपूर्ण बनाया जा सकता है।

यहाँ यह भी याद रखना होगा कि एक तरह की अनेक इकाईयाँ हो सकती हैं जो एक ही तरह के प्रकार्य करती हैं। अथार्त प्रकार्यात्मक विश्लेषण में इकाईयों से सम्बन्धित अनेक विकल्प हो सकते हैं जो एक ही प्रकार के प्रकार्य करते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि प्रकार्यात्मक विश्लेषण में अनेक प्रकार्यात्मक विकल्प मौजूद होते हैं।

18.6.7 संरचनात्मक प्रंसग

अब यह स्पष्ट है कि प्रकार्यों के अनेक विकल्प होते हैं, इन विकल्पों के कारण सामाजिक व्यवस्थाओं में विभिन्नताऐं होती हैं। ये विभिन्नताऐं सीमित होती हैं। राबर्ट मर्टन ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुये लिखा ''प्रकार्यात्मक विकल्पों के कारण परिवर्तन की सम्भावना कम हो जाती है, क्योंकि सामाजिक संरचना के तत्व एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं।'' अनेक विद्वान यह मानते हैं कि सामाजिक संरचना के तत्व प्रकार्यात्मक विकल्पों द्वारा उत्पन्न किये जाने वाले परिवर्तन को रोकने में अधिक प्रभावी नहीं होते हैं, लेकिन मर्टन ऐसा नहीं मानता। उसके अनुसार सामाजिक सरंचना के सभी तत्व एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। इसका अर्थ यह है कि किसी सामाजिक संरचना में एक इकाई के प्रकार्य का विश्लेषण एक विशेष सरंचना के सन्दर्भ में ही किया जाना चाहिए।

एक और तथ्य यह है कि मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण के रूप को गतिशील (Dynamic) और परिवर्तनशील माना है, जबकि अन्य समाजशास्त्रियों ने इसे स्थिर और अपरिवर्तनशील माना है।

18.6.8 सत्यापन की समस्या

राबर्ट मर्टन के अनुसार प्रकार्यात्मक विश्लेषण की एक प्रमुख समस्या है, समाजशास्त्रीय अध्ययनों में उसके निष्कर्षों को सत्यापित करना और उसके सत्य को स्वीकार करना। एक तरह से यह सत्यापन विश्लेषण को वैद्यता प्रदान करता है। लेकिन यहाँ सवाल यह है कि इस सत्यापन को वैद्य माना जाय या नहीं? इस बारे में मर्टन ने लिखा

'प्रकार्यात्मक विश्लेषण से हमारा तात्पर्य केवल एक ऐसी पद्धति से है, जिसके द्वारा समाजशास्त्रीय तथ्यों को स्पष्ट किया जाता है। यह उपागम तथ्यों का संकलन करके इस क्षेत्र में कोई भूमिका नहीं निभाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राबर्ट मर्टन के द्वारा प्रस्तुत प्रकार्यात्मक प्रारूप में प्रकार्यात्मक विश्लेषण से सम्बन्धित अनेक समस्याओं तथा अवधारणाओं का समावेश किया गया है, जिसके आधार पर समाजशास्त्री सामाजिक आकड़ों का प्रकार्यात्मक विश्लेषण वैज्ञानिक ढंग से करते हैं। यहाँ इस सवाल का उत्तर आसानी से मिल सकता है कि राबर्ट मर्टन को क्यों 'आधुनिक प्रकार्यवाद' का नेता माना जाता है। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि मर्टन ने जिस तरह सामाजिक (प्रशासनिक भी) समस्याओं का निदान खोजने का प्रयास किया है और इस क्षेत्र में पूर्व की कमियों को दूर किया है, उसके कारण उसे श्रेय देना चाहिए।

18.7 प्रकार्यवाद की मान्यताऐं

प्रकार्यवाद से सम्बन्धित अनेक मान्यताएँ अस्तित्व में हैं, जिनकी स्थापना समय-समय पर अनेक विद्वानों ने की है। यहाँ हम संक्षेप में इन प्रचलित मान्यताओं को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। अध्ययन से पता चलता है कि अतीत में ऐसी तीन मान्यताऐं प्रचलित थीः प्रथम, सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक इकाइयाँ करती हैं। यह इकाइयाँ सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ प्रकार्य जरूर करती हैं, दूसरे, सामाजिक इकाइयों के यह प्रकार्य ही एक सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था के अस्तित्व को बनाये रखते हैं तथा तीसरे, 'प्रकार्य' प्रत्येक तत्व अथवा इकाई के अपरिहार्य नतीजे होते हैं।

राबर्ट मर्टन ने पूर्व के समाजशास्त्रियों द्वारा स्वीकृत मान्यताओं को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। उनकी आलोचनात्मक विवेचना करने के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचा कि मानवशास्त्रियों ने जिस मान्यता के आधार पर सामाज की प्रकार्यात्मक एकता का उल्लेख किया है, उसकी वास्तविकता का परीक्षण करना जरूरी है। मर्टन से पूर्व रैडक्लिफ ब्राउन तथा मैलीनास्की ने यह विचार रखा था कि एक सामाजिक सरंचना का निर्माण करने वाली सभी इकाईयाँ सामाजिक व्यवस्था के लिये या उसे बनाये रखने के लिये कुछ ना कुछ प्रकार्य अवश्य करती हैं। मर्टन इस विचार से तभी सहमत हैं, जब प्रकार्य द्वारा किये गये कार्य की वास्तविकता का परीक्षण कर लिया जाय।

यहाँ एक बात और समझना है प्रकार्यवाद के बारे में, एक परम्परागत मान्यता यह भी थी कि विभिन्न इकाइयों के प्रकार्य किसी सामाजिक या सांस्कृतिक व्यवस्था के अस्तित्व को बनाये रखते हैं। यहाँ भी मर्टन सहमत नहीं है। वह यह मानने को तैयार नहीं है कि कोई इकाई अपने प्रकार्य के द्वारा सामाजिक या सांस्कृति व्यवस्था की यथास्थिति को बनाये रखने में सक्षम होती है। मर्टन के अनुसार विश्लेषणकर्ता को एक दूसरे पहलू पर भी नजर डालनी चाहिए। यह हो सकता है कि कुछ परम्पराएँ कई पीढ़ियों तक समाज की यथास्थिति बनाये रखें, लेकिन एक समय ऐसा भी आता है जब वे परम्पराऐं अक्षमता के कारण अनुपयोगी हो जाये और स्वयं समाज में परिवर्तन का कारण बन जाये। अतः मर्टन किसी भी प्रकार्य की प्रकृति की सार्वभौमिकता से इन्कार करता है।

इस तरह एक बात स्पष्ट है कि राबर्ट मर्टन द्वारा प्रकार्यवाद की अवधारणा उस प्रकार्यवादी अवधारणा से बिल्कुल अलग है जो मानवशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत की गई है। यहाँ संक्षेप में समझना यह है कि मर्टन ने यह विचार रखा कि सामाजिक संरचना के विभिन्न तत्वों की क्रमबद्धता उसके प्रकार्यों के कारण ही सम्भव होती है। मर्टन यह भी स्पष्ट करना चाहता है कि संस्कृति का कोई भी तत्व सदैव प्रकार्यवाद नहीं होता है। वह कभी-कभी अकार्य भी हो सकता है।

अब आप एक बात पूछ सकते हो कि राबर्ट मर्टन के प्रकार्यवाद के बारे में अब तक जो कुछ भी लिखा गया है उसका सम्बन्ध प्रशासन या प्रबन्धन से कैसे है और क्यों मर्टन को एक प्रशासनिक चिन्तक माना जाना चाहिए?

यह प्रश्न स्वभाविक है। लेकिन आगे चलकर जब नौकरशाही के सन्दर्भ में मर्टन के विचारों की हम विवेचना करेगें तो इस प्रश्न का उत्तर स्वतः मिल जायेगा।

18.8 नौकरशाही का अकार्य सिद्धान्त

राबर्ट मर्टन द्वारा लिखित 'Social Theory and Social Structure' एक ऐसी रचना है, जिसमें प्रशासकीय संगठन की विवेचना की गई है। जैसा कि अब तक आपने पढ़ा मर्टन मूल रूप से एक समाजशास्त्री है, इसलिये उसने प्रशासनिक समस्याओं को भी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से सुलझाने का काम किया है। इस सम्बन्ध में उसका विशेष ध्यान नौकरशाही की ओर जाता है। यहाँ वह नौकरशाही को प्रर्कायों से ना जोड़ कर आकार्यों (Dysfuctions) से जोड़ता है।

नौकरशाही का अकार्य सिद्धान्त इस सोच पर आधारित है कि प्रशासकीय संगठन नौकरशाही का एक ऐसा प्रतिमान (Model) है जिसकी रचना, खोज और धारणा मानव के सभ्य इतिहास में मिलती है। इसके द्वारा समय-समय पर विभिन्न कार्यों का निष्पादन किया जाता रहा है, जिसके कारण इसका समय-समय पर स्वरूप भी बदलता रहा है। यह रूप कभी तर्कसंगत होता है और कभी अतर्कसंगत (irrational), कभी एकाधिकारी होता है और कभी लोकतान्त्रिक। व्यक्तियों के मूल्य नौकरशाही के निर्णयों को तय करते हैं। अक्सर ऐसा होता है कि जिन अनिवार्य कार्यों का निष्पादन नौकरशाही करती है वैसे कामों को लोग पसंद नहीं करते हैं, नतीजा यह होता है कि अनेक बार अवांछनीय परिणाम सामने आने लगते हैं।

यहाँ आप देखेंगे कि राबर्ट मर्टन बहुत कुछ हद तक मार्क्स के समीप पहुँचता नजर आता है। वह मार्क्स के इस विचार से सहमत है कि उत्पादन के साधनों और उत्पादन के सम्बन्धों से व्यक्ति (मजदूर) नियंत्रित होता है और प्रशासन का नौकरशाहीकरण व्यक्तियों को उत्पादन के साधनों से अलग कर देता है। यहाँ मर्टन यह कहना चाहता है कि नौकरशाही एक ऐसा तंत्र है जो एकाधिकारिक प्रवृति अपनाकर और अपनी चतुराई का प्रयोग करके सार्वजनिक बहस को टालता रहता है। नौकरशाही का उद्देश्य होता है यथास्थिति को बनाये रखना। ऐसा करके वह अपनी स्थिति को मजबूत करती है।

18.9 नौकरशाही के अकार्य

मार्क्स के विचारों का समर्थन करते हुये राबर्ट मर्टन इस नतीजे पर पहुँचा कि नौकरशाही के द्वारा व्यवसायिक तथा प्रशिक्षित अक्षमता का विकास किया गया है। वह व्यवसायिक मनोविकृति (Psychic Illness) तथा प्रशिक्षित अक्षमता को समान अर्थ वाले शब्द मानता है। यहाँ वह एक ऐसी स्थिति को दर्शाता है, जहाँ सब कुछ उल्टा होता है। अर्थात किसी की योग्यता; अयोग्यता या अपर्याप्तता के रूप में प्रकट होती है। प्रशिक्षण से कार्यों का सफल निष्पादन होना चाहिए, लेकिन ऐसा ना होकर अपर्याप्त प्रतिक्रियाऐं स्पष्ट होती हैं। कुशलता के स्थान पर अक्षमता जाहिर होती है और यह सब कुछ नौकरशाही मनोवृत्ति के कारण होता है, जिसे मर्टन व्यवसायिक मनोविकृति और प्रशिक्षित अक्षमता कहता है।

नौकरशाही, नियमों से चिपके रहना चाहती है। नियमों के प्रति विश्वास स्वयं में एक लक्ष्य बन जाता है। नतीजा यह होता है कि जो वास्तविक लक्ष्य हैं वे गौड़ हो जाते हैं। ऐसा भटकाव पैदा करती हैं जो साध्य है, वह साधन का रूप ले लेता है। इस तरह संगठन कुरूप और विकृत होने लगता है। उसके अन्तर्गत जड़ता, शीघ्रता से ढलने की अयोग्यता, उपचारवाद तथा अन्ततः विधिवाद का विकास होता है। यह सब कुछ नौकरशाही के अकार्यों के कारण होता है।

18.10 अकार्य के दुष्प्रभाव

नौकरशाही के अकार्य प्रशासनिक संगठन और समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। नौकरशाही की संरचना में केन्द्रीकरण, पास्परिक एकाग्रता तथा अलगाव की भावना पैदा होती है। स्थिति ऐसी पैदा होने लगती है कि नौकरशाही से जुड़े लोग(अधिकारी) जनता अर्थात उनके प्रतिनिधियों की सहायता करने के बजाय व्यक्तिगत हितों की पूर्ति करने लगते हैं। यहाँ मर्टन इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि नौकरशाही के अन्तर्गत जो सकारात्मक नतीजे सामने आते हैं, उनका प्रभाव भी संगठन पर नकारात्मक पड़ता है जो जनहित के विरूद्ध होता है। मर्टन एक आश्चर्यजनक निष्कर्ष यह निकलता है कि जो हमें नौकरशाही की अच्छाई नजर आ रही है वास्तव में वह एक बुराई है, क्योंकि उससे दुष्क्रियाएँ सामने आती हैं। वे जनहित में नहीं होती, बल्कि केवल एक गुट के निहित स्वार्थो की पूर्ति करती है।

मर्टन के अनुसार नौकरशाही की एक और विशेषता है, वह है उसका निर्वैयक्तिक (Impersnal) होना। अर्थात एक ऐसी मानसिकता का पनपना जिसमें मित्रवत मानवीय भावनाऐं नाम मात्र को भी नहीं होती हैं। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि नौकरशाही की संरचना व्यक्तित्व विहिन है। लेकिन दोनों अर्थों में परिणाम नकारात्मक होते हैं। नौकरशाही तथा जनता के मध्य तनाव की स्थिति पैदा होती है, जिसके कारण पारस्परिक रिश्ते क्षीण होने लगते हैं। अतः यह स्थिति अकार्यों को उजागर करती है।

18.11 मर्टन के विचारों की आलोचना

मूल रूप से राबर्ट मर्टन एक समाजशास्त्री है और उसके द्वारा प्रतिपादित मुख्य सिद्धान्त सामाजिक संरचनाओं के बारे में ही हैं। इन सिद्धान्तों में 'प्रकार्यात्मकता का सिद्धान्त' बहुत प्रसिद्ध है। इसी सिद्धान्त के आधार पर उसने नौकरशाही पर बहस की है। यद्यपि उसके विचारों की सराहना भी की गई है, लेकिन उनकी आलोचना भी हुई है। आलोचना का विशेष निशाना उसके द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यात्मकता की अवधारणा है। यहाँ उसके प्रकार्यवादी सिद्धान्त और नौकरशाही के अकार्य सिद्धान्त की संपेक्ष में आलोचना प्रस्तुत है-

1. राबर्ट मर्टन का यह दावा है कि प्रकार्यवाद इस मान्यता पर निर्भर है कि सामाजिक व्यवस्था सर्वसम्मति के सिद्धान्त पर आधारित है। इस मान्यता से यह निष्कर्ष निकलता है कि सभी संस्थाएँ व्यापक रूप से कुछ मूल्यों और लक्ष्यों को स्पष्ट करती हैं। समाज के अधिकतर लोग इन मूल्यों और लक्ष्यों को स्वीकार कर लेते हैं। इस बात से यह सिद्ध होता है कि मर्टन के प्रकार्यात्मकतावाद में असहमति और संघर्ष के पहलू के लिये कोई स्थान नहीं है।
2. अध्ययन से ऐसा लगता है कि मर्टन का प्रकार्यवादी सिद्धान्त मार्क्स के नौकरशाही के नजरिये के समीप है, लेकिन ऐसा नहीं है। मार्क्स का प्रत्येक सिद्धान्त 'वर्ग-संघर्ष' पर टिका हुआ है। लेकिन मर्टन के सिद्धान्त में यद्यपि वर्ग की अवधारणा को तो स्वीकार किया गया है, लेकिन उसने वर्ग-संघर्ष के तथ्य की अनदेखी की है।
3. राजनीतिशास्त्रियों ने मर्टन के प्रकार्यात्मकतावाद की आलोचना इस आधार पर की है कि उसने सामाजिक संस्थाओं की संरचना और प्रकार्य में सत्ता तथा सम्प्रभुता की भूमिका के महत्व को स्वीकार नहीं किया है।
4. अब जहाँ तक प्रकार्यवाद के अन्तर्गत समाज में सर्व-सम्मति और संघर्ष की भूमिका का सवाल है, मर्टन ने इन दोनों में सन्तुलन को लगभग नकार दिया है। यह सही है कि मर्टन का प्रकार्यवाद परम्परावादी प्रकार्यवाद से अधिक महत्वपूर्ण है, लेकिन फिर भी उसमें कमियाँ हैं।

5. राबर्ट मर्टन ने नौकरशाही के जिस अकार्य सिद्धान्त का खाका प्रस्तुत किया है, उससे लगता है कि उसने नौकरशाही को बिल्कुल नकारात्मक रूप में लिया है। यह एक सन्तुलित विचार नहीं है। नौकरशाही में कुछ अच्छाईयाँ भी हैं जो इसको अपरिहार्य बनाती हैं। मर्टन ने इस तथ्य की अनदेखी की है।

कुल मिलाकर राबर्ट मर्टन द्वारा प्रस्तुत प्रकार्यवाद और उस पर आधारित उसका नौकरशाही के बारे में दृष्टिकोण काफी उलझा हुआ नजर आता है, यद्यपि उसके सिद्धान्त को स्वीकार भी किया गया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. राबर्ट के. मर्टन द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक का नाम क्या है?
   क. हिस्ट्री ऑफ सोशल थॉट
   ख. सोशल थ्योरी एण्ड सोशल स्ट्रकचर
   ग. शॉप मैनेजमेन्ट, दि प्रिंस्पिल्स ऑफ सांइटिफिक मैनेजमेन्ट
   घ. दि मैनेजिंग ऑफ आर्गनाइजेशन
2. वह पुस्तक जिसमें मर्टन ने मैक्स वेबर की समालोचना की है, वह है-
   क. रीडर इन ब्योरियोक्रेसी ख. मास परसुऐशन
   ग. कन्टीन्यूटीज ऑन सोशल रिसर्च घ. सोशल थ्योरी एण्ड सोशल स्ट्रकचर
3. राबर्ट के0 मर्टन मूल रूप से एक-
   क. मनोवैज्ञानिक है। ख. राजनीतिशास्त्री है।
   ग. मानवशास्त्री है। घ. समाजशास्त्री है।
4. राबर्ट मर्टन जिस सिद्धान्त का प्रतिपादक, है वह है-
   क. निर्णय-निमार्ण का सिद्धान्त ख. वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त
   ग. वैज्ञानिक प्रबन्धन का सिद्धान्त घ. प्रकार्यात्मकता का सिद्धान्त
5. नौकरशाही के अकार्य सिद्धान्त का प्रतिपादक है-
   क. मैक्स वेबर ख. मार्क्स ग. हीगेल घ. राबर्ट मर्टन

18.12 सारांश

1. राबर्ट के0 मर्टन मूल रूप से एक समाजशास्त्री है। लेकिन क्योंकि उसने मैक्स वेबर के नौकरशाही सिद्धान्त की बड़ी तार्किक समालोलचनात्मक समीक्षा की है, इसलिए उसे समकालीन प्रशासनिक चिन्तकों में एक अहम लेखक माना जाना जरूरी है।
2. यहाँ यह भी याद रखना होगा कि राबर्ट मर्टन समाजशास्त्र के क्षेत्र में जिन विचारों के लिये जाना जाता है वे हैं प्रकार्यवाद (Funcationalism), मध्य अभिसीमा सिद्धान्त और सन्दर्भ-समूह (Reference Group) का सिद्धान्त, जो बहुत महत्वपूर्ण हैं।
3. राबर्ट मर्टन की प्रशासनिक अवधारणा उसके द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यवाद के सिद्धान्त पर टिकी हुई है।
4. राबर्ट मर्टन का लक्ष्य समाज का विश्लेषण करना है और इसके लिये जो उपकरण उसने अपनाया है वह प्रकार्य है। अर्थात वह प्रकार्यात्मक विश्लेषण के आधार पर व्यवस्थाओं के विश्लेषण का प्रयास करता है।
5. प्रकार्य को अनेक अर्थों में लिया गया है। लेकिन मर्टन ने प्रकार्यात्मकता को जिस रूप में लिया है वह मानवशास्त्र में प्रकार्य की अवधारणा से मेल खाती है।

6. मर्टन के अनुसार प्रकार्य वे देखे जा सकने वाले परिणाम हैं जो सामाजिक व्यवस्था में अनुकूलन तथा सामंजस्य को सम्भव बनाते हैं।
7. राबर्ट मर्टन ने प्रकार्यात्मक विश्लेषण के दस प्रतिमानों की व्याख्या की है। ये हैं- विषय, विषयगत प्रेरणाऐं, उद्देश्यगत परिणाम, प्रकार्य इकाई, प्रकार्यात्मक अपेक्षाऐं, यांत्रिकी की अवधारणा, प्रकार्यात्मक विकल्प, संरचनात्मक सन्दर्भ, गतिशील परिवर्तन तथा सत्यापन की समस्या।
8. इसके अतिरिक्त मर्टन ने प्रकार्यवाद से सम्बन्धित अनेक मान्यताओं को भी उजागर किया है।
9. राबर्ट मर्टन ने नौकरशाही के अकार्यात्मक पक्षों का अध्ययन बहुत गहराई के साथ किया है। उनकी प्रसिद्ध रचना 'Social Theory and Social Structure' नौकरशाही की क्रियात्मक प्रकृति पर ध्यान आकर्षित करती है।
10. नौकरशाही के बारे में मर्टन इस नतीजे पर पहुँचा है कि नौकरशाही द्वारा किये गये कार्य अनिच्छा के कारण अनेक अवांछनीय परिणामों और दुष्क्रियाओं के रूप में सामने आते हैं। यही नौकरशाही की अकार्यता है।
11. नौकरशाही के अकार्यों को दर्शाकर मर्टन मार्क्स के समीप पहुँच जाता है, लेकिन जहाँ मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष के आधार पर नौकरशाही की विवेचना की है, वहाँ मर्टन ने केवल वर्ग को मान्यता दी है ना कि वर्ग-संघर्ष को।

कुल मिलाकर सांराश यह है कि राबर्ट मर्टन प्रकार्यवाद और नौकरशाही के अकार्य सिद्धान्त का एक महान लेखक है। उसने ठोस सिद्धान्तों के आधार पर प्रशासन का विश्लेषण किया है।

18.13 शब्दावली

प्रकार्यवाद- अंग्रेजी में इसे 'Functionalism' कहा जाता है। प्रकार्यवाद मात्र कार्य नहीं है, इसके गहरे अर्थ हैं। यह शब्द एक दशा को दर्शाता है। इसके सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, गणितीय, मानवशास्त्रीय और सामाजिक अर्थ हैं। सामाजशास्त्र में सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने का काम प्रकार्य के द्वारा किया जायेगा।

अकार्य- प्रकार्य का विलोम अकार्य (Dysfunction) है। अकार्य वे क्रियाऐं हैं, जिनके निष्पादन से अनैच्छिक और अवांछनीय परिणाम सामने आते हैं। नौकरशाही कुछ इस तरह काम करती है कि उसके अकार्य परिणाम निकलते हैं। जिनसे सम्बन्धो में टकराव और अलगाव पैदा होता है।

18.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख, **2.** क, **3.** घ, **4.** घ, **5.** घ

18.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Merton, R.K., Social Theory and Social Structure.
2. Merton, R.K., Bureaucratic Structure and Personality.
3. Merton, R.K., Reader in Bureaucracy
4. कुमार, अशोक, प्रशासनिक चिन्तक।
5. प्रसाद, सत्यनारायण, प्रशासनिक चिन्तक।

18.16 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Vatsyayan, Principles of Sociology.
2. कुमार, अशोक, सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियंत्रण।
3. कुमार, अशोक, History of Social Thought.
4. Merton, R.K. The Sociology of knowledge.
5. प्रशासनिक चिन्तक, डॉ0 अशोक कुमार, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन।

18.17 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राबर्ट मर्टन द्वारा प्रतिपादित प्रकार्यवादी सिद्धान्त को समझाइऐ।
2. राबर्ट मर्टन के प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रतिमानों की समीक्षा कीजिए।
3. राबर्ट मर्टन ने नौकरशाही के अकार्य सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, स्पष्ट कीजिए।
4. मर्टन के विचारों की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।
5. नौकरशाही पर मर्टन और मार्क्स के विचारों में क्या अन्तर है?